आधुनिक हिन्दी साहित्य में युद्धजन्य साँस्कृतिक संकट

(The cultural chaos of war on humanity depicted in modern Hindi literature)

Thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in

HINDI

Under the faculty of Humanities

By

पूर्णिमा. आर

POORNIMA R.

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI – 682 022

AUGUST 2007

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022, KERALA, INDIA

Dr. P.A. Shemim Aliyar, M.A, Ph.D
Professor & Head of the Department
Cochin University of Science and Technology

Phone: (Off) 0484-2575954
(Res) 0484-2556575
0484-2555552

Certificate

This is to certify that the research work presented in the thesis entitled **'Adhunik Hindi Sahithya Meim Yudhajanya Sanskritik Sankat'** is an authentic record of research work carried out by **POORNIMA R.** under my supervision at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, in partial fulfillment of the requirements for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY in HINDI and that no part thereof has been included for the award of any other degree.

Place : KOCHI
Date : 7·8·07

Dr.P.A.Shemim Aliyar
Professor & Head of the Department

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled **'Adhunik Hindi Sahithya Meim Yudhajanya Sanskritik Sankat'** is a bonafide record of the original work carried out by me under the supervision of **Dr.P.A. SHEMIM ALIYAR** at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology and no part thereof has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree.

Poornima R.

मेरी प्रिय अध्यापिका शमीम अलियार....
पूज्य माता-पिता, प्रिय पति सुजित....
सबसे प्यारी
बेटी कात्तुजित्त.....
को सप्रेम समर्पित

भूमिका

विश्व में आज इनसान एक अरक्षित अवस्था से गुज़र रहे हैं। युद्ध के बादल उनके चारों ओर मंडरा रहे हैं। 'युद्ध' शब्द का बोझ ज़्यादा भयानक है, यह आज हमारे समाज का पर्याय-सा बन गया है। इस संसार में पैर रखनेवाले छोटे से शिशु के कानों में भी तोपों और बमों की आवाज़ें बुलन्द हो रही हैं। विनाश से विनाश की ओर जानेवाले मानव अपनी इस हालत के लिए दूसरों को ज़िम्मेदार मानते हैं और स्वयं को मासूम घोषित करते हैं।

युद्ध इनसान के भूत, वर्तमान और भविष्य को विनष्ट करता है। उनके सपनों को, संस्कृति को, समाज को यह बरबाद करता है। पारिवारिक जीवन का सौरभ भी इससे नष्ट हो जाता है।

सच्चे साहित्य की दृष्टि हमेशा मनुष्य पर केन्द्रित रहती है। साहित्यकार अपने युग और समाज के प्रति सदैव ईमानदार और प्रतिबद्ध रहते हैं। दो विश्वयुद्धों के गवाह बन चुके मानव जब शान्ति का रास्ता खोजने लगा, इस खोज में साहित्य भी हमेशा उनका साथ रहा। युद्ध से क्षत-विक्षत भूमि को साहित्यकार ने कभी अनदेखा न किया। आम जनता की त्रासदभरी चिल्लाहट उनकी आत्मा को सदैव बेचैन बनाती रही। इस बेचैनी से युद्धविरोधी साहित्य का सृजन हुआ है।

शोध के लिए युद्धविरोधी साहित्य को चुनने का प्रमुख कारण इसकी प्रासंगिकता है, इसमें निहित मानवीय दृष्टि है। सुविधा के लिए मैं ने इसे पाँच अध्यायों में विभाजित किया है।

पहला अध्याय युद्धः एक सर्वेक्षण है। इसमें प्राचीनकाल और आधुनिक काल में नज़र आनेवाले युद्ध के भिन्न रूप, युद्ध से मानवमूल्यों का ह्रास, शारीरिक रूप से आदमी को परेशानी देनेवाले और प्रकृति को भी खतरा पहूँचानेवाले युद्ध के भीषण और खतरनाक परिणामों पर प्रकाश डाला गया है। विषय को व्यापक आयाम देने की दृष्टि से विश्व साहित्य की प्रमुख भाषाओं में उभर आये युद्ध-विरोधी स्वर का परिचय भी मैंने दिया है।

दूसरा अध्याय आधुनिक हिन्दी कविता में अभिव्यक्त युद्धविरोधी स्वर है। द्विवेदी युगीन कवि रामधारी सिंह दिनकर, प्रयोगवादी कवि अज्ञेय, नई कविता के पुरोक्ता कवि नरेशमेहता, नागार्जुन, शमशेर और हिन्दीतर प्रदेश केरल के कवि अरविन्दाक्षन की कविताओं पर इसमें प्रकाश डाला गया है। आठवें दशक के प्रमुख कवि वीरेन्द्र मिश्र और वागर्थ में प्रकाशित कुछ युद्धविरोधी कविताओं को भी मैं ने चुना है।

तीसरे अध्याय में हिन्दी कथा साहित्य में अभिव्यक्त युद्धविरोधी स्वर को ढूँढने की कोशिश की गई है। द्वितीय महायुद्ध के साथ भारत-चीन, भारत-पाक्, ईरान-इराक के संघर्ष की पृष्ठभूमि को साहित्यकारों ने स्वीकार किया। मुख्यतः अमृतलाल नागर का 'एटम बम', महीपसिंह का 'युद्धमन', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'वापसी', मोहन राकेश का 'मिट्टी के

रंग', इरान संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी नासिरा शर्मा की कुछ कहानियाँ आदि पर विस्तृत विचार किया है। युद्ध से त्रस्त सैनिकों की बेचैनी, अमीरों की कपटता, शरणार्थियों की बदकिस्मत आदि इन कहानियों के विषय है।

कथा साहित्य के अन्तर्गत इन कहानियों के साथ मैं ने चार उपन्यासों पर भी विशद विचार किया है। नामी उपन्यासकार यशपाल की 'अमिता', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', गिरिराज किशोर का 'असलाह' और जगदीश चन्द्र का 'टुण्डा लाट'। चार उपन्यासों की पृष्ठभूमि भिन्न है। लेकिन सभी युद्ध के दहशत को प्रस्तुत करते हैं।

चौथा अध्याय आधुनिक हिन्दी नाटक में अभिव्यक्त युद्धविरोधी स्वर है। दूसरी साहित्यक विधाओं की अपेक्षा नाटक की खासियत है कि दृश्यकाव्य होने के नाते इसमें जीवन से प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है। अतः इसका प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें धर्मवीर भारती का 'अन्धायुग', दुष्यन्तकुमार का 'एक कंठ विषपायी', अज्ञेय का 'उत्तर-प्रियदर्शी', ब्रृजमोहन शाह का 'युद्धमन', गिरिराज किशोर का 'काठ की तोप' आदि नाटकों का विश्लेषण किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय निबंधों और यात्रासाहित्य में अभिव्यक्त युद्धविरोधी स्वर है। इन विधाओं की मुख्य खासियत है कि कल्पना का तत्व इसमें हल्का होता है, अनुभूति की प्रमाणिकता इन विधाओं की सबसे बडी पहचान है। दिनकर, निर्मल वर्मा, धर्मवीरभारती, श्रीकान्त वर्मा, प्रभृति लेखकों की यात्राओं का विस्तृत लेखा जोखा प्रस्तुत है।

कोच्चिन विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्षा डॉ शमीम अलीयार मेरी निर्देशिका रही। रूपरेखा तैयार करने से लेकर शोध प्रबन्ध को अन्तिम रूप देने तक अपने महत्वपूर्ण और प्रभावशाली सुझावों से पग पग पर वे मेरे साथ रही, मुझे सुधारती रही। उनके विद्वतपूर्ण एवं स्नेहभरे सहयोग के लिए मैं ज़िन्दगी भर कृतज्ञ रहूँगी।

हिन्दी विभाग के सभी गुरुजनों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ। इनके सहयोग एवं सलाहों को मैं अमूल्य मानती हूँ।

पुस्तकालय और कार्यालय के सभी कर्मचारियों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

कम्प्यूटर संबन्धी सारी शंकाओं को दूर करने के लिए विभाग के कंप्यूटर अध्यापिका श्रीमती. राजश्री के प्रति मैं सदैव आभार रहूँगी।

शोध प्रबन्ध की पूर्ति के लिए मेरी सहेलियाँ हमेशा मुझे प्रेरणा देती रही, उनके प्रति भी मैं विशेष आभारी हूँ।

हिन्दी साहित्य के विद्वान श्री.के.एस. राघवनपिल्लै के प्रति, उनके बहुमूल्य सुझावों के लिए मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

पूज्य पिता श्री मोहनन, माता श्रीमती राजमणी और प्रिय पति सुजित के प्रति क्या मैं आभार प्रकट कर कर्ज़ चुका सकती हूँ? उनके प्रति मेरी जो कृतज्ञता हैं, उन्हें शब्दबद्ध करना मुश्किल है।

अपने ससुर श्री. सुकुमारन और सास श्रीमती श्यामलाकुमारी के प्रति उनके स्नेहपूर्ण सहयोग के लिए मैं सदैव आभारी हूँ।

परिवार के अन्य सदस्यों विशेषतः मेरी प्यारी बहनें और प्रिय भाई अरविन्द के प्रति मैं सदैव कृतज्ञ रहूँगी। सुस्ती को छोडकर शोध की शीघ्र-पूर्ति केलिए वे मुझे हमेशा प्रेरणा देते रहे।

हमारी ढाई साल की प्यारी बेटी कात्तुजित से मैं अपना स्नेह भरा आभार तहे दिल से प्रकट करती हूँ। मेरी व्यस्तताओं के बीच वह कभी कभी मातृवात्सल्य से वंचित हुई होगी, लेकिन जाने या अनजाने मेरी व्यस्तताओं से सामंजस्य स्थापित करने में वह काबिल हुई।

शोध-यात्रा के दौरान ज़िन्दगी में मुझे अनेक मुसीबत - भरे मौकों का सामना करना पडा । उन सबको पारकर इस हद तक पहूँचाने में ईश्वर ने मुझपर ज़्यादा कृपा बरसी है। उस परमशक्ति के सामने मैं नतशिर हूँ।

शोध प्रबन्ध को विद्वानों के समक्ष सविनय समर्पित करती हूँ। इसमें आयी खामियों के लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

पूर्णिमा. आर

अनुक्रम

1. युद्ध : एक सर्वेक्षण **1 - 78**

संघर्ष : प्रकृति और जीवन का अनिवार्य हिस्सा, मानवमूल्यों का ह्रास और युद्ध, युद्ध का बदला हुआ चेहरा, युग का दर्दनाक हिस्सा, युद्ध का रूप-परिवर्तन - वैयक्तिक धरातल से सामाजिक धरातल तक, युद्ध : मानव-सभ्यता की समस्या, आणव शस्त्र - तकनीकी मांनस्टर के रूप में, हथियार-व्यापार और युद्ध, मानवाधिकार का ध्वंसन, शरणार्थियों की समस्या, युद्ध-संस्कृति और स्त्री, **युद्ध की वीभीषिका का स्वर : साहित्य में**, विश्वसाहित्य, एक परिदृश्यः-युद्ध के विशेष सन्दर्भ में, युद्ध-विरोधी कविताएँ -विश्व साहित्य में - टी.एस. इलियट, विल्लियम वड्र्सवर्थ, वाल्ट ह्विटमान, बर्तोल्त ब्रेख्त, बास्को तोपा, बोरिस पास्टरनाक, ऑंटो द सोला, निकोलस गोलियन पाल इल्सार, फार्ले सैराडबर्ग - युद्धविरोधी तमिल कविता - Poet Against the War (युद्ध के खिलाफ कवि) - मलयालम - साहित्य में युद्धविरोधी स्वर - रामायण और महाभारत में युद्धविरोध, लंकालक्ष्मी - श्रीकंठन नायर का युद्धविरोधी नाटक, वाइक्कम मुहम्मद बशीर और युद्ध-विरोध, एन.एस.माधवन की कथा, कुरुक्षेत्र - अय्यप्पपणिक्कर, सच्चिदानन्दन की कविताओं में युद्धविरोध-अनन्त- वियतनाम युद्ध की स्मृति, युद्ध को कोसनेवाला कवि-हृदय।

2. युद्धजन्य साँस्कृतिक संकट : आधुनिक हिन्दी कविताओं में **79 - 162**

कविता का पुराना रूप-बदला हुआ तेवर, **दिनकर का युद्ध दर्शन** - युद्ध का वैयक्तिक और सामाजिक पक्ष, युद्ध-एक नकारात्मक अवधारणा, युद्ध की अनिवार्यता, वैज्ञानिक प्रगति,मानव,युद्ध-आपसी संबन्ध, युद्धविरोध - छोटी सी कविताओं के ज़रिए, **हिरोशिमा कविता** - अज्ञेय, समय देवता, **संशय की एक रात** - व्यक्ति की महत्वाकाँक्षा और युद्ध-युद्ध - एक मिथ्या तत्व-युद्धविरोधी मानव का नुमाइंदा राम **महाप्रस्थान**- युद्ध-त्रासदी की भोक्ता स्त्रियों की दर्दभरी कहानी- युद्ध की अमानवीयता और व्यक्तित्व का टूटन, युद्ध के खतरनाक परिणामों पर चेतावनी- नागार्जुन और शमशेर की कविताएँ, युद्ध के खिलाफ संघर्षरत श्रीकान्तवर्मा की कविताएँ, **शांतिगंधर्व-वीरेन्द्र मिश्र** - आतंकवाद का क्रूर हाथ-मानवजाति के

महामिलन का आह्वान- सृष्टिविरोधी युद्धोन्मुख मानव - तीसरे विश्वयुद्ध की आशंका से भयभीत कवि-मन-हिरोशिमा - सी बनी मातृभूमि-अमन की बरबादी-आतंकवादियों का मज़ाक, **बाँस का टुकडा** - युद्ध के खिलाफ शान्तिकामी कवि की प्रतीक्षारत यात्रा, युद्ध की त्रासदी को स्वर देनेवाली तीन कविताएँ-युद्धोपरान्त, टैंक और बच्चे, बारहवर्षीय अली इस्माइल की कथा।

3. हिन्दी कथासाहित्य में युद्ध की विभीषिका का स्वर 163 - 258

युद्ध विरोधी स्वर - हिन्दी कथा साहित्य में, एक ही समस्या - भिन्न भिन्न परिप्रेक्ष्य युद्धविरोधी स्वर - 'उसने कहा था' में, इन्सानियत की 'वापसी', जीवन और मृत्यु के बीच छटपटानेवाले मानव का दस्तावेज़ - एटम बम, क्लाड ईथर्ली-व्यवस्था की अमानवीयता के खिलाफ गूँजी आवाज़, युद्धमन - युद्धभूमी से कोसों दूर स्थित आदमी की अन्तर्व्यथा, मिट्टी के रंग, युद्ध के खिलाफ बुलन्द एकदम भिन्न आवाज़-नासिरा शर्मा की कहानियाँ - गुस्सालों की अन्तर्व्यथा की अभिव्यक्ति - 'पहली रात' में, तारीखी सनद-युद्धविरोधी आवाज़ों में प्रश्नचिह्न, पुल-ए-सरात - मौत से बदत्तर जीवन - आम आदमी की बदकिस्मत -मातृभूमि से विस्थापन, जडें - भारतीय मूल के उगांडा निवासियों की समस्याएँ, कश्मीरी समस्या - 'तीसरी मोर्चा' में, फिलिस्तीन और इस्राइल के बीच का संघर्ष - ज़ैतून के साये में।

युद्ध की विभीषिका : आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में

अमिता - विश्वशान्ति की खोज में लेखक का प्रयास, निर्मलवर्मा की युद्धविरोधी चेतना - **वे दिन** के परिप्रेक्ष्य में-बेकारी और दुर्भिक्ष - युद्ध का पर्याय, **टुण्डा लाट** - देश के सीमांत पर तैनात फौजी जीवन का दस्तावेज़ - घरवालों की मानसिकता **असलाह** - साम्राज्यवाद का सख्त विरोध करनेवाला उपन्यास-प्रतीक विधान।

4. आधुनिक हिन्दी नाटक में अभिव्यक्त युद्धविरोधी चेतना 259 - 329

अन्धायुग - अनास्था से आस्था की ओर प्रयाण करती नाट्यरचना - महाभारत का पुनरन्वेषण : अन्धायुग में - पात्रों की प्रतीकात्मकता - अश्वत्थामा - युद्ध की पाशवीयता से बर्बर बना आधुनिक मानव का प्रतीक - भविष्य की पीढी पर युद्ध का खतरा - विजयी मन की वितृष्णा, युद्ध की अनिवार्यता पर एक बहस : **एक कंठ विषपायी** - समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव : 'एक कंठ विषपायी' में-चरित्रों की प्रतीकात्मकता-दुष्यन्तकुमार का युद्धसंबन्धी विचार, **उत्तर-प्रियदर्शी** - अज्ञेय, **युद्धमन** - युद्ध की त्रासदी का दस्तावेज़- युद्धमन - युद्ध की त्रासदी को स्वर

देनेवाला नाटक - स्त्रियों की परेशानी-चोरी में बढोत्तरी - युद्ध पर भिन्न भिन्न मानसिकता रहनेवाले लोग - घरवालों की मानसिकता। **काठ की तोप** - साम्राज्यवादी शक्तियों के हथियार-संचय की नीति पर नाटककार का खुला व्यंग्य।

5. युद्धजन्य साँस्कृतिक संकट - यात्रासाहित्य, निबन्ध और आत्मकथा में 330 - 410

यात्रासाहित्य - **चीडों पर चाँदनी** - लिदित्से - चन्द क्षणों में राख में परिणत एक गाँव। **देश-विदेश** ओसोविचिम - जर्मन अत्याचार का म्यूसियम - जासूसों का अड्डा बना स्विट्सरलांड, **अपोलो का रथ** - प्लान्तजेंसी-पश्चिमी बर्लिन का कैदखाना - मूल्यहीनता का बोलबाला - समाज और राजनीति में, स्वीडन - एक अलग पहचान। **यात्रा-चक्र -** युद्ध के प्रति लोगों की अनासक्ति - एक माँ की कराहट - अनिद्ध्य सौन्दर्य पर पडी हुई युद्ध की काली छवि - युद्ध : एक विकसित टेकनिक - मूल्यों की लडाई - घृणा की सात्विकता - खौफ से भरा मन। **जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं**- कब्रिस्तान और कैदखाने में परिणत हुआ ईरान - पारिस, युद्धोपरान्त हालत - हिरोशिमा में कौंच और कनेर - आधुनिक हिन्दी निबन्धों में अभिव्यक्त युद्धजन्य साँस्कृतिक संकट - अमेरिकी नव-उपनिवेशवाद का खतरा - डॉ नामरसिंह - सत्ता का मोह और युद्ध - **'लिखी कागद कोरे'** में अभिव्यक्त युद्धविरोधी आवाज़, बीसवीं सदी के अंधेरे में, आन फ्रांक की डायरी : विश्व साहित्य की प्रसिद्ध आत्मकथा।

उपसंहार 411 - 415

संदर्भ ग्रन्थ सूची 416 - 421

पहला अध्याय

युद्ध : एक सर्वेक्षण

मानव-जीवन का इतिहास जितना पुराना है, उतना पुराना है युद्ध का इतिहास भी। कभी कभी इतिहास युद्ध ही बन गया है। समय के बीच बीच में कई बार होनेवाले युद्ध के कारण संसार का मानचित्र ही बदल गया है।

अनादिकाल से मानव समाज में असंख्य युद्ध हुए है। दो-तीन व्यक्तियों के बीच के युद्ध से लेकर विश्वयुद्ध तक युद्ध का लंबा इतिहास है। मनुष्य के बीच में ही नहीं, देव और दानवों के बीच में भी युद्ध चलता था।

महाभारत में संघर्ष भूमि केलिए था। यहाँ धर्म की विजय और अधर्म की पराजय देखी जा सकती है। रामायण काल का संघर्ष आर्यों और अनार्यों के बीच में था। बाईबिल में 'आरमगडन' नामक युद्ध का वर्णन है। भलाई और बुराई के बीच का संघर्ष है 'आरमगडन'।

खुरआन में 'जिहाद' नामक विशुद्ध युद्ध है। जिहाद एक धार्मिक कर्तव्य है, जिसे चारों तरीके से अपना सकता है - हृदय से, जिह्वा से, हाथ से और तलवार से। इसमें हृदय से बुरी इच्छाओं को

जीभ से बुराई से लडने का, हाथ से भलाई का कोई काम करने का, तलवार से दुश्मन को मारने का आह्वान है।[1]

युद्ध मनुष्य की जीवन-व्यवस्था में महान क्रान्ति उपस्थित करता है, इसके कारण प्रकृति, सामाजिक संरचना, अन्तर्राष्ट्रीय जीवन, आर्थिक, राजनैतिक जीवन में विघटन उत्पन्न होता है। मनुष्य के जीवन-साधन, जीवन-प्रक्रिया, चिन्तन-पद्धति ये सभी युद्ध के कारण परिवर्तित हो जाते हैं।

युद्ध को अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का खुला उल्लंघन और पूरी दुनिया के अमनपसंद लोगों की राय के खिलाफ थोपी जानेवाली लडाई बता सकते है। अक्सर युद्ध का मतलब होता है, लोगों का मरना, बेमानी मरना, खून की नदी का बहना। यह तो राजनीति का निर्णय है, मानवमूल्यों को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाली शक्ति है। मनुष्य के कलात्मक और आध्यात्मिक जीवन को यह नष्ट कर देता है, उसकी सामाजिकता को बरबाद करता है, उसके शारीरिक अस्तित्व का भी संहार करता है।

समाज के ताने-बाने को, सामाजिक जीवन के सौरभ को युद्ध बिगाड देता है। हम जानते हैं कि सदस्यों के आपसी प्रेम और संवेदनापूर्ण सहयोग से समाज की गति निर्बाध चलती है। समाज के इस अटूट प्रवाह में युद्ध से बाधा उपस्थित होती है।

---

1. Britanica Ready Reference Encyclopedia

संघर्ष : प्रकृति और जीवन का अनिवार्य हिस्सा

मानव-जीवन संघर्ष से गुज़रनेवाला एक प्रवाह है। यहाँ आदमी का आदमी के साथ, प्रकृति के साथ साम्रज के साथ, अपने ही मन के विचारों के साथ हमेशा लडना पडता है। राष्ट्र, वर्ग, वर्ण, प्रान्त, धर्म, आदि सभी तौर पर यह संघर्ष विभाजन का कारण बन गया और विभाजन के कारण यह संघर्ष ओर भी तीव्र हुआ।

जीवन के हरेक पडाव में मानव संघर्ष का सामना करता है। बाल्यावस्था से लेकर ज़िन्दगी के आखिरी दम तक वह हमेशा संघर्ष के साथ गुज़रता है। कभी मन के सूक्ष्मतम विचारों पर काबू पाने में व्यक्ति असफल निकलता है। इस कारण संघर्ष कभी भी उसका पीछा न छोडता है।

एक दुधमुँहे बच्चे में भी संघर्ष की प्रवृत्ति जन्मजात छिपी रहती है। उसे दूसरों से किसी चीज़ को हडप लेने की मनोवृत्ति है। मनपसन्द चीज़ को पाने के लिए वह रोता रहता है, हठ करता है, खाना-पीना बन्द करता है। उसकी रुलाई तब समाप्त होती है, जब वह चीज़ उसकी मुट्ठी में आ जाती है। मानव की युद्ध-लिप्सा के पीछे यही मनोवैज्ञानिक वृत्ति काम कर रही है।

बच्चा बडा हो गया, उसका बाहरी शक्ल एकदम बदल गया। लेकिन अन्तर्मन में छिपी इस वृत्ति में मूल रूप से बदलाव न आया। उसके मन में अजीब किस्म की लालसा छिपी रही। अन्तर्मन में

छिपी यह लालसा जब बर्बरता का पोशाक पहनती है, तब वह युद्ध का रूप धारण कर लेती है।

बाहरी तौर पर मनुष्य का पहला संघर्ष प्रकृति से था, जो उनकी अपनी माँ है और उनका अपना सब कुछ है। आदिमानव के लिए यह संघर्ष अपनी अस्तित्वगत ज़रूरत थी। अस्तित्व को बनाए रखने के इस संघर्ष में वह अकेला था। उसके पास न बम था, न अणुशक्ति थी। प्रकृति से लडते-लडते मनुष्य ने उसे अपने अधीन में कर लिया। साथ ही साथ जानवरों को भी उसने अपने नियंत्रण में रख लिया।

कठिन परिश्रम से अपनी बुनियादी ज़रूरतें - कपडा, भोजन, आवास-स्थान ये सब उसने हसिल किए। समय के बीत जाने के साथ उनकी ज़िन्दगी में बहुत ही बदलाव नज़र आए। विज्ञान के नए नए आविष्कारों और तकनीकी उन्नति के साथ उसने एक नए युग में कदम किया। रेडियो, टेलिविशन, इंटरनेट, मोबाइल जैसे वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण देश-देश की दूरी सिमट गई। एक ही सेंकट के अन्दर आज वह दुनिया के किसी भी देश में रहनेवाले आदमी से संबन्ध स्थापित कर सकता है।

जीने की सुविधाएँ बढने लगी तो आदमी और भी सुविधाएँ खोजने में व्यस्त हो गया। एक पाने से वह दो चाहने लगा, सौ पाने पर उसका मन हज़ार की ओर भागने लगा। जब दूसरों के स्वार्थ से उसका स्वार्थ टकरा जाने लगा, उसे संघर्ष का सामना करना पडा। जब इस

संघर्ष ने तीव्र रूप धारण किया, तब वह युद्ध की संज्ञा से अभिहित हुआ।

मानवमूल्यों का ह्रास और युद्ध

'मानव' शब्द के अनेक अर्थ है। मनु का पुत्र मानव है। मनन करने में जो सक्षम है, वह भी मानव है। मनुष्य पृथ्वी में एकमात्र जीव है, जिसमें मनन करने की क्षमता है। चिन्तन-मनन करके ही वह काम करता है, सही निर्णय पर पहूँच जाता है।

करुणा, सहानुभूति, प्रेम, दया, संवेदना, अहिंसा - ये तो मानव के सहज गुण समझे जाते हैं। 'स्वयं जिओ और दूसरों को जीने दो', उसके जीवन का महान आदर्श है। लेकिन भौतिकता से संपन्न मनुष्य ये सभी आदर्श और महान जीवन मूल्यों को भूल गए हैं। आज भौगोलिक दूरियाँ सिमट गई है, लेकिन मानव-मन का फासला बढ गया है, आत्मीय संबन्धों में दरारें पड गई है। मन की भीतरी अखण्डता खो गई, इन्सानियत सूखी, 'वसुधैवकुडुंबकम्' को सार्थक बनाने की जो हृदय विशालता हमारे पूर्वजों में थी, वह नहीं रही। कहा जा सकता है कि आज का युग भौतिक संपन्नता का है, और साथ-ही-साथ आध्यात्मिक शून्यता का भी।

महान आलोचक देवेन्द्र इस्सर ने इस पहलू पर सही प्रकाश डाला है, 'हम एक ऐसे युग से गुज़र रहे हैं, जिसमें मनुष्य की सृजनशक्ति इतनी बढ गई है कि वह चाँद तारों पर भी कमन्द डाल सकता है। लेकिन उसके साथ ही उसने संहार के अस्त्र भी इतने अधिक घातक

और अन्तिम तौर पर पूर्ण कर लिए है कि वह कुछ ही क्षणों में समस्त जाति को नष्ट कर सकता है। सृजन और संहार की इस असीम शक्ति ने मनुष्य के लिए ऐसा संकट पैदा कर दिया है, जो मानवमूल्यों को पूर्ण अस्वीकृति की ओर भी ले जा सकता है और नए मूल्यों का अन्वेषण भी कर सकता है।"[1]

पहले ही कहा जा चुका है कि मनुष्य के अन्तर्मन में लालसा की वृत्ति छिपी रहती है। उसके मन के गह्वर में एक अतिक्रूर, निर्मम पशु का वास है। मौके पाकर वह पशु सिर उठाता है। ज्यों ज्यों मनुष्य सभ्यता की ओर बढता है, त्यों त्यों यह पशु अत्यन्त शक्तिशाली बनकर आक्रोश-भरी आवाज़ से बाहर आ रहा है। वर्तमान समय में दुनिया के कोने-कोने में होनेवाले युद्ध इस तथ्य को सत्य साबित करता है।

इक्कीसवीं सदी पर पैर रखे इन्सान आज विनाश के कगार पर खडे हैं। अणु विस्फोट के खतरे के साये में वह पूर्ण विनाश के भय में साँस ले रहा है। वह संसार की चेतनामय वस्तुओं को नकारकर याँत्रिक संस्कृति की ओर झुक गया। आज वह याँत्रिक संस्कृति का एक हिस्सा बन गया है। इक्कीसवीं सदी का उत्तरार्ध अत्यन्त जटिल बनता नज़र आता है। समय के चलते, आदमी एक संकीर्ण और असहाय अवस्था से गुज़र रहा है। उसका अपना अस्तित्व नहीं, अपने पर विश्वास भी खो गया है।

---

1. समकालीन साहित्य सृजन - देवेन्द्र इस्सर - पृ. 12

महान संकट के क्षणों में मानव को तसल्ली देने के लिए, उसे मूल्यदृष्टि देने के लिए धर्म का उदय हुआ है। सभी महान धर्म जीवन को श्रेष्ठतम बनाने के लिए, मनुष्य के अन्तर्मन में छिपे पशु को काबू करने के लिए महान आदर्श प्रस्तुत करते हैं। यह आदर्श मानव की भलाई पर केन्द्रित है।

बृहदारण्यक उपनिषद में बताया गया है कि मनुष्य को तीनों 'द' अर्थात दत्ता(togive),दम्यता(control),और दयात्वा (compassionate) का ठीक से अनुशीलन करना है।[1] इसका मतलब यही है कि दान,दया और आत्मनियंत्रण की वजह से हम शान्ति की राह को अपना सकते हैं। युग-युगों से दुनिया में विनाश मचानेवाले युद्ध का कारण इन तीनों का अभाव है। दूसरों को कोई भी चीज़ देने के लिए हम तैयार नहीं; बल्कि उनसे सब कुछ हडप लेने में कामयाबी दिखाते हैं।

क्योंकि हमारे मन को नियंत्रण में लाने में हम असमर्थ निकले हैं और मन से संवेदना और सहानुभूति के गुण कहीं खो गए हैं।

युद्ध का बदला हुआ चेहरा

समय की गति तीव्र वेग से चलती है। किसी से इसे रोक पाना असंभव है। समय के बदलने के साथ मानव में बहुत ही परिवर्तन हुआ। उसकी संस्कृति विकसित हुई। लेकिन सुसंस्कृत होने के बजाय वह संस्कृति से बहुत दूर चला गया। युद्ध उसके जीवन का एक

---

1. The Principle of Upanishads - New York 1953 - P.289-290

अनिवार्य हिस्सा बन गया। अब जीवन में एक दिन ही न रह गया कि वह युद्ध की खबर न सुनता हो।

समय के बदलने के साथ युद्ध करने के तरीकों में और उसकी नीति में बहुत बडा बदलाव आया। अब युद्ध का स्वरूप बहुत बदल चुका है। प्राचीनकाल में जो युद्ध यहाँ चल रहा था, उसमें युद्ध-संबन्धी कुछ विशेष मूल्य (ethics) थे। लेकिन आज के युद्ध से ये मूल्य कहीं खो गये। इसका कारण यांत्रिक संस्कृति है। यंत्रों के अधिकाधिक संपर्क के कारण प्रकृति से मनुष्य का रिस्ता कट गया। यंत्रों के साथ उसका जीवन भी अधिक यँत्रिक होता गया और सभी मानवमूल्य गायब हुए।

विश्व के महान साहित्यकार एणस्ट हेमींग्वे का कथन बहुत ही सही लगता है - 'पहले अपने देश केलिए युद्ध में मर जाना बडी शान की बात समझी जाती थी, लेकिन आज के युद्ध में मर जाना शान और आन नहीं है-मरनेवाला अकारण ही कुत्ते की मौत मर जाते हैं।'[1]

प्राचीनकाल में युद्ध केवल ताकत और साहस के बल पर लडे जाते थे। ऐसे युद्धों में जीत हमेशा ज़्यादा ताकतवार पक्ष की ही होती थी। लेकिन विज्ञान के इस युग में कमज़ोर भी आज ताकतवार को हार सकता है। यह आधुनिकतम शस्त्रों के ज़रिए ही संभव हो जाता है।

1. (Notes on the next war - Ernest Hemingway, the great U.S writer who was wounded while serving as an ambulance driver in World War 1.)

मध्यकाल में यहाँ सत्ता राजाओं के हाथ में रही थी। तब युद्ध का स्वरूप और उसके कारण भी आज से काफी भिन्न था। सत्ताधारियों की महत्वाकाँक्षा की पूर्ति केलिए अथवा वर्णगत या वंशगत गौरव की वृद्धि के लिए युद्ध किया जाता था। राजा प्रजापालक था, उनके हितों का संरक्षक था। एक राजा का वैर दूसरे राजाओं से होता है तो अपने राजा की आन-शान की रक्षा के निमित्त युद्ध में भाग लेना वहाँ की जनता केलिए कर्तव्य पालन का प्रमुख अंग था। वे स्वदेश रक्षा से बढकर राजा की गौरव-रक्षा को ज़्यादा महत्वपूर्ण मानती थी। क्षेत्रीय सीमा की रक्षा करना अथवा उसके विस्तार द्वारा राजा की श्री-वृद्धि करना युद्ध का मुख्य लक्ष्य था।

प्रजातंत्रात्मक शासन के स्थापन के साथ युद्ध के उद्देश्य और आयाम बदल गये। आज के युद्ध केवल आधिपत्य स्थापन अथवा सीमा-विस्तार केलिए नहीं लडे जाते हैं। साथ ही साथ अपने अपने सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार केलिए उपयुक्त क्षेत्र तैयार करना भी इसका एक मक्सद है।

मात्र किसी व्यक्ति विशेष की महत्वाकांक्षा की पूर्ति केलिए युद्ध नहीं लडे जाते हैं। अमरिक्का-इराक की लडाई का मुख्य कारण बताया गया है कि अमरिक्का की नज़र इराक के तेल भंडार पर है, इसे अपने कब्जे में करना उनका लक्ष्य है। इस मक्सद को दिल में रखकर वह इराक पर हमला करता है। अमेरिकी ऊर्जा क्षेत्र की विविध कंपनियों केलिए इराक में लंबी अवधि के लिए ठेका दिया जाता है। ज़्यादतर

लोग इन दोनों के बीच के संघर्ष को दो भिन्न भिन्न धर्मों के बीच के संघर्ष का रूप भी प्रदान करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से भिन्न आज के युद्ध का एक सैद्धान्तिक पक्ष भी उभरकर आया है, जिसका व्यापक प्रभाव अन्यान्य देशों पर भी पडता है।

युद्ध के समान शांति का प्रभाव-क्षेत्र भी आज सीमित न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक विस्तृत हो चुका है। आज यह संभव नहीं है कि दो देश परस्पर युद्धरत रहें और अन्य देश उससे अप्रभावित रह जायें। आज हमारी संवेदना का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विस्तृत बन गया है। विश्वराज्य को मानवता का लक्ष्य बतलाया जाने लगा है। वास्तव में युद्ध इसी उद्देश्य की पूर्ति का एक भ्रान्त एवं विकृत प्रयास है। इसमें आत्मसात करने की अपेक्षा अधिपत्य स्थापन की प्रवृत्ति प्रबल बन गयी।

पहले ही बताया जा चुका है कि प्राचीनकाल में यहाँ युद्ध संबन्धी कई मूल्य प्रचलित थे। युद्ध संबन्धी कई आचार संहिताएँ भी यहाँ मौजूद थी। युद्ध-विज्ञान विषयक पर्याप्त जानकारी प्राचीन भारतीय साहित्य से प्रप्त होती थी। इसमें सैन्य बल, व्यूह रचना, शस्त्रास्त्र, सैनिक की वेशभूषा, आदि का पर्याप्त उल्लेख है। वैदिक जन प्रार्थना करते थे कि हे इन्द्र, जो शत्रू हमारे विरोध में सेना संग्रह करते हैं उन्हें नष्ट करो!-ऋग्वेद मण्डल1, सृ.132, मन्त्र 6) सेना में रथ, अश्व और पदाति सैनिकों की मुख्यता रहती थी। शत्रू से रक्षा केलिए दुर्गों का निर्माण किया जाता था। युद्ध-विज्ञान की विधिवत् शिक्षा रामायण और

महाभारतकाल में शुरू हुई। युद्ध के विभिन्न प्रकार आविष्कृत हो चुके थे और राजनीति की संहिताएँ बनी हुई थी।

प्राचीन भारत में सेना के चार प्रमुख अंग थे - रथ, हाथी, घोडा तथा पैदल सैनिक। सेना की सबसे बडी इकाई अक्षौहिणी कहलाती थी। सेना युद्ध केलिए निकलती है तो उसके साथ मार्ग ठीक करने, शिविर स्थापित करने आदि केलिए विभिन्न प्रकार के कर्मकर लोग शामिल होते थे। युद्ध व्यूह बनाकर किया जाता था। छत्तीस प्रकार के शस्त्रास्त्र इस काल में उपलब्ध थे, फिर भी धनुष ही मुख्य था। सैनिक अन्य शस्त्रों से शिक्षा ले या न ले धनुष चलाना अवश्य सीखता था। धनुर्धर शब्द सैनिक का पर्यायवाची-सा हो गया था। आयुध शास्त्र या शस्त्र विज्ञान धनुर्वेद कहा जाता था।

युद्ध संबधी आचार-संहिताओं का पर्याप्त विकास रामायण और महाभारत काल में ही हुआ। साम, दान, दण्ड और भेद के अनुसार युद्ध को टालने का पूरा प्रयत्न किया जाता था। फिर भी यदि अनिवार्य हुआ तो युद्ध की घोषणा की जाती थी। प्रत्येक राजा किसी दूत के हाथ में युद्ध का निमंत्रण भेजा जाता था कि या तो वह आकर अधीनता स्वीकार कर ले या युद्ध करे। इस प्रकार दोनों सेनाएँ तैयार होकर युद्ध-क्षेत्र में पहूँचती थी। सैनिकों के बीच में होनेवाले इस युद्ध का प्रभाव परोक्ष रूप में ही आम जनता पर पडता था। धन-जन को हानि न पहूँचा देने का विशेष प्रयत्न युद्ध के नियम के अनुसार किया जाता था।

अक्सर युद्ध दिन में होते रहते थे। संघ्या होते ही युद्ध बन्दी की घोषणा कर दी जाती थी। 'शाम्बरी माया' नामक निशाचारी युद्ध रात में लडे जाते थे। दूत अक्सर युद्ध का निमंत्रण लेकर आया करता था, फिर भी उसे मारा नहीं जाता था। राजतंत्र के नियमों के अनुसार वह अवध्य था। स्त्री, बच्चे और आत्मसमर्पण करनेवाले राजाओं का भी वध नहीं किया जाता था।

प्राचीनकाल में यहाँ द्वन्द्वयुद्ध का प्रचलन था। यह राजाओं के निर्णयों पर निर्भर रहता था। राजा लोग आपस में इस निर्णय पर पहूँचते थे कि सेनाओं का और प्रजाओं का अनावश्यक विनाश न हो जाए। इसलिए द्वन्द्व युद्ध करके अपने जय पराजय को निश्चित करता था। भरत-बाहुबली का युद्ध इस किस्म का द्वन्द्व युद्ध था। दोनों ने दृष्टियुद्ध, बाहुयुद्ध तथा जलयुद्ध को अपनाकर सैन्य-युद्ध को रोका।

प्रत्येक युद्ध धर्मयुद्ध होता था। लेकिन कभी कभी युद्ध संबन्धी सभी नीतियों का उल्लंघन करके यह अधर्म युद्ध बन जाता था। महाभारत में अश्वत्थामा द्वारा पांडुपुत्रों की हत्या इसी तरह युद्ध संबन्धी सभी आचार संहिताओं को नकारकर हुई थी।

आधुनिक युगीन युद्ध का शब्दकोष बिल्कुल बदल गया है। शस्त्र और अस्त्र का स्थान तोपों और बमों ने ले लिया। दिन-भर और रात भर युद्ध होता रहता है। शासक लोगों की परोक्ष भागीदारी आज

1. प्राचीन भारतीय युद्धविज्ञान - गोकुल चन्द्र जैन-ज्ञानोदय नवंबर 1965

के युद्ध की एक विशेषता है। प्राचीनकाल में शासक सीधे युद्ध क्षेत्र में उतरते थे। लेकिन आज ऐसा नहीं होता है। वे देश की राजधानी में रहकर युद्ध का नियंत्रण करते हैं। आम जनता के धन, परिवार आदि की क्षति होती है। लेकिन शासक हमेशा मंच के पीछे सुरक्षित रखते हैं।

प्राचीनकाल के युद्धों में स्त्रियाँ नहीं भाग लेती थी। आधुनिक कालीन महिलाएँ मोर्चा संभालने में काफी सक्षम निकली हैं। आज युद्ध से ज़्यादतर हानि भी महिलाओं को होती है। युद्धक्षेत्र में और उसके बाहर वह बलात्कार का शिकार हो जाती है। समाज में स्त्री हमेशा अरक्षित अवस्था से गुज़रती है। अब युद्ध आने पर उसकी हालत बदत्तर से बदत्तर बन जाती है।

आधुनिक युगीन युद्ध पूर्णतया विज्ञान और तकनीकी के नियंत्रण में है। आधुनिक युद्ध-विमान विशेषकर लडाकू विमान बडी स्वचालन युक्तियों से सुसज्जित है। इसमें तकनीकी मार्ग-निर्देशन तथा गणना - संबन्धी उपकरण लगे रहते हैं, जिनकी सहायता से पायलट अपने शत्रू की स्थिति और दूरी का पता आसानी से लगा सकता है। ये विमान प्राय: आवाज़ की गति से कई गुना तेज़ और बहुत ऊँचाई पर उड सकते हैं। आकार में छोटे होने पर भी ये अत्यन्त मज़बूत है। आधुनिक युग का अत्यन्त भयंकर और संहारक यंत्र टैंक है। शत्रु की तोपों और मशीनगनों की मार से यह पैदल सेना की रक्षा करता है। टैंकों का प्रयोग सबसे पहले ब्रिटन ने जर्मनी के खिलाफ सन् 1916 की लड़ाई में किया था। प्रथम विश्वयुद्ध में ग्रेनेड बमों का बहुत ही संख्या

में उपयोग किया गया। इन बमों द्वारा बहुत ही कम शक्तिवाले टैंकों का भी सामना किया जा सकता है।

बीसवीं सदी के दूसरे पार में हुए सभी युद्धों में रासायनिक और जैव हथियारों का प्रयोग हुआ है। मस्टार्ड गैस, सेरीन, एजन्ट आरन्च, एजन्ट-15 आदि जैव शस्त्र तीसरे विश्व के देशों की गरीब जनता पर लगाया।

कुछ सालों से आर.डी.एक्स जैसा खतरनाक विस्फोटक आतंकवादियों का खास हथियार बन चुका है। सीमाओं पर कडी चौकसी और सुरक्षा बलों की अत्यधिक सतर्कता के कारण बडे हथियारों का उपयोग आतंकवादियों केलिए ज़्यादा मुश्किल है। ऐसी स्थिति में इनकेलिए इस दानेदार सफेद पाउडर का इस्तेमाल करना कहीं ज़्यादा आसान हो गया है। इसकी छोटी से छोटी मात्रा से भी भयानक विस्फोट कराए जा सकते है। पेन या सिगरेट लाइटर में इसे भरकर भी भयानक विस्फोट को अंजाम दिया जा सकता है। 1999 में जर्मनी के एक वैज्ञानिक हैंस हेनिंग ने इसे चिकित्सकीय उद्देश्य केलिए खोजा था, लेकिन आज यह पाउडर मौत का पर्याय - सा हो गया है।

इस उत्तराधुनिक युग को अधिक भयानक बनाने केलिए ई-बमों का आविष्कार हुआ है। 2003 माई 23 को अमरिक्का की वायूसेना ने इ-बम का परीक्षण किया। इससे इराकी सैटलैट टी.वी के कार्यक्रम बन्द हो गये थे। समाचार प्रसारण बन्द होने के कारण बाहरी दुनिया से देश का संपर्क कट गया। आधुनिक तकनीकी युग में सूचना

प्रौद्योगिकी का बडा महत्व होता है। सरकार के विभाग, कारोबार, सैनिक केन्द्र आदि का कार्य कंप्यूटरों और सूचना-प्रसारण पर ज़्यादा आश्रित रहता है। सैनिक मामलों में भी सूचना का अपेक्षाकृत अधिक महत्व है। बाहरी दुनिया से इसी तरह संपर्क कट जाने पर निर्णायक मौकों में उचित निर्णय लेने में सैनिक असफल निकलेंगे।

इनके आविष्कार के साथ युद्धक्षेत्र में अणुबमों का अस्तित्व न रह गया। मिसाइलों की तुलना में ये कम-खर्चीला भी है। बिजली के उपकरण, कंप्यूटर और दूसरे विद्युत उपकरणों से रहित उन्नीसवीं सदी की ओर इ-बमें हमें पहूँचाते हैं।

युग का दर्दनाक हिस्सा

युद्ध मानव मन की हिंस्रता और पशुता की प्रवृत्ति है। जाति, धर्म, राष्ट्र, सत्ता, प्रभुता, प्रभाव आदि को बनाये रखने केलिए युद्ध होते है। युद्ध एक ऐसी भयंकर स्थिति है, जो ममता, स्नेह और कोमल बन्धनों को तोड डालती है और मनुष्य की प्रवृत्तियाँ पाशविक हो जाती है। युद्ध मनुष्य को क्रूर बनाकर मानवीय संबन्धों को विच्छिन्न कर देता है।

शताब्दी के दो विश्व युद्धों ने संपूर्ण विश्व के जीवनमूल्यों में क्रान्ति ला दी है। इसलिए भय, त्रास, अनिश्चितता, विसंगति, विद्रूपता, बीभत्सता आदि स्थितियाँ जीवन का यथार्थ बनकर पुराने आस्थापूर्ण मूल्यों को भुलाकर अस्तित्ववादी, क्षणवादी, मृत्युवादी आदि मूल्यों को जन्म दे रही है।

आज संसार अमरिक्का और इराक के बीच के भयानक संघर्ष का सामना कर रहे हैं। इराक के तेल कुओं में अमरिक्का आग लगाते हैं, संस्कृति के महान केन्द्रों का विध्वंस करते हैं, पुराने शहरों में बमबारी करते हैं। लोगों ने इस युद्ध को धर्म का धरातल प्रदान किया है। युद्ध के शुरु होने से पहले जार्दन विश्वविद्यालय के स्ट्रेटेजिक स्टडीज़ (सीएसएस) द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण में 83 प्रतिशत लोगों ने कहा कि अमेरिका इराक से युद्ध इसलिए करना चाहता है ताकि उसके तेल भंडार पर कब्जा कर सके, 63 प्रतिशत का कहना था कि इस्राइल की सुरक्षा को संभावित खतरे से बचाने केलिए युद्ध किया जा रहा है। केवल 26 प्रतिशत का मानना था कि युद्ध का कारण इराक के पास विनाशक हथियारों का होना है। इस पर तर्क वितर्क और वाद विवाद जो भी हो, अमरिक्का ने इराक के तेल कुओं में आग लगा दी। इससे यह ज़ाहिर होता है कि अमरिक्का की नज़र सिर्फ इराक के तेल केन्द्रों पर थी। यहाँ लगाई आग को बुझाने में लगभग पच्चास दिन तक रह गये। पानी की कमी के कारण यह काम ज़्यादा मुश्किल हुआ। लडाई शुरु होने से पहले इराक प्रतिदिन पच्चास लाख बैरल तेल का उत्पादन कर रहा था, जिसमें से अस्सी प्रतिशत संयुक्त राष्ट्र को तेल के बदले भोजन के तहत निर्यात कर दिया जाता था। अमेरिकी सरकार ने इराक के तेल कुओं में लगी आग बुझाने का टेंडर 'कैलाँग ब्राउन एंड रूट कंपनी' को दे दिया। यह कंपनी हेलीबर्टन नामक कंपनी की सहयोगी शाखा है। अमरिक्की उपराष्ट्रपति डिक चेनी हेलीबर्टन कंपनी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी थे। पहले तेल कु ओं पर आग लगाना,

फिर उसे बुझाने का काम एक विशेष संस्था को सौंपा देना, ये सभी वास्तव में अमरिक्की शासन-तंत्र की साजिश मालूम पडता है।

कला और संस्कृति वास्तव में एक देश की अतुल संपत्ति है, वह देश की नब्ज के समान है। पुस्तकालय, संग्रहालय आदि स्थानों में इनके महत्वपूर्ण नमूने सुरक्षित है। अतः इसका विनाश करना देश को मलबों में परिणत करने के समान अत्यधिक बीभत्स कार्य है। एक देश की जनता के आशय वहाँ के पुस्तकालयों में सुरक्षित रखा जाता है। आशय हमेशा खतरा पहूँचानेवाले हैं, इसी कारण युद्ध के दौरान पुस्तकालयों को भी क्षति पहूँचा देते हैं।

बिहार के नालंदा विश्वविद्यालय में वहाँ के पुराने पुस्तकालय के मलबे नज़र आते हैं। सातवें शतक में वहाँ से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त ह्यूयान साँग के अनुसार उस समय नालंदा का कैंपस बहुत सक्रिय रहा था। धर्मगंजा नामक इस लैब्ररी के महत्वपूर्ण हिस्से का नाम था रत्नबोधी, यह तो नौ मंज़िलोंवाली एक इमारत थी। तुर्की हमलावार बक्तियार खिल्जी ने नालंदा का सर्वनाश किया, पुस्तकालय में आग लगा दी। रत्नबोधी की सारी पुस्तकें राख बन जाने में करीब छह महीने लगे।

2003 में सद्दाम के राष्ट्र को तबाह करने के प्रयासों के दौरान सेना ने वहाँ के 'नाशनल लाइब्ररी एँड आरकैव्स' नामक पुराने पुस्तकालय पर हमला किया। इस पुस्तकालय में मूल्यवान कई ग्रन्थ सुरक्षित रखे थे। अनन्त इतिहासवाले इराक के भूतकाल का एक

महत्वपूर्ण हिस्सा था यह पुस्तकालय। इस पुस्तकालय के प्रमुख, साद एक्सन्दर ने पुस्तकालय की क्षति को देखा कि वहाँ की पुरानी कई रेखाएं नष्ट हो चुके थे। एस्कन्दर की डायरी से इसके ह्रास का विस्तृत लेखा-जोखा प्राप्त होता है। वे ब्रिटिश लाइब्ररी के माइक्रोफिल्मों की सहायता से इसका पुनर्निर्माण करने लगे। इसी बीच में भी लाइब्ररी के विरोध में हमला हुआ और हमले में कई कर्मचारी मारे गये।

विरोधों के बावजूद दिसंबर 2006 को पुस्तकालय पुनः खुला गया। किन्तु सैनिकों की कारवाई के कारण सभी कर्मचारी उद्घाटन समारोह में पहूँच न सके।

युद्ध का रूप-परिवर्तन - वैयक्तिक धरातल से सामाजिक धरातल तक

विश्व में युद्ध का प्रचलन अनेक युगों से है। समाज पहले स्वयं युद्ध में पडना नहीं चाहता है। युद्ध पहली बार वैयक्तिक धरातल पर जन्म लेता है। मानव हृदय के द्वेष, इर्ष्या और स्वार्थ ही उसे दूसरों की संपत्ति लूटने एवं उन्हें मारने को प्रेरित करते हैं। उसी स्वार्थ के कारण वह दूसरों पर आक्रमण करता है और दूसरा व्यक्ति आत्मरक्षा हेतु युद्ध में भाग लेते हैं। समाज के नायक, नेता या राजा के मन में छिपी महत्वाकाँक्षा युद्ध के बीज बो देती है। किसी न किसी व्याज से वह युद्ध करना चाहता है।

एक या दो स्वार्थ मानव के मन में युद्ध की ज्वाला सबसे पहले जलने लगती है। जन-समूह अपने आप युद्ध में भाग लेना नहीं

1. मलयाल मनोरमा 2007 फरवरी 16 दैनिकी

चाहता। लेकिन किसी-न-किसी प्रेरणा से उसे युद्ध में भाग लेना पडता है। तब युद्ध दो व्यक्तियों के वैयक्तिक द्वन्द्व युद्ध के धरातल को छोडकर सामाजिक धरातल पर व्यक्त हो जाते हैं।

महाभारत-युद्ध का मूल कारण एक ही परिवार के कुछ व्यक्तियों के द्वेष या प्रतिशोध की भावना थी। लेकिन युद्ध की विभीषिका को भोगा आम जनता ने, इससे सारा राज्य भी नष्ट हो चुका था।

कलिंग युद्ध का मूल कारण अशोक की महत्वाकाँक्षा थी। साम्राज्य व्याप्ति ही उनका लक्ष्य था। लेकिन युद्ध का त्रासद परिणाम भोगा मासूम जनता ने। युद्ध में पराजित व्यक्ति के मन में विजेता के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना जाग उठती है। वह उसके विरुद्ध विद्रोह करने का प्रयास भी करता है। अगर इस विद्रोह में वह पराजित होता है तो उसका व्यक्तित्व एकदम खंडित हो जाता है।

प्रथम विश्व युद्ध के अनेक कारण हैं। लेकिन बहुत जल्दी इसे फूटने का कारण आस्ट्रियन ड्यूक फ्रांसीस फ्रेरनिडाड की हत्या है। युद्ध चार वर्षों तक चलता रहा। करोडों ने इसमें अपनी जान खोयी।

युद्ध केलिए समय की कोई सीमा नहीं है। 115 वर्षों तक चले रहनेवाले युद्ध से लेकर केवल 6 दिन तक कायम रहनेवाले युद्ध भी है। फ्राँस के शासन केलिए इंग्लंड ने फ्राँस के साथ 115 वर्षों तक युद्ध किया। इसे हम शताब्दी युद्ध पुकारते हैं (1337 से1453 तक) इंग्लैंड के शासक लान कास्टर और योर्क के बीच हुए युद्ध 30 बर्ष तक कायम रहा। आम जनता ने इस युद्ध में भाग नहीं लिया। युद्ध के

इतिहास में एक विस्मय है अरब और इस्राइल के बीच हुए युद्ध। इस युद्ध की आयु केवल 6 दिन थी।

युद्ध के साथ अपराधों की संख्या और मानसिक विक्षिप्तता बढती है। यह समाज केलिए बडा अभिशाप बन जाता है। इराक युद्ध की विभीषिका का सीधा दृश्य एक मशहूर पत्रकार रिपोर्ट करते हैं, जब मैं वहाँ पहूँचा तो मिसाइलों की निर्दयी हमले से पेडों के ठुंठ सुलग रहे थे। सडक पर पिघले हुए टायर पडे थे, जिनमें से धुआँ उडा रहा था और जिन लोगों को आज़ाद करने का दावा अमेरिका कर रहा है, उनमें से सत्रह लोगों के चिथडे ज़मीन पर पडे हुए थे। बचे हुए लोगों को एंबुलेंस में डालकर ले जाया जा रहा था। आग बुझानेवाले दस्ते बची-खुची इमारतों की आग बुझाने की कोशिश कर रहे थे। लोग अपनी चीज़ों को आग की लपट से बचाने केलिए सडक पर फेंके रहे थे और भीड बढती जा रही थी। पहले लोगों ने अपने पडोसियों को क्षतिग्रस्त इमारतों से बाहर निकालने में सहायता की, लेकिन जब आपात्कालीन सेवाएँ शुरू हो गई तो सदमे की जगह गुस्से और आक्रोश ने ली। एक व्यक्ति ने हमसे पूछा, वे हमारे साथ ऐसा क्यों कर रहे है? हम तो दूकानदार है, यहाँ सैनिक ठिकाने नहीं हैं। मैं तुमसे पूछता हूँ, बुश ऐसा क्यों कर रहे है। हमने तुम्हारा क्या बिगाडा है। एक व्यक्ति ने हाथ में लगे छर्रें दिखाते हुए कहा, 'ये चीज़ हर जगह उड रही थी। खिडकियाँ टूट गई, दीवारें गायब हो गई, मैं ने इस इमारत से दो लोगों को बाहर निकाला, पर वे मर चुके थे।' इस शहर में बेकाबू दुख हर तरफ दिखाई दे रहा था।

1. आउटलुक साप्ताहिक 7 अप्रैल 2003

युद्ध के समय रोटी के एक टुकडे केलिए कुछ भी हो सकता है। बाहरी दुनिया तथा इतिहास में मनुष्य और पदार्थ का संबन्ध औपनिवेशिक काल में मनुष्य और भोजन तक सिमट जाता है। अपराधों के बढाव के बारे में जानने केलिए औपनिवेशिक सन्दर्भ को ध्यान में रखना ज़रूरी है। "जब कोई अल्जीरियावाले किसी दूकानदार के सामने आकर थोडा-सा खाद्य पदार्थ और कुछ बूंद तेल माँगता है तो दूकानदार उसे पहले के कर्ज के नाम पर उधार देने से इन्कार कर देता है। ऐसी हालत में उसमें अपराध की भावना जाग उठती है, वह मानो उसकी हत्या कर देना चाहता है। जानवरों को खाने केलिए फेंकी जानेवाली रोटी पर बच्चे भी गुस्से और घृणा से आपस में झपटते हैं। ये सभी युद्ध की त्रासद परिणति के दर्दनाक दृश्य है। मज़बूत पक्षी दाना चुग लेता है, जबकि कम आक्रामक पक्षी और कमज़ोर हो जाता है। हरेक युद्ध के बाद उपनिवेश इसी तरह के फार्म हाउसों में बदल जाते है, जहाँ कानून सिर्फ खंजर है।"[1]

युद्ध - मानव-सभ्यता की समस्या

युद्ध की समस्या मानव सभ्यता की समस्या है। काल बदले, कारण बदले, लेकिन युद्ध होता ही रहता है। महाभारत काल और रामायण काल में जो संघर्ष चल रहा था, आज के ज़माने में उसका बदला हुआ रूप देखा जा सकता है।

युद्ध के उपरान्त समाज में एक ह्रासोन्मुख संस्कृति जन्म लेती है। जिसके मन में युद्ध के बीज पनपते हैं, युद्ध के परिणाम का

1. Outlook साप्ताहिक 7 अप्रैल 2003

भोक्ता केवल वह नहीं, उसकी परवर्ती पीढी को भी उसका परिणाम भोगना पडता है। 8 अगस्त 1945 में हिरोशिमा के बमवर्षा की खबर सुनकर ब्रिटन के प्रधानमंत्री विनस्टन चर्चिल ने बताया - वहाँ जीवित रहनेवालों को मरनेवालों से ईर्ष्या होती है। मरनेवाले मर चुके है, पर जिवित रहनेवालों को असह्य पीडा भोगनी पडती है।

हिरोशिमा की बमवर्षा में 1300 डिग्री ऊष्मा में ओहियो नदी भाप बनी। ताप और विकिरण के मारे 14,00 से अधिक लोग उसी क्षण मारे गये। इस दुर्घटना के शिकार लोग इक्कीसवीं सदी में भी जापान ओर उत्तर कोरिया में जीते है या मरकर जी रहे हैं। 9 अगस्त को नागसाकी में 'फाटमान' नामक एक प्लूटोणियं बम से सैकडों लोग मारे गये।

अणुप्रसार के शिकार लोगों और उनके परिवारवालों को जापान में 'हिबाकुषा' नाम से पुकारते हैं। तीन लाख से अधिक हिबाकुषा आज जापान में हैं। समाज से इन्हें भ्रष्ट कर चुके हैं। जनितक बीमारियों के डर से इनसे शादी-संबन्ध स्थापित करने से लोग हिचकते हैं। जीवित मुर्दों के समान ये अपनी ज़िन्दगी बिता रहे हैं।

अमरिक्का और वियतनाम के बीच 1955-75 में हुए युद्ध का अन्त अत्यन्त दर्दनाक था। होचिम के उत्तर वियतनाम का अन्त करने केलिए अमरिक्का ने इस युद्ध में दक्षिण वियतनाम का साथ दिया और इसमें करीब बीस लाख लोगों की हानि हुई। अमरिक्का ने इस युद्ध में 'एजेंट ओरेंच' नामक रासायनिक वस्तु का प्रयोग किया। इस

घोर विनाश के प्रतीक के रूप में अनेक विकलांग आदमी आज भी अमरिक्का में जी रहे हैं।

पिछले शतक में विश्व में हुए युद्धों में कुल मिलाकर एक सौ से अधिक लोग मारे गये। प्रथम विश्व युद्ध में मरनेवालों की संख्या दस करोड से अधिक थी। आधुनिकता की प्रेरणा से यहाँ होलकोस्ट जैसी क्रूर घटनाएँ हुई हैं।

रूसी विप्लव के एक दिन का नाम ही bloody sunday रखा गया। गरीबी के कारण जब रूसी जनता की ज़िन्दगी अधिक दुष्कर हो गयी, अपनी परेशानियों को सम्राट तक पहूँचाने केलिए फादर गापोंण के नेतृत्व में जानेवाली आम जनता पर सम्राट के सिपाहियों ने अक्रमण किया। इस आक्रमण में दो हज़ार से अधिक लोगों की हत्या हुई। तब से लेकर यह 'खूनी रविवार' बन गया।

12 फरवरी 1950 को एक रेडियो भाषण में ऐनस्टीन ने बताया 'युद्ध में यदि हम शत्रुनाश कर सकते हैं, लेकिन युद्ध से पैदा होनेवाली मानसिक अवस्था से हम बच नहीं पाते। संसार को युद्धक्षेत्र बनाने में राजनीति और विज्ञान दोनों का समान हाथ है। राजनैतिक नेताओं ने देश को युद्ध की राह पर लाकर खडा किया। वैज्ञानिकों ने धरती को कम से कम सात बार संहार करने में सक्षम हथियारों का निर्माण किया। अगले दस वर्षों में धरती को सत्तर बार संहार करने की क्षमता इन हथियारों को है।

आज का मनुष्य दूसरों का संहार करने में बहुत तत्पर है। मानवता नाम की कोई चीज़ उनमें बाकी न रह गयी है, हँसते हँसते वे एक मासूम शिशु का भी सिर घड से अलग कर सकते हैं। अपनी ज़िन्दगी को खुशी से भरने केलिए दूसरों का विनाश करके वह आगे बढता है। जहाँ जहाँ वह जाता है, सब कहीं विनाश के बीज बोता है। इसी तरह संसार पागल आदमियों का कैदखाना हो गया है। ऊर्जा के पचहत्तर फीसदी हिस्सा आदमी आज युद्ध केलिए खर्च करता है। नये नये तकनीकी से भरे हथियार बनाने केलिए वह अपने धन और समय व्यर्थ इस्तेमाल करते हैं।

शत्रु जनता के शरीर से एक बूँद खून भी गिराये बिना उसका नाश करने की क्षमता रखनेवाले हथियार आज अमरिक्का के पास है। उसकेलिए न बम की आवश्यकता है, न तोप की। प्रसिद्ध पत्रकार कुञ्जनन्तन नायर अपनी आत्मकथा में इस पर प्रकाश डालते हैं, 'AIDS के पूर्वज जैसे विशेषण पाने योग्य बन्दर रोग याने monkey disease का संक्रमण करने केलिए अमरिक्का ने वैरसों को विकसित किया। यह उनका जैव हथियार था। अफ्रिका के युगाँडा से हज़ारों बन्दरों को प्रत्येक विमान में पश्चिम बर्लिन ले जाकर अनुसंधान के कामों में लगाया जाता था। उनके शरीर से प्रत्येक वैरसों को लेकर यह अनुसंधान चलाता था। करोडों आदमियों को एक साथ मारने में सक्षम जैव शस्त्रों के रूप में इन वैरसों को परिवर्तित कर सकते हैं। सालों पहले चीन में 'सारस' बीमारी के संक्रमण के पीछे यही साजिश होगी।

---

1. 2005 जून 30 मातृभूमि साप्ताहिक

आणव शस्त्र - तकनीकी मांनस्टर के रूप में

आज आणव शक्ति ने एक तकनीकी मॉनस्टर का रूप धारण कर लिया है। प्लूटोणियम का निर्माण करनेवाले Fast breeder रियाक्टरों का निर्माण होने पर अणुकेन्द्रों का खतरा बढ गया है। प्लूटोणियम एक प्रकृतिजन्य वस्तु नहीं, युरेनियम का विसर्ज्य वस्तु है। अणु विघटन से युरेनियं-238 और प्लूटोणियम जैसी खतरनाक चीज़ें प्राप्त होती है। इनमें प्लूटोणियं बडे पैमाने पर गांट (cancer) की बीमारी का कारण बन जाता है।

अणुशक्ति के उत्पादन केन्द्रों से बाहर निकलनेवाली चीज़ें बडी खतरनाक है। यहाँ से बाहर निकलनेवाले रासायनिक पदार्थ बच्चों में कैंसर का कारण बन जाता है। अमरिक्का के उत्तर इलाके में अणुरियाक्टर की स्थापना से बच्चों की मृत्यु दर में ग्यारह प्रतिशत से ज़्यादा बढोत्तरी हुई। माँ की कोख में मरनेवाले बच्चों की संख्या तीन प्रतिशत बढ गयी। अमरिक्का ने अणुशास्त्र प्लांटों के निर्माण केलिए बारह बिल्लियन डालर सब्सिडी देने की व्यवस्था की है। मनुष्य की गलती के कारण यंत्रों का नियंत्रण टूट जाने से अणुकेन्द्रों में खतरा होती हैं। टाइम मागज़िन (1988 अक्तूबर 31) के रिपोर्ट में बताया गया है- ओहियो में Feed maker production centre के नाम से एक संस्था खुली। हथियार निर्माण और अणुशक्ति निर्माण यहाँ चल रहा था। आसपास के लोग इससे बेखबर थे। उनका विचार था कि यह घरेलू जानवरों केलिए भोजन बनाने की फैक्टरी है। इस प्लैंट के पास रहनेवाली स्त्रियों को अनेकों बार कैंसर केलिए आपरेशन करवाया था।

खतरनाक अणुप्रसरणों केलिए प्रयुक्त इंधन, फैक्टरियों से बाहर निकलनेवाली चीज़ें - ये सभी अणुप्रसारण के कारण हो जाते हैं। बडे पैमाने पर होनेवाले अणुव्यापन जीवित कोशों को बहुत जल्दी ही मिटा देते हैं। यदि यह छोटे पैमाने पर हो तो, जीव कोशों के विभाजन में बाधा होगी। जीवों के जनितक रूप को यह विकल बना देगा। शरीर की पेशियों में इससे कैंसर हो जाएगा।

आणव व्यापन के त्रासद परिणामों पर हुए अनुसंधान में बताया गया है कि अणुव्यापन के ज़रिए होनेवाले कैंसर में अमरिक्का में हरेक वर्ष 32,000 से अधिक लोग मर जाते हैं।

1951 को नोवादा में हुए अणुबम परीक्षण के बाद आयडिन-13 के प्रसारण से तीस हज़ार से अधिक मासूम बच्चे मारे गये। 'आणव केन्द्रों से बडे पैमाने पर ऊर्जा के संहार शक्ति का व्यापन होता है। एक व्यक्ति के जीवन दर्शन को, उनके उद्देश्यों को ही नहीं उनके भविष्य को ही ये खतरे में डाल देते है। व्यक्ति और समाज की सृजनात्मकता को भी इससे क्षति होती है। वीयन्ना के International Atomic Energy Agency के अनुसंधाता पाहनर 'अणुशक्ति का सैनिकेतर मनोवैज्ञानिक पक्ष' नामक अपने प्रबन्ध में ऐसा लिखा। आणव व्यापार क्षेत्र के उद्योगपतियों को उनके वाक्यों से गुस्सा आया। अन्त मं उन्हें वीयन्ना छोडना पडा, अणुशक्ति-समाज से भी वे बाहर फेंके गये।

भारत के प्रथम अणुपरीक्षण की सफलता की अभिव्यक्ति केलिए प्रयुक्त कोड का नाम था 'बुद्धन मुस्कुराते हैं'। अहिंसा सिद्धान्त

के प्रचारक प्रबुद्ध के नाम पर ऐसे एक कोड का प्रयोग बिल्कुल विरोधाभास-सा लगता है। बुद्ध धर्म को सबसे अधिक प्रचार मिलनेवाला एक देश है-जापान।

इसी जापान में अणु विस्फोट में अनेकों की दर्दनाक मृत्यू हुई। इसी तरह अणुशक्ति की असीम ताकत मानव के विचारों को, उसके धर्म को और आदर्शों को नकारते हुए आगे बढ रही है।

बुकर पुरस्कार विजेता अरुन्धति राय 'भावना का अन्त' नामक अपने लेख में अणुशक्ति के खतरों पर चेतावनी करती है। उनकी मान्यता है कि "मानव के सबसे बडा दुश्मन मानव ही है। एक आणव युद्ध होगे तो हमारी दुश्मनी चीन या अमरिक्का से न होगी, हम आपस में लडेंगे। हमारे सबसे बडा दुश्मन यह पृथ्वी होगा। पृथ्वी के सभी चीज़ें, आकाश, वायू, मिट्टी, हवा ओर पानी हमारे खिलाफ लडेंगे। पृथ्वी के शहर,गाँव और खेत ज़्यादा दिनों तक जल जायेंगे। नदियों से ज़हर का प्रवाह होगा, आस्मान अग्नि हो जाएगा। हवा अग्नी की ज्वालाओं को चारों और फैलेंगे। यहाँ दिन न रहेगा, सारा संसार अंधेरे में डूब जाएगा। आणवशैत्य में पृथ्वी का जल ज़हर से भरा बर्फ का टुकडा हो जाएगा। भूमि के अन्तर के पानी भी गन्दा हो जाएगा। यहाँ शेष बचे भोजन केलिए मानव एक दूसरे से लडेंगे। ज़िन्दा होने की विडंबना में सारा शरीर झुलसकर, अंधे होकर, कैंसर फैलानेवाले बच्चों के आधे-मरे शरीर लेकर तब हम कहाँ जाएँगे?"

1. अरुन्धती राय के लेख - अरुन्धती राय - डी.सी. बुक्स

अणु शस्त्रों को खुले हुए मन से विरोध करनेवालों के थकान-भरा परिश्रम शान्ति की यादें हममें जगाते हैं। उनकी जुलूसें, पद यात्राएं और तीखी प्रतिक्रियाओं से ये हथियार कुछ ही देर केलिए हम से दूर हो गये है। जब हमारी भोजनशालाएँ बम से भरते हें, हम भूख से तडप लेते है, तब हम बम बेचकर भोजन खरीदने केलिए विवश हो जाएगा।(अरुंधती राय के लेख - अरुंधती राय DCBooks)

श्रीमती रोय की राय में अणुशस्त्रों के प्रयोग से काफी खतरनाक है संसार में उनकी उपस्थिति। वे हमारे निर्णयों पर भी अपना अधिकार जमाते हैं, आचरण को नियंत्रित करते हैं, और समाज का शासन करते हैं। अणु शस्त्रों की समस्या को प्रत्येक व्यक्ति अपनी वैयक्तिक समस्या मानना है और समझना चाहिए कि प्रत्येक आदमी के शरीर पर ही बम गिरते हैं।

भारत और पाकिस्तान अलग अलग देश है, फिर भी एक ही आकाश, हवा और पानी को बाँट लेनेवाले है। हवा और बरसात की गति के बदलने के अनुसार अणुप्रसरण से भरी मिट्टी भारत या पाक में गिरती है। लाहौर से अमृतसर की ओर केवल तीस मीलों की दूरी है। यदि हम लाहौर में बम डाले तो पंजाब जलेंगे। कराची में बम गिरे तो गुजरात, राजस्थान और मुंबई तक जलेंगे। पाकिस्तान के विरोध में लडनेवाले हरेक युद्ध हम खुद के खिलाफ लडते हैं।

अणुबम प्रजातंत्र-विरोधी है, देशीयता-विरोधी है, मानव-विरोधी भी। यह मनुष्य द्वारा निर्मित सबसे खतरनाक चीज़ है। इस

संसार की आयू 4600 दसलाख है। आधे ही दिनों में हम इसका नाश कर सकते हैं।

अरुंधतीजी के वाक्य भविष्य के खतरों को टालने केलिए हमें सजग बना देते हैं। पृथ्वी हमारी है, ज़िन्दगी हमारी है, इसे बचाने का काम सिर्फ हमारा है।

हथियार-व्यापार और युद्ध

युद्ध एक नकारात्मक अवधारणा है, जिसका अर्थ है-शान्ति का विलोप। यह केवल आधुनिक युग की समस्या नहीं है। नृतत्वशास्त्रियों के अनुसार मानव को पृथ्वी पर आये करीब तीन लाख वर्ष हो गये। इस लंबे अन्तराल के बीच संसार में अनेक युद्ध लडे गये, अनेक साम्राज्य विनष्ट हुए, कुछ अस्तित्व में आ गये, साथ ही साथ अनेक सभ्यतायें भी जन्म ली और कालान्तर में विलीन भी हुई।

युद्ध और शांति की समस्या मानव का अस्तित्व, उसकी सभ्यता और संस्कृति से गहरे रूप में जुडा हुआ है। आदिमकाल में यह अस्तित्वगत आवश्यकता थी। आज इसमें मानवीय चेतना और उसकी बुद्धि को काम में लाया जाता है। पहले युद्ध स्थानीय या प्रादेशिक राजाओं के बीच लडा जाता था। लेकिन आधुनिक युग में इसका रूप अधिक विश्वव्यापी बना हुआ है, जिसमें राष्ट्र ही नहीं, एक राष्ट्र-समूह के खिलाफ दूसरे राष्ट्र समूह ने हिस्सा लिया है। युद्धजनित हिंसा दूसरी हिंसाओं से अलग इसलिए है कि यह संगठित राज्यशक्ति द्वारा ही की जाती है।

युद्ध आज एक उद्योग का रूप धारण कर चुका है। विकसित देशों की अर्थव्यवस्था आज युद्धों से ज्यादा मज़बूत हो गयी है। तीसरी दुनिया के देश पश्चिमी देशों से हथियार खरीदते हैं और अपनी अर्थव्यवस्था को चौपट करते है। हथियार उद्योग को बनाये रखने केलिए दुनिया के विकसित राष्ट्र गृहयुद्धों, सीमा-विवादों और अन्तर्राष्ट्रीय तनावों को हवा देते हैं। इस प्रकार ये एक तरह से मौत के सौदागरों की भूमिका अदा कर रहे हैं। एक अनुसंधान के अनुसार दुनिया के पच्चास प्रतिशत वैज्ञानिक अज नए-नए शस्त्र और शस्त्र पद्धतियों के विकास में लगे हैं।

अमरिक्की अर्थव्यवस्था के केन्द्र में आज हथियार है। सारी दुनिया के पच्चास प्रतिशत से अधिक बडे वैज्ञानिक आज हथियारों के शोध में लगे हैं। यू.एन.ओ के रिपोर्ट के अनुसार सैन्यबल और हथियारों पर विश्व-भर में 780 बिलियन डालर प्रतिवर्ष खर्च किए जाते हैं। आयुध निर्माण के उदेयोग के इर्द गिर्द दूसरे अनेक उद्योग हैं जो रासायनिक कचरा पैदा करते है। आज हथियार उद्योग को सार्वभौमिक स्वीकृति मिल गयी है। इसलिए कोई यह नहीं सोचता है कि खतरनाक आधुनिकतम विनाश के साधन बनाना या निर्यात करना घृणा और हिंसा का प्रचार करना है।

आज हथियार बनाने में प्रथम स्थान अमरिक्का को प्राप्त है। रूस जैसे अन्य देशों द्वरा बनाए हथियार अमरीकी हथियार से उत्पन्न संकट की आत्मरक्षा हेतु बनाए गए हैं।

अभी अमरिक्का के पास नए नए किस्म के ज़हरीले हथियार हैं। रासायनिक और जैविक तत्वों के मिश्रण से अमरिक्का में एक ऐसा नृवंशीय हथियार विकसित करने की तैयारी हुई है, जो खास खास जातियों और नस्लों को पहचान कर आक्रमण करेगी। इतना ही नहीं, मानवीय इच्छाओं का दमन करते उनकी मानसिकता और आचरण को प्रभावित करके जनता को स्वचालित यंत्र में बदल देनेवाले मनोवैज्ञानिक हथियार बनाने की सूचना है। नाभिकीय टकराव के संभावित दुष्परिणाम का अध्यन करनेवाले वैज्ञानिकों के अनुसार विश्व में नाभिकीय युद्ध के बाद जीवित रहनेवाले लोगों का स्वास्थ्य अत्यंत क्षीण होगी। वे इस स्थिति में होंगे कि ठंड से जम कर मर जाएंगे। केवल भूमि को ही नहीं, महासागरों तक को यह बर्फ जमा देगी। नाभिकीय विस्फोटों और प्रचंड अग्निज्वालाओं के कारण हवा में निर्मुक्त वायूधुंध अधिकाँश सूर्य की किरणों को ढंक लेगा। उसके अतिरिक्त विश्व अर्थतंत्र और राजनीतिक ढाँचा पूरी तरह बिखर जाएगा।

हथियारों की खरीद देश में राजनैतिक विकृतियाँ पैदा करती है। बोफोर्स मामले इस बात केलिए प्रत्यक्ष प्रमाण है। विकसित देश आर्थिक और राजनीतिक रूप में आविकसित देशों पर हस्तक्षेप करते हैं। इस प्रकार युद्ध को बनाये रखने के मूल में बडे राष्ट्रों की स्वार्थ मनोवृत्ति काम करती है।

आज छोटे छोटे बच्चों के पास रखे चमकते लडाकू खिलौने और हिंसा के नये रंगवाले सामान एक उभरती मानसिकता का प्रतीक

है, नई बंदूक-संस्कृति की जड है। 1989 से 1996 के बीचविकसित राष्ट्रों ने 117 बिलियन डालर से अधिक हथियारों की बिक्री की है, जो हथियारों की कुल खरीद बिक्री का 45 प्रतिशत है।ये व्यापार निजी क्षेत्रों में चलता रहता है। लेकिन सरकार की ओर से इन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन और संरक्षण मिलता है। चाहे आधुनिकतम विनाशक अस्त्र हो, बारूदी सुरंगे, शराब हो, हर चीज़ से नौकरी मिलती है, निवेश पर लाभ मिलता है- समग्र राष्ट्रीय उत्पाद बढता है। अर्थनीति का यह सत्य वास्तव में हम सब पर हावी है। अर्थशास्त्र एक ऐसा विज्ञान बन गया है जो सामाजिक चिंतन और नैतिक आधार विहीन है। नोबेल पुरस्कार विजेता 23 अमरिक्की वैज्ञानिकों ने वहाँ के राष्ट्रपति जाँनसन को एक पत्र में लिखा था कि अमरिक्का युद्ध में रसायनों और जीवाणुओं के प्रयोग में पहल नहीं करे, क्योंकि आगे आनेवाली पीढियाँ उसे कभी क्षमा नहीं करेंगी।

मार्क्सवाद युद्ध का मूल समाज के विकास में खोजता है, मार्क्स के अनुसार विकसित समाज में उत्पादन के साधन एक विशेष वर्ग के हाथ में चले गये तथा दूसरा वर्ग शोषित और दमित होता गया। इस प्रकार के वर्ग विभाजन के साथ-साथ शोषणमूलक समाज के अन्तर्विरोध का प्रतिफलन राजनीति के क्षेत्र में नज़र आने लगा।

पूंजीवादी शोषण और विश्वव्यापी साम्राज्यवादी युद्ध का परस्पर संबन्ध है। पूँजीवादी शोषण की सफलता केलिए साम्राज्यवादी महायुद्ध ज़रूरी है। विश्व-भर मंडी हासिल करने और उपनिवेश कायम

करने की होड में पूंजीपति आपस में लडता-झगडता है। पूँजीपतियों की इसी होड के कारण विश्व के दो महायुद्ध हुए। उन महायुद्धों ने विश्व पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी भेडियों के चेहरों को बिल्कुल नंगा कर दिया है। यूरोप और अमरिक्का के सभी साजिशों को पर्दाफाश करके युद्ध ने ज़ाहिर किया कि दुनिया से विश्वयुद्ध तभी खत्म किया जा सकता है जब से दुनिया से वर्गों का अन्त किया जाय।

लेनिन के अनुसार समाजवादियों ने राष्ट्रों के आपसी युद्धों को बर्बर और पाशविक कृत्य कहकर हमेशा उसकी निंदा की है। लेकिन युद्ध के प्रति हमारा रूख पूंजीवादी शाँतिवादियों तथा अराजकवादियों के रूख से मूलतः भिन्न है। उनसे हमारा मतभेद इस बात में है कि हम युद्ध तथा देश के आन्तरिक वर्ग संघर्ष का अनिवार्य संबन्ध मानते है। हम समझते हें कि जब तक समाजवाद की सृष्टि नहीं होती, तब तक युद्ध का उन्मूलन नहीं कर दिया जाता। हमारा मतभेद इस बात में भी है कि हम गृहयुद्धों को यानी उत्पीडित वर्ग द्वारा उत्पीडक वर्ग के खिलाफ, गुलामों द्वारा गुलाम-मालिकों के खिलाफ, भू-दासों द्वारा भू-स्वामियों के खिलाफ और उजडते हुए मज़दूरों द्वारा पूजीपति वर्ग के खिलाफ चलाए जानेवाले मुद्दों को पूर्णतः वैध, प्रगतिशील और आवश्यक मानते हैं। अंतर्राष्ट्रीय इज़ारेदार पूंजीपति अपने व्यापारिक हित और बाज़ार केलिए दुनिया का आपस में बंटवारा कर लेते हैं। महाजनी पूँजी के अगुआ विश्व परआधिपत्य जमाकरअपना सुरक्षित बाज़ांर बनाना चाहता है। इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय दमन, दखलंदाज़ी और जबर्दस्ती तीव्र हो जाती है। साम्राज्यवादी देश अपने क्षेत्र विस्तार केलिए आपस में

युद्धरत हो जाते हैं। गरीब देशों को वह अपना उपनिवेश बनाते है और शोषण कर देते है। इस तरह युद्ध के पीछे पूंजी और राजसत्ता का धृणित खेल नज़र आते हैं।

अपने क्षेत्र विस्तार केलिए पूंजीवाद को नए नए बाज़ार आवश्यक है। पूंजीवाद के परिणामस्वरूप हुए यंत्र विप्लव के कारण उत्पादन में बढोत्तरी हुई। अब सामग्रियाँ खरीदने केलिए नए नए उपभोक्ताओं की ज़रूरत पडी। 1482 में कोलंबस ने भारत की खोज की। वस्तुतः यह एक बडे उपभोक्ता समाज की खोज थी। इस तरह खोज करके नये नये बाज़ार पर अधिकार जमाने तथा मूलधन और कच्चे माल पर अपनी पकड कायम रखने केलिए पूंजीवाद ने आरंभ से ही साम्राज्यवाद और युद्ध का सहारा स्वीकार किया है।

प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धों के बाद क्रमशः रूसी और चीनी क्रान्तियां हुई। संसार में समाजवाद का उदय हुआ, साम्राज्यवादियों के खिलाफ मुक्ति संघर्ष में तेज़ी आयी। अमरिक्का वियतनाम के सामने पराजित हो गया। बहुत से उपनिवेश स्वतंत्र हो गये। साम्राज्यवाद अपनी मिटती अस्मिता कायम रखने केलिए नई रणनीति की तलाश में लग गया। साम्राज्यवाद ने इसकेलिए विश्व में सशस्त्र युद्ध के साथ शीत युद्ध की भी सृष्टि की है। यह पूरे विश्व की साँस्कृतिक मर्यादा को नष्ट कर देते है और विश्व की आम जनता को वैचारिक रूप से गुलाम बनाया देता है। वैचारिक रूप से यो दुनिया के अविकसित देशों की जनता को बरगलाने का काम करती है, ताकि वे साम्यवादी शक्ति से

अलग रहे। समाजवाद और साम्यवाद की संकल्पना को नष्ट कर देना इनका मक्सद है। साम्राज्यवादी शक्तियों को परास्त करनेवाली शक्तियां साम्यवाद और समाजवाद है, जिनमें सारे संसार से किसी भी प्रकार के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शोषण को खत्म करने का दृढ संकल्प निहित है।

शीतयुद्ध की नीति के आविष्कार के साथ समाजवादियों के प्रभाव को रोकने में वे समर्थ हुए। इसलिए अमरीकी साम्राज्यवाद ने शस्त्र प्रतियोगिता की शुरूआत की। विभिन्न देशों में सामरिक केन्द्र बनाकर, समाजवादी देशों पर युद्ध का प्रभाव डालने लगा। अतः द्वितीय महायुद्ध के बाद अमरिक्की साम्राज्यवाद विश्व के अधिकाँश देशों में पूंजीगत जाल बिछाने लगा। तीसरी दुनिया के उत्पादन पर इनका कब्जा है। चाय, काफी, तेल, तंबाकू, इत्यादि सभी चीज़ों का उत्पादन तीसरी दुनिया के देशों में होता है, किन्तु इनकी बिक्री साम्राज्यवादी देशों के माध्यम से होती है।

औपनिवेशिक राष्ट्रों में सरकार की स्थापना करके वहाँ की प्रकृति संपदा का शोषण करना और उन्हें अपना बाज़ार बनाना साम्राज्यवादी राष्ट्रों का मक्सद है। गरीब और निम्न स्तर के लोगों की जीवन-व्यवस्था में सुधार लाना वे नहीं चाहते।

युद्धविरोधी नीति को बढावा देने केलिए साम्राज्यवादी नीति को केन्द्र में रखकर सोचना ज़रूरी है। साम्राज्यवाद ही सदा युद्ध का मूल स्रोत है। विश्व के पैमाने पर युद्ध के खात्मे केलिए साम्राज्यवाद का

खात्मा ज़रूरी है। युद्ध का वास्तविक लाभ भी साम्राज्यवाद को ही होता है। वास्तव में युद्ध का विरोध साम्राज्यवादी शक्तियों का ही विरोध है।

मानवाधिकार का ध्वंसन

इंग्लंड के राजा जॉन और राज्य के प्रभुओं द्वारा 1215 मे हस्ताक्षरित मार्नाकार्टा, 1628 के पेटिशन ऑफ राइट्स आदि मानवाधिकार संरक्षण के इतिहास की प्रमुख घटनाएँ है।

1948 दिसंबर 10 को पारिस में मानवाधिकार घोषणा को संयुक्त राष्ट्रसंघ की अनुमति मिली। इसके प्रथम अनुच्छेद में ही बताया गया है - सभी मानवों का जन्म स्वतंत्र होकर, समान गर्व और अधिकार से होता है। मानव को आपस में प्रेम और भाईचारे के साथ रहना चाहिए।

इसके पाँचवाँ अध्याय में कहा गया है कि कठोर और क्रूर दण्ड किसी को नहीं देना है। गुलामी की प्रथा को रोकने के संबन्ध में भी इसमें कहा गया है। गुलामी-व्यापार और गुलामी-प्रथा पर नियम द्वारा रोकथाम लगाना चाहिए।

इस घोषणा के हुए अब 54 साल बीत गए। फिर भी दुनिया के हर देश में मानवाधिकार का उल्लंखन होता रहता है। युद्ध के समय मानवाधिकार का ध्वंसन बडे पैमाने पर होता है। सायुध सेनाओं में अठारह वर्ष के नीचे के बालकों को काम करना पडता है।

1. Britannica Ready Reference Encyclopedia

Coilation to stop the use of child soldiers के 2001 के रिपोर्ट के अनुसार सेनाओं में बालकों के उपयोग में 2001 के बाद बढोत्तरी हुई है। युद्धोपरान्त अफ्गानिस्थान, सियारा लियोन, इराक आदि देशों में करीब 40,000 बच्चों की हत्या हुई है।

हाल ही में रूस के बस्लान में चेचन सेनाओं के आक्रमण में 3,00 से ज़्यादा स्कूली बच्चे मारे गए। भोजन और पानी दिए बिना कठिन पीडा देने के बाद ही आतंकवादियों ने इनकी हत्या की है।

शरणार्थियों की समस्या

युद्धोपरान्त उपजी सबसे बडी समस्या है शरणार्थियों की समस्या। यह समस्या इक्कीसवीं सदी की सबसे बडी चुनौतियों में एक है। युद्ध के दैरान कुछ लोगों को अपने परिवार, राज्य आदि नष्ट होते हैं। UNHCR के आँकडों के अनुसार 2004 जानवरी 1 तक संसार के शरणार्थियों की संख्या सत्तर लाख से अधिक है।

सबसे बडी संख्या की शरणार्थी पाकिस्तान में है। अफ्गानिस्तान की अराजकता के कारण पाकिस्तान में इसकी संख्या में बढोत्तरी हुई है।

दूसरे विश्वयुद्ध के कारण बीसवीं सदी में शरणार्थियों की संख्या बढ गई। 1940 की शुरुआत में संसार ने दूसरे विश्वयुद्ध के दुर्घटनापूर्ण दिनों का सामना किया था। इन दिनों सैनिकों में मलेरिया का व्यापन हुआ, मृत्यू इस तरह युद्धक्षेत्र के बाहर भी पहूँची, सैनिक

ज़्यादा परेशान हुए। बाद में इन्हें मच्छरों से युद्ध करना पडा। मच्छरों से बचने केलिए डी.डी.टी का उपयोग किया। मच्छर के साथ मलेरिया भी दूर हुए।

युद्ध के उपरान्त भोजन का अभाव महसूस होने पर छोटे-छोटे प्राणियों का नाश करके कृषि में वृद्धि लाने केलिए अणुनाशिनी का इस्तेमाल किया गया। इससे उत्पादन में अवश्य ही बढोत्तरी हुई, लेकिन अनेक पक्षियाँ मारे गए। अब डी.डी.टी के विरोध में संसार भर आवाज़ उठी। 1968 में अमरिक्का के कई राज्यों में इसके उपयोग पर रोकथाम लगाई गई।

युद्ध-संस्कृति और स्त्री

जब मानव परिस्थितिजन्य समस्याओं का समाधान विवेक द्वारा करने में असमर्थ या असफल निकलता है तो वह आकुल-व्याकुल होकर सहसा झुँझला उठता है और खीझ में आकर बर्बर ओर अमानुषिक कृत्यों पर उतर आता है। युद्ध ऐसे ही कुकृत्यों का कुत्सित एवं बीभत्स रूप है। युद्ध की विभीषिका से संतप्त मानवता हाहाकार कर उठती है, शान्ति की खोज में तडपती चिल्लाती है।

युद्ध समाज के सभी लोगों पर अपना नकारात्मक प्रभाव डालता है। युद्ध में हमेशा पुरुषों का ही वर्चस्व बना रहता है, इसलिए युद्ध से ज़्यादा परेशानी स्त्रियों को ही भोगनी पडती है। प्राचीनकाल में स्त्रियाँ युद्ध - क्षेत्र से काफी दूर रही, यद्यपि स्त्री को लेकर युद्ध लडे

जाते थे। लेकिन आधुनिक युगीन नारियाँ मोर्चा संभालने में भी कामयाब दिखाई देती है।

दूसरे विश्वयुद्ध से लेकर हाल के अफगानिसातानी युद्ध की विभीषिका से महिलाएं सर्वाधिक प्रभावित हुई हैं। कहीं वे मोर्चा संभालती हैं तो कहीं सेवा सहायता केलिए सबसे आगे दिखाई देती हैं। कभी उनका उपयोग जासूसी केलिए होता है, तो कभी वे सैनिकों की वासना की शिकार बन ती हैं। हवाई हमलों की आधुनिक टेकनोल जी में ऐसा कोई जादू नहीं हैं कि बम गिरने के बाद मासूम बच्चे और औरतें जीवित बच सकती हों। लगभग आठ साल पहले सेंट्रल अफ्रीका के देश रवाँडा में नरसंहार के दौरान दस लाख लोग मारे गए थे, जिनमें करीब 45 प्रतिशत महिलाएं थीं। इसी तरह करीब पांच लाख औरतें तथा लडकियाँ बलात्कार एवं दैहिक अत्याचार की शिकार बनी।

युद्ध के उपरान्त स्त्रियों के जीवन में नई रोशनी मिलना काफी कठिन है। उन्हें अंधेरे में धकेल दिया जाता है। जीवित महिलाओं को समाज में ठीक से स्वीकारा न जाता हैं। खाडी के ईरान-इराक युद्ध से प्रभावित हज़ारों महिलाओं का जीवन आज तक सामान्य नहीं हुआ है। खाडी के देशों में विधवाओं के पुनर्वास की कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए युद्ध के बाद उन पर अत्याचार का नया सिलसिला शुरू हो जाता है।

युद्ध की संस्कृति में सैन्य वेश्यालय, बलात्कारी शिविर और वेश्यावृत्तिको बढावा मिलता है। विनाश के बाद कोई इलाका

रातोंरात स्वर्ग नहीं हो जाता। गरीबी और भूखमरी चरम सीमा पर पहूँच जाती है। अफगानिस्तान की नारियों की हालत युद्ध के दौरान बदत्तर हो गई। यूगोस्लाविया में सैनिकों द्वारा स्त्रियों पर बलात्कार होता रहा। युद्ध के कारण ही कंबोडिया के 35 प्रतिशत घरों की मुखिया महिलाएँ रह गयी, और उन्हें परिवार के पालन-पोषण केलिए वेश्यावृत्ति करनी पड रही है। कोसोवो में युद्ध में मारे गये पुरुषों की विधवाओं की पुनर्वास की व्यवस्था नहीं हो पायी है। शरणार्थी शिबिरों की हालत भी दयनीय रहती है। यू. एन.ओ के रिपोर्ट से यह तथ्य सामने आता है कि विश्व के शरणार्थियों में अस्सी प्रतिशत बच्चे और महिलाएं है। विशेष रूप से पिछले 20 वर्षों के दौरान दुनियाके विभिन्न भागों में हुई लडाइयों से विस्थापित हुए लोगों के कारण कई देशों की समस्याएं विकराल हुई है।

इराक में अस्सी के दशक में सारी ज़्यादतियों के बावजूद सामाजिक-आर्थिक स्थिति में अच्छा बदलाव नज़र आया। लेकिन 1991 सितंबर 11 के अमरिक्की हमले तथा बाद में लगे कडे आर्थिक प्रतिबन्धों के कारण महिलाओं की स्थिति अधिक खराब हुई। गरीबी और अभाव के कारण घरेलू हिंसा और तलाक के मामलों में कई गुना वद्धि हुई। युद्ध के कारण पिछले एक दशक में इराकी महिलाओं और लडकियों के बीच साक्षरता की दर घटती चली गयी। अमरिक्की विशेषज्ञ भी यह बात मानते है कि इराक पर किये गये नये हमले का असर 191 के खाडी युद्ध से कई गुना अधिक होगा। इराकी बस्तियों पर हो रही भारी बम वर्षा से चिकित्सा, पानी, बिजली की न्यूनतम सुविधाएँ समाप्त सी

हो जाएगी और एक मोटे अनुमान के अनुसार पाँच लाख लोग मारे जाएँगे, लगभग 20 लाख लोग बेघर हालत में विस्थापित हो जाएंगे। इराक पर हमले से एक सौ अरब डालर की क्षति का अनुमान लगाया गया है। सर्वाधिक नुक्सान तो महिलाओं और बच्चों का होना है, जिनकी रोज़ी, रोटी, दवाई, घर की व्यवस्था केलिए अमरिक्की कंपनियाँ युद्ध के बाद नये सिरे से धावा बोलेंगी। मतलब युद्ध के बाद महिलाओं के शोषण का नया सिलसिला शुरु हो जाएगा।

पुरुष-वर्चस्व भरे हमारे समाज में स्त्री कभी भी सुरक्षित नहीं रही। युद्ध के आने पर उसकी स्थिति दर्दनाक और शोचनीय बन जाती है। अफगानिस्तान जैसे देशों में स्त्रियाँ अपनी रक्षा हेतु पुरुष जैसा पोशाक पहनती है। देश रक्षा हेतु स्त्रियाँ पतियों की मृत्यू हो जाने पर स्त्रियाँ विधवाएँ हो जाती है। इन स्त्रियों में नवविवाहितायें होंगी, माताएँ भी। पुत्रविहीन माताएँ और पितृविहीन सन्तानों की संख्या युद्ध के बाद बढ जाती है। वे निराश्रय और आलंबहीन हो जाती है।

ये सारी समस्याएँ युद्ध-क्षेत्र से बाहर रही स्त्रियों के साथ जुडी हुई है। युद्ध में भाग लेनेवालों की समस्याएँ भी इनसे भिन्न नहीं है। युद्ध में भला भावुकता का कोई स्थान नहीं है। कैसी माँ, किसकी बीवी, कौन- सी बहन या बेटी हथियारों की ताकत के सामने दिल, दिमाग, खून और आँसू का बंद होना ज़रूरी है। अमेरिकी सेना का छठा हिस्सा महिलाओं का है। वे लडाकू हेलीकॉप्टर और विमान, मिसाइलें चलाती

1. आलोक मेहता - हथियार और आँसू के साथ स्त्री आउट लुक 2003 अप्रैल 7

है, बम गिराती हैं, टैंक हो या जहाज़, बहादुरी से मोर्चा संभालती है। अमेरिकी महिला नागरिक सेवाओं में गर्भवति होने और फिर बच्चे के प्रारंभिक पालन-पोषण केलिए लंबा अवकाश ले सकती हैं, लेकिन सेना में भर्ती हो जाने पर इस अवकाश से भी वे वंचित रह जाती हैं। सेना में शामिल होने केलिए महिलाओं को कभी बाध्य नहीं किया जाता, यदि उन्होंने सेना में शामिल होना स्वीकार किया है तो उनके बच्चे या कोई अन्य समस्या, उन्हें तो दुनिया में कहीं भी लडने केलिए जाना ही होगा। इराक से हमले केलिए रवाना होने से पहले अमेरिकी महिला सैनिकों द्वारा अपने छोटे बच्चों को भावुकता से चूमने के चित्र टेलिविशन और अखबारों में नज़र आये। इस पर अमेरिकी रक्षा मंत्रालय के एक अफ्सर बहुत ही परेशान था, क्यों कि यह उनकी युद्धनीति के खिलाफ था।[1]

युद्ध की वीभीषिका का स्वर - साहित्य में

हिन्दी के मशहूर आलोचक अशोक वाजपेय ने साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा - 'साहित्य मनूष्य का सबसे स्थायी प्रजातंत्र है, जिसमें स्वतंत्रता है, समता है और सबकेलिए जगह है। वह समज देखता है, उसके पार भी।

समय को उसके पार देखने के कारण साहित्यकार हमेशा समाज के अनैतिक मूल्य पर व्यथित हो उठते है, उसकी अभिव्यक्ति भी वे अपनी रचनाओं में करते है। हिंसात्मक क्रान्ति के विरोध में अहिंसात्मक

1. आउट लुक साप्ताहिक 2003 अप्रैल 7

आन्दोलन चलाना साहित्य के ज़रिए संभव हो जाता है। साहित्य में समाज की सभी गतिविधियों का चित्रण होता है, साहित्यकार समाज से जुडकर रहता है, इसलिए समाज की बदलती हुई परीस्थितियों का चित्र साहित्य में नज़र आना विस्मय की बात नही। सच्चे साहित्यकार की नज़र मनुष्य पर केन्द्रित रहती है। इसलिए जब मानव शोषित, पीडित एवं दुख से तडपता हुआ दिखाई देता है तब सच्चा साहित्य वहां आकर उसमें प्राण फूँक देते है।

'दीर्घकाल के पश्चात्त आज हमें संसार में बडे पैमाने से द्वेष, पापाचरण, असत्य आदि दुर्गुणों का बोलवाला दिखाई दे रहा है। सच्चाई और सादगी तो मज़ाक के विषय बन गये है। न्याय भी नाममात्र बचा है। समाज मानो किकर्तव्यमूढ हो गया है।' प्रसिद्ध फ्राँसीसी लेखक लूई ले राय (Loui Le Rai) के शब्द तत्कालीन सामाजिक माहौल पर लिखा था। ये शब्द आज के समाज पर भी अच्छी तरह लागू है। इस किकर्तव्यमूढ समाज को सही रास्ते दिखाने में साहित्यकार की बडी भूमिका है।

युद्ध में शूरता भी होती है, क्रूरता भी। साहित्यकार के मन में क्रूरता के प्रति भर्त्सना का भाव रहता है। प्राचीनकाल में जो काव्य रचे गये है, उसमें योद्धाओं की वीरता की प्रशंसा की गयी थी। शूरता के बारे में जब साहित्यकार क्रूरता की प्रशंसा करने लगते है, तब वह अपने दायित्व से काफी दूर चले जाते है और उसके साहित्य-कर्म का उससे अपलाप होता है।

सदैव साहित्य की ओर से क्रूरता को भर्त्सना मिलनी चाहिए। "किसी सिद्धान्त के अथवा आदर्शो के बाद में अगर शौर्य की प्रशंसा से साहित्यकर्ता अपने को वंचित कर लेता है तो मानना चाहिए कि उसके मानवीय संवेदन और अभिरुचि में कहीं कुछ जडता आ रही है। इस शुरता और क्रूरता को अलग-अलग करके पहचानाना और बतलाना साहित्य केलिए बेहद आवश्यक होता है, नहीं तो साहित्य राजनिति के अधीन चारण का काम करनेवाला रह जाता है। राजनीति के मार्गदर्शन की क्षमता उसमें नहीं रहती।"[1]

हमारे पुराने साहित्यकारों ने मनूष्य-मन के भीतर युद्ध को एक गौरवपूर्ण भाव के रूप में प्रतिष्ठित किया। पुराण और इतिहास में अनेक युद्ध काव्य है। रामायण युद्ध की कविता है, महाभारत भी युद्ध का काव्य है। गीता की रचना भी युद्ध की पृष्ठभूमि में हुई है। हमारे इतिहास, पुराण में जो ग्रन्थ रचे गये है, उसमें योद्धाओं की युद्धवीरता की प्रशंसा मिलती है। आमजनता की कराहट को इन लेखकों ने अनसुना किया है। यह तो वास्तविक युद्ध काव्य नहीं है। जो काव्य भाव और शैली दोनों से लोगों के बीच असन्तोष उत्पन्न करता है, उनके भीतर अन्याय के विरोध की भावना जगाता है और उन्हें विपत्तियाँ झेलने को सज्जित करता है, वह युद्ध काव्य है।

फ्राँस के आन्दोलन के समय रूसो की रचनाएं 1917 की रूसी क्रान्ति में दोस्तोवस्की, टालस्टाई, पुश्किन आदि का योगदान,

1. युद्ध चिन्तन- जैनेन्द्र-ज्ञानोदय नवंबर 1969 पृ. 241

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के समय राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत कवि, लेखकों की रचनाएँ आदि इसके सुन्दर सबूत है।

हिटलर की महत्वाकाँक्षा और उसके हिंसात्मक कार्यों का विरोध स्वयं जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने किया था। सार्त्र के प्रथम नाटक फ्लाईज़ (flies) में अप्रत्यक्ष रूप से नासी दमन पर प्रहार किया गया था। इसी कारण से जर्मनी में इसपर प्रतिबन्ध लगा दिया था। फ्राँस के साहित्यकारों ने अपनी ही सरकार का विरोध करते हुए अलजीरिया के मुक्ति आन्दोलन का समर्थन किया। वियतनाम में हुई अमरिक्का की बमबारी का विरोध सार्त्र तथा रस्सल ने किया।

विश्वसाहित्य, एक परिदृश्यः- युद्ध के विशेष सन्दर्भ में

लेखक या कवि के पास एक तीसरी आँख होती है। उसका चिन्तन साधारण आदमी जैसा नहीं। आम आदमी जो कुछ देखते है, सुनते हैं, उससे अलग तरीके में वे सुनते हैं और सभी पर दृष्टि डालते है। युद्ध संसार का सबसे खतरनाक और घृणात्मक सत्य बन गया है। इसका विरोध करने से कवि बच जाते है तो उनके कविकर्म का अपलाप होता है। विश्व के महान साहित्यकारों ने युद्ध की विभीषिका को अभिव्यक्त करके शासक वर्ग के अत्याचारों के खिलाफ जनमन में आवेग भराने का काम किया है। संसार की सभी भाषाओं में युद्धसंबन्धी महत्वपुर्ण कृतियाँ लिखी गयी है।

ग्रीक साहित्य के महान उपन्यासकार होमर के इलियड में ट्राजन युद्ध की कथा है। ट्राय नगर की पराजय में समाप्त यह युद्ध तेरहवीं शताब्दी में हुआ। इसकी कथा इस प्रकार है:-

पारीस के राजकुमार ग्रीस के राजा मेनलास की प्रियपत्नी हेलन का अपहरण करके ट्रोय पहूँचता है। इसका पता चलते ही मानलास के भाई आगममेनस सभी ग्रीक राजाओं के साथ ट्राय की ओर रवाना हुए। ट्राय के बडे किले पर उन्होंने नौ बरसों तक आक्रमण किया।

ग्रीक सेना ने हथियार और भोजन केलिए पडोसी शहरों को लूट लिया। युद्ध के दसवीं वर्ष में उन्होंने अप्पोलो भगवान के पुरोहित क्रसस के शहर पर चढाई की। इस पर नाराज़ होकर अप्पोलो ने ग्रीकों के बीच बीमारी और मृत्यू के बीज बो दिये। देवराज सियूस के क्रियाकलाप से ट्राजन युद्ध शुरू हुआ। दोनों सेनाएँ युद्ध में हार गई। ग्रीक सेना स्वदेश लौटी। लौटने से पूर्व उसने सागर के किनारे पर लकडी से बना एक बडे घोडे को छोड दिया। ग्रीक सेनाओं के जाने पर ट्रोजन ने घोडे को शहर पहूँचाया। रात होते ही घोडे में छिपे ओडसियम और अन्य ग्रीक सैनिक बाहर आये। इतने में गुप्त रूप से ट्राय पहूँची ग्रीक सेनाओं ने शहर में प्रवेश किया और ट्राय पर आक्रमण करके जीत हासिल की।

लेनिन ने महान उपन्यासकार टालस्टाय के उपन्यासों को रूसी क्रान्ति का दर्पण माना। टालस्टाय ने रूसी जनता को उनकी

परिस्थितियों से, उनपर हो रहे अत्याचार और शोषण से सचेत कराने का भरसक प्रयास किया। यही काम माक्सिम गोर्की ने और भी तीव्र और प्रखर रूप से किया। टालस्टाय और गोर्की की रचनाओं ने रूसी जनता को जगाया, उसमें क्रान्ति की प्रेरणा पैदा की और दूसरी शक्तियों के साथ मिलकर उन्होने 1917 की क्रान्ति को सम्पन्न बनाया।

टालस्टाय ने 'युद्ध और शान्ति' में नेपोलियन बोनपार्ट के हमले को विषय बनाया है। नेपोलियन ने जनीवा पर अपना अधिकार जमा लिया। इंगलैंड, आस्ट्रिया और रूस ने नेप्पोलियन के खिलाफ सेनाओं को एकत्रित किया। बहुत से रूसी सैनिकों ने रूस की सेनाओं को एकत्रित किया। कुछ रूस की ओर भागे। 1821 में नेपोलियन ने रूस का अक्रमण किया। मोस्को पर भी उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया। बाद में अपने सैनिकों के साथ वे स्वदेश लौटे।

उपन्यास में पाँच परिवार की समस्याओं पर लेखक प्रकाश डालते हैं। युद्ध के समय योद्धा युद्धक्षेत्र में और आम-जनता अपने अपने घरों में रहते हैं। छुट्टी के दिनों में सैनिक स्वदेश में शान्ति का अनुभव करते हैं। संपूर्ण कृति में लेखक के मानवप्रेम की झलक पायी जाती है।

'साहित्य समय देखता है, उसके पार भी', अशोक वाजपेय का यह कथन आधुनिक ब्रिटिश उपन्यासकार एच.जी.वेल्स के सन्दर्भ में अत्यन्त सार्थक निकला है। प्रथम विश्वयुद्ध के वर्षों पूर्व ही वेल्स ने अपने उपन्यास 'द वेर्लड सेट बी' में टैंकों और खतरनाक हथियारों के

प्रयोग पर पूर्वसूचना दी है। जर्मन सेनाओं के खिलाफ हुए युद्ध के बारे में उन्होने उसके होने से 13 वर्ष पहले ही सूचना दी। हिरोशिमा की बम वर्षा के इक्कीस वर्ष पहले लिखे गये इस ग्रन्थ में एटम बम के खतरनाक परिणामों पर इशारा किया गया है।

आधुनिक साहित्य और दर्शन के मसीहे जाँन पाल सार्त्र को द्वितीय विशवयुद्ध के दौरान 1940 में बन्दी बना दिया और दृष्टि कमज़ोर होने के कारण उन्हें रिहा कर दिया कि वह युद्ध में सैनिक का काम नहीं कर सका। 1956 रूस ने हंगरी पर हमला किया। सार्त्र ने इसकी कठोर निन्दा की। 1968 में रूस द्वारा चेकोस्लोवाकिया पर किये गये हमला का भी तीव्र विरोध सार्त्र ने किया। वियतनाम में साम्यवादियों के संघर्ष को उनसे समर्थन मिला। 1967 में रस्सल के साथ मिलकर स्टाकहाम के युद्ध अपराधी ट्रिब्यूनल में अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के उल्लंघन पर अमरिक्का पर मुकदमा चलाया।

सार्त्र ने इस तरह, हर समय पर सभी स्थानों में होनेवाले दमन और अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाई। अपने देश के सैनिकों द्वारा आलज़ीरया के स्वाधीनता आन्दोलन में कुचलने की कारवाई से कुपीत होकर उसने फ्राँसीसी सैनिकों को सेना से भगाने केलिए उक्साया। अपने प्रथम नाटक नासिया (1938) और प्रथम उपन्यास फ्लाइज़ में सार्त्र ने परोक्ष ढंग से नासी दमन पर प्रहार किया। 'द रिप्रैव' में उन्होंने म्यूनिख की राजनिति का पर्दाफाश किया।

प्रसिद्ध अमरिक्की लेखक नेल्सन अलग्रन ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान के अपने अनुभवों को 1947 में The Neon Wilderness नामक अपने कहानी संगह में संचित किया।

युद्धोत्तर भीषणतम परिस्थितियों की उपज है अस्तित्ववादी दर्शन। प्रमुख अस्तित्ववादी चिन्तक कामू ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दैरान पत्रकार के रूप में काम किया था। काबिली इलाके के मुसलमानों की दशा पर लिखा उनका लेख 1954 के अल्जीरिया के स्वतंत्रता संग्राम का कारण हो गया।

रूस के प्रतिभावान कवि बोरिस पास्तरनाक की महान औपन्यासिक कृति है 'डाक्टर शिवागो'। इसके प्रकाशन ने संसार-भर में सनसनी फैला दी थी। यह वास्तव में मानवात्मा की कथा की काव्यमय अभिव्यंजना है। उपन्यास एक सतह पर पास्तरनाक की आत्मकथा है। लेखक प्रथम विश्वयुद्ध के भयंकर अनुभवों से गुज़रता है। रूस में हुए निष्कासन और हत्या के विरोध में लेखक की आत्मा विद्रोह कर उठती हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने 'डाक्टर शिवागो' की रचना की।

A Farewell to Arms एणस्ट हेमिंग्वे की खूबसूरत कृति है। युद्ध के प्रति वितृष्णा और प्रेम की महत्ता कवि का विषय है। इसकी कथा के बहुत-से अंश 'युद्ध और शान्ति' से मिलते जुलते हैं।

हिटलर की आत्मकथा Mein Kampf राष्ट्रीय समाजवाद के बाइबिल माने जाते है। इसके प्रथम भाग The Settlement of

Accounts or Revenge 1924 में लिखे गये। इसमें हिटलर की युवावस्था और 1918 में जर्मनी के विनाश का चित्रण है।[1]

आस्ट्रिया के प्रसिद्ध दार्शनिक कार्ल क्रौस (1874-1936) की प्रसिद्ध नाट्यकृति है The Last Days of Mankind-A Tragedy in Five Acts-मानव समाज के अन्तिम दिन पाँच अंकों में एक त्रासदी। यह बीसवीं सदी में लिखा गया सबसे सशक्त युद्धविरोधी नाटक है। इसका रचनाकाल प्रथम विश्वयुद्ध का समय है। संसार में युद्ध के पक्ष में एक प्रकार का आवेग था। क्रौस का युद्धविरोधी एकाकी स्वर प्रस्तुत नाटक में गूँज उठते है। उन्होंने प्रस्तुत नाटक की रचना, प्रस्तुति के लिए नहीं बल्कि पढने के लिए की है।

युद्ध एक दुर्घटना है, मानवसमाज का नाश करनेवाली एक बडी दुर्घटना, कृति का जन्म इस चिन्तन से हुआ है है। भविष्य में होनेवाले बडी बडी त्रासदियों की ओर मानव का ध्यान आकृष्ट करने मे लेखक सफल हुए है।

नाटक की पृष्ठभूमि यूरोप है, और इसमें पाँच सौ से अधिक पात्र है। वियन्ना के रिडस्ट्रास प्रोमनेड के सार्फ कोर्नर में एक पत्रकार लडकी के शब्दों से शुरु होनेवाला प्रस्तुत नाटक साक्षात् ईश्वर के शब्दों से समाप्त हो जाता है। नाटक में एक optimist और Grumbler के बीच में प्रमुख संवाद चलता है। optimist युद्ध के

1. Merrian Webster's Encyclopedia of Literature - Merrian Webster's Incorporated - Springfield

समय की घटनाओं की व्याख्या करते है तो grumbler भी उसमें भाग लेता है, वह स्वयं नाटककार काल क्रौस ही है।

नाटककार ने प्रतीकात्मक शैली में युद्ध की त्रासद स्थिति की ओर संकेत किया है। युद्ध में घायल सैनिकों को नये नये कपड़े पहनाकर सम्राट के सामने खडा करते हैं। जब सम्राट लौट जाते है तो उनकेलिए टूटे फूटे कपडे और भूख को वापस देते है। यह नाटक का अत्यन्त प्रभावशाली दृश्य है। क्रौस का समय आस्ट्रोहंगेरियन साम्राज्य के पतन का समय था। उन्होंने स्वयं विश्वयुद्ध की कुरीतियों का सामना भी किया था। युद्ध के अन्याय देखकर वे अत्यन्त नाराज़ हुए। युद्ध मानव समाज को कहाँ तक ले जाता है? क्या तीसरे महायुद्ध का सामना करने की क्षमता मानव में है? उनके अनुसार वास्तव में मानवता के अंश हृदय, आत्मा और चेतन है, खोखली स्वतंत्रता और बौद्धिकता से उसका सर्वनाश ही होता है।

नाटक के प्रथम तीन अंकों की कथा आस्ट्रिया में चलती है और बाकी में जर्मनी के दृश्य है। वीयन्ना और अस्ट्रिया की संस्कृति और खोयी हुई धार्मिकता की झलक नाटक से प्रप्त होती है।

नाटक के अन्त में कुछ कवितांश है जिसके माध्यम से क्रौस ने युद्ध के भीषणतम दृश्यों को प्रस्तुत किया है, जो विश्वसाहित्य के भी महान दृश्य है। वहाँ मृत सैनिक है, घोडों की आवाज़ें है, माताओं की चीख-पुकार है, कौए की चिल्लाहट है, संकुचित दुनिया है और अपने ही अन्तिम-संस्कार केलिए काम करनेवाले मानव के प्रलाप

है। 'हमारे पास अब कुछ भी नहीं है, उन केलिए और कुछ भी चाहिए। इसलिए वे हमारे अन्तिम संस्कार का इन्तज़ाम कर रहे हैं। हम गरीब है, नग्न भी। इसी कारण से उन लोगों ने हमें पकड लिया है। उन्होंने हमारे बच्चों को दीवार पर लटका दिया। मेरे भेजने के पहले ही उन्हें भेजा। मेरे घर और देश पर आग लग गई है। मैं तो अपने अन्तिम संस्कार का इन्तज़ाम कर रहा हूँ। बच्चे बुला रहे हैं, मैं अपनी राह पर हूँ। प्रभू मुझे बुलाओ, वहाँ जीने दो। पहले नास्तिक देखे क्रौस नाटक के अन्त में पहूँचकर अधिक आस्तिक हो गये है।

11 सितंबर 2001 के विश्व व्यापार संगठन पर हुए हमले की पृष्ठभूमि में लिखा गया उपन्यास है Is New York Burning? यानी क्या न्यूयोर्क जल रहा है? लॉरी कोलिन्स और डोमिनिक लापियर ने मिलकर इसकी रचना की है। पुस्तक के बाह्य आवरण में स्वतंत्रता और समता का सन्देश देनेवाला न्यूयार्क के Statue of Liberty है। लापियर के अनुसार कृति की रचना का मक्सद है, पश्चिम एशिया के तर्क-वितर्क को सुलझाने में नेताओं को प्रेरणा और सुरक्षा एजेन्सियों को चेतावनी देना।

इस उपन्यास में आतंकवाद के खिलाफ हुए युद्ध की कथा कही गई है। इसके प्रमुख पात्र है सद्दाम हुसाइन, बिन लादन और एक पाक् वैज्ञानिक। न्यूयार्क पर डालने केलिए पाकिस्तान से अणुबम खरीदनेवाले आतंकवादी संगठन की रहस्य पद्धति को उपन्यास में पर्दाफाश किया गया है। इराक आक्रमण और अपनी हत्या की सूचना

पानेवाला सद्दाम इस पद्धति का दायित्व लबनीश वंशज मुग्नियेह को सौंपते हैं। मुग्नियेह सेनाओं को उपनिवेश केन्द्रों से हटाने का आदेश देता है। यदि इसका आदेश अमरिक्का न्यूयार्क को नहीं देगा तो न्यूयार्क का नाश हो जाएगा। इस तरह की धमक्की भी वे देते हैं। बुराई के खिलाफ भलाई की जीत उपन्यास में दिखाया गया है। उपनिवेश केन्द्रों में फिलिस्तीनियों को हुई परेशानियों का चित्रण भी उपन्यास में है। मार्क्स हेस्टिंग्स ने अपनी किताब आरमगडनः-जर्मनी केलिए युद्ध 1944-45, Armageddon The Battle for Germany 1944-45 में दूसरे विश्वयुद्ध की विभीषिकाओं का वर्णन किया है।

तेरहवीं और अस्सी उम्र के बीच के बच्चों और स्त्रियों को बलात्कार करके उनकी नृशंस हत्या की जाती है। इसके बाद उन्हें दरवाज़े पर लटक जाते है- इस तरह के मार्मिक कई दृश्य प्रस्तुत उपन्यास में है। लेखक के अनुसार युद्ध की देन केवल यह है कि नासियों के राज्य को नये उत्तराधिकारियों को मिलना।

शासक वर्ग केलिए युद्ध एक त्योहार है, इतिहासज्ञों केलिए यह एक घटना है और योद्धाओं केलिए वास्तव में यह मृत्यू ही है। षान मूर क्रोफ्ट के युद्ध संबन्धी इसी मान्यता की अभिव्यक्ति Truths Written in Blood यानी 'खून में लिखा हुआ सच' नामक अपनी कृति में है।

युद्ध-विरोधी कविताएँ - विश्व साहित्य में

युद्ध विरोधी कवियों में सिगफ्रीड सेसून का सबसे अलग पहचान है। क्यों कि वे पहले युद्धप्रेमी कवि थे। युद्ध की साहसिकता को वे पसन्द करते थे। उन्होंने लिखा

Thus are we heroes, since
We might not choose to live
Where, Honour Gave us life to lose[1]

युद्ध के नृशंस और दर्दनाक अनुभवों से कवि का दृष्टकोण बदल गया। युद्ध के समय स्वदेश में सुखी रहनेवालों को उसने कोसा-

You smug-faced crowds
with kindling eye, who
cheer when soldier lads
march by, sneak home
and pray you'll never know
The hell where youth
and laughter go[2]

1. Because we are going - Sigfried Sezoen
2. Suicide in the Trenches - Sigfried Sezoen

टी.एस. इलियट की 'बंजर भूमि'

टी.एस.इलियट ने अपनी कविताओं के ज़रिए वर्तमान के प्रति तीव्र चिन्ता, निराशा और उत्कंठा को अभिव्यक्त किया है। वर्तमान की ध्वंसोन्मुख सभ्यता पर वे व्यथित हो उठते थे। 1922 में प्रकाशित उनकी लंबी कविता The Wasteland की रचनात्मक पृष्ठभूमि द्वितीय महायुद्ध ही है। इसे महायुद्धोत्तर यूरोप का आलेख बताया गया है। इसमें वर्तमान युग की नीरस, प्राणहीन सभ्यता की और इशारा किया गया है।

The Wasteland अर्थात बंजरभूमि लंदन शहर का प्रतीक है। आदि मानव यौन उर्वरता केलिए विभिन्न प्रकार के अनुष्ठान संपन्न करते थे। शीतकाल की मृत्यू और वसंत के आगमन के उपलक्ष्य में जो उत्सव मनाया जाता था, उसकी स्मृतियों को कवि ने सक्षम ढंग से पुनप्राणित किया है। कविता के पाँच भाग है - मृतक संस्कार, शतरंज का खेल, अग्न्वाणी, निमज्जन और वज्रोक्तिष।

स्वयं कवि ने अपनी टिप्पणी में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि इसकी मूल कथावस्तु गेला के उपाख्यानों से ली गई है। यौन प्रतीक पर मूलभाव आधारित है। कवि यह दिखाना चाहता है कि अतीत के साथ वर्तमान का जो संयोग-सूत्र था वह क्षीण से क्षीणतर होता जा रहा है। आधुनिक यंत्र की अविराम प्रगति ने विश्वास की मूल आत्मा का उच्छेद कर दिया है। इतिहास के साथ विच्छेद हो गया है। यही कारण है कि आज का जीवन कुत्सित, क्लान्त और युक्तिसर्वस्व

बन गया है। फिर भी मुक्ति की संभावना तिरोहित नहीं हुई है। बंजर भूमि उर्वर बनेगी, इसकी प्रत्याशा नपुंसक राजा ही कर रहा है।

विल्लियम वड्र्सवर्थ और युद्ध

विश्व साहित्य में विल्लियम वड्र्सवर्थ की पहचान प्रकृति प्रेमी रोमांटिक कवि के रूप में हैं। किन्तु संवेदनशील कवि ने हमेशा प्रकृति की सुन्दरता पर आकृष्ट होकर काव्य-सृजन नहीं किया है। समाज की कुरूपताओं पर भी उनकी नज़र पडी। युद्ध की नृशंसताओं की उन्होंने तीव्र निन्दा की।

वे बताते है कि एक और साम्राज्य के उलट जाने से और एक और वर्ष के बीत जाने से हम एकाकी हो जाएंगे। बचे हुए कुछ लोग अब शत्रू से जूझेंगे। अब हम अपनी सुरक्षा नहीं कर सकते हैं।

अपने हाथों गढना होगा अब तो उसको
जूझेंगे हम बिना सहारे विना लोभ के
होता नहीं खुश इस अनुभव से आताताई !
हम होंगे उल्लसित, शासन करनेवालों को
होंगी नियामतें यदि हम सबकी मूल्यवान
वे होंगे मेधावी-आदर्शवान, नहीं ऐसे सेवक
जो करते मूल्यांकन जोखिम का जिससे डरते
औ' गौरव का, जिसे कभी वे समझ न पाते।[1]

1. विलियम वड्र्सवर्थ - अनुवाद - उमेश जोशी (समकालीन सृजन)

'युद्ध के नगाडे -वाल्ट ह्विटमान

किसी निष्ठूर विस्फोट की तरह युद्धकामी शासकों की आवाज़ सब कहीं गूँज उठने लगी कि बजाओ बजाओ बिगुल बजाओ। घरों के खिडकियों और दरवाजों के भीतर भी आवाज़ की प्रतिध्वनियाँ होने लगी।

शान्तिप्रिय किसानें खेत जा रहे थे, युद्ध के भय से वे शान्ति से खेत जोत न सके, गिरजे के गंभीर वातावरण में यह शब्द सुनकर लोग तितर बितर हो गए है। अब स्कूलों में विद्यार्थी शान्तिपूर्वक अध्ययन न कर सकते हैं, दुल्हन के साथ दूल्हा भी खुशियाँ न मना सकता हैं। शासकों की आज्ञा है कि इतनी तेजी से, जंगली आवाज़ों में नगाडे बजाना चाहिए कि बाज़ार में और सौदेबाज़ी न हो, दलाल और सटोरिए अपने काम न करें। दुर्बलों और रोनेवालों की परवाह किए बिना इस नगाडे को बजाना है। बच्चे की आवाज़ और माँ की पुकार को भी अनसुना करना है।

इतनी तेज़ी से ऊँची आवाज़ में उस नगाडे को बजाना हैं कि ताबुतों के अंदर मृत्युगीत सुनने की प्रतीक्षा में जो सो रहे हैं, वे भी मौत की नींद में हिल जाए। ऐसी तीक्ष्णता और हिंस्रता के साथ नगाडे बजाना है।

सो रहे हैं, जो ताबूतों के अंदर
सुनने की प्रतीक्षा में मृत्युगीत
हिल जाएं, वे भी मौत की नींद में

इतनी हिंस्रता से तुम बजो ऐ नगाडे !
इतनी तीक्ष्णता से तुम बजो ऐ बिगुलो ![1]

प्रस्तुत कविता में युद्धकामी, स्वार्थी शासक-वर्ग की नृशंसताओं की और कवि ह मारा ध्यान खींचता हैं। वे सभी लोगों को चैन और शान्ति से वंचित करते हैं। खेत जोत रहे किसान, स्कूलों में पढे रहे छोटे छोटे बच्चे, दूल्हन के साथ खुशियाँ मनानेवाले दूल्हा कोई भी युद्ध की नृशंसता से मुक्त नहीं।

बर्तोल्त ब्रेख्त की कविता

ब्रेख्त की मान्यता हैं कि आदमी का दुश्मन उनके सिर पर बाठा हुआ हैं। किन्तु जंग-क्षेत्र में कूचते वक्त कोई इसे देखता तक नहीं हैं। जंग से पहले हमने जो हुक्म की आवाज़ सुनी, वह उनके दुश्मनों की ही आवाज़ हैं। हमसे जो दुश्मनों की बातें करता हैं, वे भी हमारे दुश्मन है। क्योंकि उनकी हरकतें युद्ध को निमंत्रण देनेवाली हैं।

जब लोग जंग के लिए कूच करते हैं
तो बहुतों को यह पता नहीं होता
कि उनका दुश्मन उनके सिर पर ही बैठा है
जो आवाज़ उन्हें हुक्म देती है
उनके दुश्मन की आवाज़ है
जो दुश्मनों की बात करता है
वह खुद दुश्मन है।[2]

1. युद्ध के नगाडे - वाल्ट ह्विटमैन - अनुवाद - अल्का पलिवाल
2. जब लोग जंग केलिए कूच करते है - ब्रेख्त अनुवाद - राज किशोर 1988, जानवरी-मार्च (समकालीन सृजन)

ब्रेख्त के विचार में आदमी का दुश्मन आदमी ही हैं। ये दुश्मन उनके सिर पर बैठकर युद्ध का हुक्म देती हैं।

अस्थियों की बातचीत - बास्को तोपा

युद्ध-क्षेत्र में पडे हुए मुर्दे शरीर से अलग होकर अस्थियाँ स्वतंत्रता का एहसास करने लगी। नाश्ते में वे मज्जा लिए हैं, दोपहर में भी मज्जा ली, इसलिए पेट में कुछ गडबडी होने लगी। कुत्तों को ये हड्डियाँ बहुत भाती हैं। इसलिए कुत्ते के आने पर उनके गलों में फँस जाकर ये उन्हें मज़ा करेगी।

दो हड्डियों के बीच बातचीत हो रही थी कि बीच में एक हड्डी ने दूसरी हड्डी को निगाल लिया।

क्या हुआ तुम्हें
तुम्हीं हो जिसने निगला मुझको
मैं भी देख नहीं पा रही खूद अपने को
कहाँ हूँ मैं इस वक्त।[1]

अतः कवि का मानना है कि युद्धरत इस दुनिया में कोई भी सुरक्षित नहीं हैं। मृत्यू के हर वक्त आने की संभावना है। यहाँ के प्रत्येक आदमी दूसरों को निगालने की, उनको मारने की प्रतीक्षा में है।

---

1. अस्थियों की बातचीत - वास्को पोपा - अनुवाद - सोमदत्त (समकालीन सृजन)

रूसी कवि बोरिस पास्टरनाक की कविता

पास्तरनाक की कविता है प्रातःकाल। युद्ध ने कवि से ऐसी क्रूरता दिखाई कि बहुत ही दिनों से प्रेमिका की कोई खबर कवि को न मिलती है।

> तुम मेरी नियति थी, सब कुछ
> और फिर आया युद्ध, विध्वंस।
> और कितने, कितने दिनों तक
> न तुम्हारा अतापता, न कोई खबर[1]

सीढियों से बाहर निकलकर बर्फीले सडकों से होकर, सुनसान फुटपाथों में वे चल रहे है। चारों और बत्तियों की रोशनी है, घरेलूपन है, लोग जागे हुए हैं, चाय पी रहे हैं, वक्त पर पहूँचने की गडबडी में थाली और गिलासों को अधूरे छोडकर भागते हैं। कवि का मन उनमें से एक-एक की और से महसूस करता है, वे उनके शरीर में जीत रहना चाहते हैं। अज्ञातनामा उन सब लोगों के साथ कवि जीत लिया है। क्योंकि यही उनकी एकमात्र ज़िन्दगी है।

आक्रमक हवाई जहाज़ों के आने से पहले - आँटो द सोला

वेनेज़ुएला के कवि आँटो द सोला की यह कविता सिपाहियों से किया गया निवेदन है। सिपाहियों से कवि का कहना है यदि चाँद की छाया में पडी हुई सब चीज़ों को वे ध्वस्त कर देना चाहते है तो कोई

---

1. प्रातःकाल - बोरिस पास्टरनाक - अनुवाद : धर्मवीर भारती ज्ञानोदय नवंबर 1965

भी चीज़ को शेष मत छोडना। वे पूछते है कि क्या वे गिरती हुई दीवारों में कुचलते बच्चों की चीत्कार सुन सकते है।

युद्ध के प्रभाव से बच्चे भी मुक्त नहीं। बच्चे प्रभात के समान मासूम है। नये सबेरे के किरणों को जिस तरह कोहरा धकेल देता है, उसी प्रकार उन बच्चों की ज़िन्दगी फूलने से पहले ही मुर्झाया जाता है। एक पीढि ही नहीं, उसके भविष्य भी युद्ध की विभीषिका में मिट जाता है। ज़िन्दगी के उषाकाल में ही युद्ध इन बच्चों को छीन लेता है।

पहले कवि के मन में शंका थी कि क्या सैनिक इन बच्चों को मारने केलिए, इनकी मासूमियत को नष्ट करने केलिए यहाँ आए है। बाद में उनका डर मिट गया, सारी शंकाएँ दूर हो गई। वे बताते है अगर सिपाही इस पृथ्वी से सभी चीज़ों को ध्वस्त करने आए है तो कोई भी चीज़ को साबित न छोड देना है। इन बच्चों को भी मत छोडना, इतिहासों की याद दिलानेवाली दीवारों को भी मत छोडना, घायल बाँसुरियों की तरह सिसकनेवाली सुबह को भी मत छोडना।

प्रभात की वेला में मधुपान केलिए उडनेवाली तितली को मधु नहीं मिलता है। क्यों कि फूल यहाँ कही नहीं नज़र आते हैं। युद्ध ने पृथ्वी से हरियाली को नष्ट कर दिए हैं। अब तितली फूलों से मधु न पाने के कारण भीगी घास में पडे मुर्दे शरीर पर बैठ जाते है। साम्राज्यवादी ताकतों की क्रूरताओं के शिकार लोगों के मुर्दा शरीर यहाँ के भीगी घासों में पडे हुए है।

सिपाही की लाश-निकोलस गोलियन

क्यूबा के कवि निकोलस गोलियन की कविता है। सडक पर मर पडे सिपाही पर कवि अपनी तीव्र संवेदना प्रकट करती है। सिपाही का जन्म किसी राज्य में हुआ था, लेकिन सडक पर वह मरा हुआ नज़र आया। किसी ने उसे देखा, उठा लिया। प्रेमिका और माँ उसके मुर्दे शरीर पर टूट पडी। अफ्सर ने आकर उसे दफ्नाने की आज्ञा दी।

सिपाही की जान महत्वहीन हो गयी है। युद्धकामी शासक द्वारा परिचालित एक यंत्र सा हो गया है सिपाही। एक सिपाही के मारे जाने से हानि सिर्फ उसके परिवारवालों को ही होती है।

युद्ध के समय का एक गीत - पाल इल्सार

फ्राँसीसी कवि पाल इल्सार की कविता है युद्ध के समय का एक गीत। कवि का कहना है, धर्ति में नये आनेवाले फूल, माँ की देहरी में बैठे बच्चे की मासूमियत - ये सभी युद्ध से नष्ट हो जाती है। माँ के अंचल में छिपे बच्चे के साथ बादल और धूप ने भी जन्म लिया है। साम्राज्यवादियों की अट्टहास भरी आवाज़ तुरन्त ही वे सुन लेते है। भय और आतंक से भरी पगध्वनियों के साथ ये आकर बच्चों की मासूमियत को कलंकित करते है, फूलों को उखाड फेंकते हैं।

युद्ध नया हो या पुराना-फार्ल सैराडम्र्ग

अमरिक्का के कवि फार्ल सैराडबर्ग की कविता घास की आत्मव्यथा बताती हैं। युद्ध, चाहे पुराना हो या नया, युद्ध का मैदान

छोटा हो या बडा, लाशों के ढेर घास पर ही पडते हैं। इसे दफनाने का काम भी घास को ही है। शासकों के अत्याचार के शिकार मानव का बोझ सहन करने की बेचैनी घास को ही सहना पडता हैं।

युद्धविरोधी तमिल कविता

कवयित्री सुरदा दुनिया से बुराई की जडें उखाडकर दूर फेंकने का आह्वान करती है।

उनका कहना है कि हमने यह दुनिया नहीं बनाई है। ईश्वर ने कुछ चीज़ें हमें दी, उससे बहुत कुछ हमने तैयार की। धीरे-धीरे हमने सभ्यता की और कदम बढाए, काव्य, लोकगीत, कला का गठन किया। चीज़ों को हमने मूल्य भी दिए और मनुष्य-मनुष्य में तर्क करना सीखा। हमने साथी भावना नहीं मज़बूत किया, वर्ग-भेद न मिटाया, प्रेम न बढाया, इसके बजाय सेनाएँ बढाकर हमने दूसरों को आतंकित किया।

समाज के भीतर चल रहे युद्ध से हत्याएँ, बलात्कार, डकैती, शराबखोरी, बेकारी, गरीबी आदि का फैलाव हुआ। युद्ध मानवता की फसल को नष्ट कर रहा है। हमारे अंतर की शान्ति को भी इसने भंग किया है। अन्त में कवि आशा करती हैं:

आज का समाज नया है
पहले से अलग
जल्दी ही जड से उखाड फेंकना होगा
मनुष्य और मनुष्य के फर्क को

और युद्ध की बुराई को-
अपने सुखी-सुंदर समाज के पक्ष में[1]

Poet Against the War (युद्ध के खिलाफ कवि)

अंग्रेज़ी के मशहूर कवि सेम हामिल 'युद्ध के खिलाफ कवि' आन्दोलन के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध है। अपने साहित्यक मित्रों के नाम पत्र भेजकर उन्होंने इस आन्दोलन की स्थापना की। उन्होंने अपने पत्र में प्रत्येक कवि से निवेदन किया था कि वे युद्ध के खिलाफ एक कविता या कुछ भी लिखकर भेजे। उन्हें चार दिन के अंदर दो हज़ार से अधिक लोगों की कविताएँ मिली। इनमें आड्रियेन रिच, लारेंस फर्लिंग हेट्टी, ग्रेस पाले और गालवे किनेल जैसे प्रसिद्ध कवियाँ भी शामिल थे। उसके प्पाद उनके साथ उनके 25 कवि मित्र ई-मेईल पर आयी कविताओं को डौनलोड करने में लग गये। ये कवितएं एक एक मिनट के अन्तर साइट पर आ रही थी। अमरिक्का के राष्ट्रपति जार्ज बुश की इराकी नीति के खिलाफ 11,000 से अधिक कवियों की 13,000 से अधिक कविताएँ मिल गई। ये कवि वस्तुतः अमरिक्का को एक क्रूर देश बनानेविली जार्ज बुश की नीति के खिलाफ खडे हुए थे।

अब तक प्राप्त 13,000 से अधिक कविताओं में से हामिल ने लगभग 200 कविताओं का चुनाव कर Poet Against War नामक संकलन में रखा। यह संकलन इराक पर हुए हमले के खिलाफ संयुक्त अमरिक्की आवाज़ है। संकलन में मेरिलन हेफर, ग्रेफ शूलमेन, शर्ली

---

1. दुनिया से युद्ध के बुराई जड़ से उखाड दो - सुरदा - अनुवाद - आर. भानुमति (समकालीन सृजन)

काफमेन, कथा पोलिड, हैडन कैरूथ, रेल गैलाधर, केरोलिन काइजर, टेम्पस्ट विलियम्स, रीता डोव जैसे अमरिक्की कवि भी शामिल थे। यह सरकारी युद्ध समर्थक नीति के खिलाफ अमरिक्की लेखकों और कलाकारों के नैतिक विरोध की लंबी अनुकरणीय परम्परा का प्रतीक है।

भूमिका में हामिल ने व्यक्त किया कि यह हमारे कवियों की, हमारे समाज के प्रत्येक वर्ग की आवाज़ है। यदि वे एक संगठित आवाज़ के रूप में युद्ध का विरोध करते हैं तो वे वस्तुत; दुनिया-भर के लोगों की आवाज़ में अपनी आवाज़ मिला रहे है। सरकार वस्तुत; शब्दों की सरकार होती है और जब इन शब्दों का प्रयोग लोगों को भ्रमित करके, उनके मन में भय पैदा कर उन्हें चुप रखने के लिए किया जाता है तो प्रत्येक कवि का कर्तव्य हो जाता है कि वह निर्भीकता से और साफ शब्दों में अपनी आवाज़ उठाए।

---

1. Poets against war का प्रकाशन 6 जानवरी 2004को हुआ है। (नया ज्ञानोदय अक्तूबर 2004)

मलयालम - साहित्य में युद्धविरोधी स्वर

हमारे आस-पास होनेवाली किसी विशेष घटनाओं का प्रभाव दूसरे देशों पर पडना स्वाभाविक है। कुछ घटनाएँ विश्व के किसी सुदूर कोने में घटित होती है, वह तो हमसे अनदेखी जगहों में। लेकिन यह हमारे संपूर्ण जीवन में विचार या सोच के स्तर पर एक आन्दोलन मचा लेती हैं।

युद्ध की समस्या संसार के किसी विशेष देश या राष्ट्र तक सीमित नहीं रहती। दुनिया के किसी एक छोटे से देश में होनेवाले युद्ध यहाँ के छोटे-से-छोटे इलाकों को भी बुरे ढंग से प्रभावित करते हैं। उसका प्रभाव आनेवाली पीढियों पर भी पडता हैं। अतः हम कह सकते हैं कि युद्ध की समस्या कालातीत है, देशातीत भी।

साहित्य की संवेदना भी किसी एक व्यक्ति तक सीमित नहीं रहती। विश्व ने जब युद्ध की नृशंसता को झेला, दूसरे लेखकों के साथ मलयालम के महान साहित्यकारों ने इसके खिलाफ तीव्र प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति की।

रामायण और महाभारत में युद्धविरोध

मलयालम भाषा के जनक जानेवाले तुञ्चत्त रामानुजन एषुत्तच्छन ने अपनी रामायण और महाभारत में युद्ध का वर्णन किया है। उन्होंने अपनी इन रचनाओं के ज़रिए युद्ध के खिलाफ युद्ध किया। कवि का राम संसार- भर की भलाई का प्रतीक है, रावण तो संसार में

फैले अनाचार और पाखण्ड का। एषुत्तच्छन ने अपनी रामायण के एक खंड का नाम भी 'युद्धकाण्ड' रखा।

राम-रावण युद्ध के दौरान खून की नदी बहती हैं वहाँ शिरोविहीन मुर्दों की नाच होती है। राक्षसों के महल में स्त्रियों के प्रलाप गूँजते रहते हैं। युद्ध के दौरान हवा निशचल हो जाती है। सूरज कहीं छिपा है, और धर्ती काँपती रहती है। समुन्दर में लहरें आती जाती है और पाताल के निवासी भी इस समय काँपते रहते हैं। एषुत्तच्छन बहुत ही प्राचीनकाल के कवि है। उस काल में संसार में आज जैसा भीषण युद्ध नहीं था। युद्ध तो होते रहते थे, तत्कालीन राजाओं के बीच में। कवि ने युद्ध की त्रासदी को बहुत ही सरल ढंग से अभिव्यक्त किया है, जैसे आंखों देखा वर्णन। अत्याचारी, विवेकी शासक रावण का बदला हुआ रूप आज हम सद्दाम, बुश आदि में देखते हैं।

लंकालक्ष्मी - श्रीकंठन नायर का युद्धविरोधी नाटक

मलयालम के मशहूर नाटककार सी.एन. श्रीकंठन नायर ने अपने लंकालक्ष्मी नाटक में युद्ध की मुख्य समस्या को लेकर रामायण की पुनर्व्याख्या की। लेखक के ही शब्दों में सौन्दर्यप्रेमी राजा की प्रेमविह्वलता के बारे में बताना उनका उद्देश्य नहीं। युद्ध, राजतंत्र, वंश संघर्ष और मूल्यों की गिरावट भी इसके विषय है। शूर्पणखा के कटे हुए स्तन से शुरु हो गया यह संघर्ष आज भी ज़ारी है। आज भी खून की वह नदी बह रही है।

लंकालक्ष्मी युद्ध नाटक है। नाटक के सभी पात्र एक तरह से योद्धा है। संगीत और चित्रकला के समान इसके रावण प्रेम और युद्ध को भी कला मानते हैं। खून और उसके रंग सदैव रावण का पीछा करता है। रावण की राय में शत्रु के हार जाने पर युद्ध समाप्त होता है। युद्ध की शाुद्धि उसकी संहार क्षमता है। दानवों केलिए युद्ध एक आदत-सा है। इस केलिए विशेष कारण नहीं और कारण की ज़ंरूरत भी नहीं। युद्ध संसार का सबसे खूबसूरत सत्य है।

युद्ध के चेहरे में मृत्यु का सीधा साक्षात्कार होता है। जब गीध और सियार खून पीते है, तब मृत्यू को हम निकट से देखते है। रावण के यज्ञ में विघ्न डालने केलिए अंगद मंडोदरी का बलात्कार करते हैं। उनके अनुसार लंका में यदि कोई शुद्धि बच गयी तो वह मंडोदरी में है, उसका भी ध्वंस कर देना है। स्त्री पर होनेवाले अत्याचार और बलात्कार कोई विचित्र घटना नहीं। यह तो एक मामूली घटना है। स्त्री का नाश करने से देश का नाश होता है और एक संस्कृति का भी सर्वनाश होता है। लेखक के अनुसार यहाँ रामरावण युद्ध का मूलकारण एक नारी ही है-शूर्पणखा। शूर्पणखा के स्तन काटने से रावण का क्रोध जल उठा। इसी घटना को वे युद्ध का मूल कारण मानते हैं.

वाइक्कम मुहम्मद बशीर और युद्ध-विरोध

युद्ध तो व्यंग्य या हास्य का विषय नहीं, यह उसके परे की बात है। किन्तु व्यंग्य को हथियार बनाकर युद्धकामी लोगों पर तीखा प्रहार कर सकता है। मशहूर साहित्यकार वाइक्कम मुहम्मद बशीर ने

अपनी कहानी 'युद्ध को समाप्त करने केलिए' में व्यंग्यात्मक ढंग से युद्ध संबन्धी विचार प्रकट किए है। नाम से यह किसी बुद्धिजीवि लेखन जैसा लगता है। लेकिन लेखक का सरल, स्वच्छन्द किन्तु तीखा विचार कहानी में फैला है। लेखक के पास एक पत्र-लेखक आकर युद्ध की समाप्ति केलिए एक उपाय ढूँढता है। क्योंकि संसार की जनता इससे ज़्यादा कष्ट भोग रही है, सर्वत्र नाश हो रहा है। दूसरे महान लोग इस पर ज़्यादा मन्तव्य प्रकट कर चुके है, जैसे संसार को सौराष्ट्र और कनफ्यूष्यस के मत का पालन करना है, बुद्ध के आदर्शों का पीछा करना है, ईसा,नानक और मुहम्मद पर विश्वास करना है। दूसरी राय है, जब संसार 'कम्यूनिसम' को मानने को, अहिंसा सिद्धान्त पालन करने तैयार हो जाते है, तब युद्ध की इति होती है।

पत्रकार के प्रश्नों पर लेखक ने ध्यान न दिया, उनका ध्यान अपनी त्वचा की खुजली पर केन्द्रित था, खुजली करने से वे विशेष मज़ा भी लेते थे। उनके अनुसार युद्ध के ज़ारी रहने से समाज में विशेषकर कोई हानि नहीं होगी। समाचार पत्रों का प्रचार कम नहीं होगा, ग्रन्थों की बिक्री में कमी नहीं पडेगी।

पत्रकार के अन्तहीन सवालों के उत्तर के रूप में लेखक ने बताया कि सभी राजनैतिक नेताओं को, धर्म के ठेकेदारों को , चिन्तकों, सभी पुलीसवालों, सभी मजिस्ट्रेटों, जजों, वकीलों, पत्रकारों, अध्यापकों, सिपाहियों और इस तरह संसार के सभी स्त्री-पुरुषों को भयंकर खुजली होनी है। अत: जब अपनी अपनी खुजली पर सबका ध्यान केन्द्रित होता है, तब युद्ध नहीं होगा।

बशीर के अनुसार संसार में प्राचीनतम काल से युद्ध होता रहता है। आज के युद्ध की समाप्ति के प्राद कल पुनः युद्ध होगा। धर्ती में यदि दो आदमि शेष बचे तो वे दोनों लडेंगे। एक आदमी के बचने से उसके दाये और बाये हाथ के बीच झगडा होगा। अन्त में उसका भी नाश होगा, फिर शान्ति। बहुत ही रोचक ढंग से बशीर ने अपना युद्धविरोधी विचार अभिव्यक्त किया हैं। पढने में यह एक साधारण सी कहानी लगती है। लेकिन इसके पीछे लेखक के असाधारण, पर तीखा व्यंग्य छिपा हुआ है, जो हमें चिन्तन मनन की प्रेरणा भी देते हैं।

एन.एस.माधवन की कथा

बशीर का मक्सद बहुत ही सरल ढंग से एक भीषण समस्या की ओर हमारा ध्यान दिलाना है तो मलयालम के उल्लेखनीय कहानिकार एन.एस.माधवन ने क्षुरक नामक अपनी कहानी में सीधे और गौरवपूर्ण ढंग से युद्ध की विभिषिका को प्रस्तुत किया है। कहानी में इराक पर आज भी ज़ारी अमरिक्का की सैनिक कारवाई और उसके हिंसात्मक प्रतिशोध का वर्णन है।

यह एक प्रवासी क्षुरक की कथा है। वह युद्ध का सैनिक नहीं, युद्धक्षेत्र से भी वह ज़्यादा दूर रहते है। लेकिन सदैव वे युद्ध से जुडे रहते हैं। अपनी कामकाजी केलिए संसार के निष्ठुर युद्ध मे वह भाग लेता है। उनके हाथ में कोई हथियार नहीं था। लेकिन उनका सिर युद्ध का प्रक्षेपण गृह जैसा था। उनकी ज़िन्दगी हिंसा के कारण एक अलग-सी हो गई थी।

आनन्द ने 1984 में शरणार्थियाँ नामक उपन्यास की रचना की। जैसे कि नाम से सूचित है, इसमें बंगला युद्ध की पृष्ठभूमि में कुछ शरणार्थियों की कहानी बतायी गई है।

कुरुक्षेत्र - अय्यप्पपणिक्कर

अय्यप्पपणिक्कर की प्रसिद्ध कविता कुरुक्षेत्र में कवि ने युद्ध की त्रासदी, मोह और मोहभंगों की समस्या को उभारने की कोशिश की है। लेकिन यह दुख या त्रासदी का काव्य नहीं। युद्ध से त्रस्त आम आदमी को मुक्ति दिलाने केलिए कवि एक रास्ता ढूँढता है। कविता में मानव की सभी त्रासदियों का गवाह एक छोटा सा तारा है, जो आशा का प्रतीक है। उस नन्हे तारे के ऊपर चढते ही ज़मीन की रगें तडतडाने लगे और उसके खून से आस्मान तक लाल हो गए-

> क्षितिज रे पार के तोपों में
> सहसा जन्मे ओ तारे !
> तू चढ, ऊपर चढ
> जिससे ज़मी की रगें तडवे
> खूँ चूने लगे आस्मान में।[1]

कवि केलिए संसार एक हाट है, जहाँ मानव खुद ही मौलभाव करने लगता है। उस संसार में फूलों को टहनियाँ निगलती है, टहनियों को पेड और पेडों को जडें।

---

1. कुरुक्षेत्र - अय्यप्पपणिक्कर हिन्दी अनुवाद - रति सक्सेना

भीड भटकनेवाली
बडी सी हाट है दुनिया
माल ढोर सौदागर आते है
मौल लगाते खुद को
फिर मौलभाव करते[1]

डॉ. रति सक्सेना ने कुरुक्षेत्र के बारे में लिखा :- कुरुक्षेत्र मानव का संघर्ष है, जिसे धर्मयुद्ध कह इतिहास में सजाने की कोशिश की गई है। यह मोह और स्वार्थ का युद्ध है, जिसमें मेरे अपने (मामक:) और दूसरों (पांडवों) में संघर्ष है। जब भी अपने और पराये के ब्रीच संघर्ष होता है, मानवता कुछ कदम पीछे लौट जाती है। इस लौटती हुई मानवताको पुकारकर जगाने की कोशिश है यह कुरुक्षत्र। कुरुक्षेत्र केवल मोहभंगों और पीडाओं की कहानी कहकर शान्त नहीं होता है, अपितु उनकेलिए मार्ग भी ढूँढता है।

सच्चिदानन्दन की कविताओं में युद्धविरोध

मलयालम के आधुनिक कालीन साहित्य में सच्चिदानन्दन का अपना अलग अस्तित्व है। उन्होंने अपनी 'भेडिया' कविता में साम्राज्यवाद का विरोध किया है। साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रतीक है यह भेडिया, जिसकी भाषा मृत्यू है। उसकी युक्ति जंगल की युक्ति है। अर्थात वे तो जंगलवासी हिंस्रजन्तुओं के समान है। इस धर्ती को वे

---

1. कुरुक्षेत्र - अय्यप्पपणिक्कर-हिन्दी अनुवाद - रति सक्सेना

थाली समझते हैं। सच्चिदानन्दन का यह भेडिया कोई भी हो सकता है। चाहे वह बुश हो, सद्दाम हो या तलिबान के नेता बिनलादन हो। गरम रक्त की गंध उसके दांतों को नशीला प्रना देती है। उसके पैर रखने पर धर्ती काँपती है और वसंत को जला देने की शक्ति उनकी दृष्टि को है। दुनिया की सारी चीज़ें-वसंत, ऋतुएं, सारे भूखंड, पक्षि आदि उसके अधीन में है। वह समझौतावादी नहीं है।

युद्ध के समान मुझे शान्ति भी पसंद है
शान्त जंगल की साधारण आवाज़ों में
मेरे शिकारों की कराह सूख जाती[1]

पेरिङ्ङोम की जनता को समर्पित उनकी प्रसिद्ध कविता है 'हिरोशिम की याद'। हिरोशिमा की त्रासदी के मूक गवाह बने मानव आज असीम शक्तिशाली प्रने है। तूफान, आन्दोलन और भूत-प्रेत भी उनकेलिए सारहीन है। वे अपनी तीक्ष्ण आवाज़ में बोलते हैं कभी ऐसी दुर्घटनाएँ न हो। वे अपने को घास समझते हैं, लेकिन तूफान में भी निस्तब्ध होकर खडे रहने की क्षमता उनमें है। क्योंकि वे इस निर्मम त्रासदी का सामना करनेवाले हैं।

हिरोशिमा में करोडों सूरज के प्रकाश को लेकर मृत्यू आयी। कवि केलिए मृत्यू का आना फूल खिलने के समान है। इस बगीचे में मृत्यू का आना फूल खिलने के समान है। इस बगीचे में मृत्यू के परिशिष्ट और कपाल है:-

---

1. भेडिया - सच्चिदानन्दन - भाषान्तर - सच्चिदानन्दन की चार कविताएँ 2003 वागर्थ अगस्त

हम याद करते है हिरोशिमा
करोडों सूरज के प्रकाश लाकर
मृत्यू आयी
फिर बारूद, मलबे
और खोंपडी का बगीचा[1]

किमोणाओं पर माँ की दूध और रक्त की बूंदें गिरने लगे। अपने ही घर के सुखद स्पर्श पाने केलिए आए बच्चे घर के आँगन में ही गिर पडे। बमवर्षा के कारण टूटे हुए प्रणय पर, मरे गये बच्चों पर और मरी हुई एक सभ्यता पर कवि अपनी तीव्र संवेदना प्रकट करता है। यह कविता पाठकों के मन में तीव्र संवेदना प्रकट कर लेती है। उनके मन में युद्ध के प्रति वितृष्णा की भावना को पैदा करती है।

अनन्त- वियतनाम युद्ध की स्मृति

वियतमान युद्ध की स्मृति में लिखी सच्चिदानन्दन की कविता है 'अनन्त'। इसमें उस छोटी सी बच्ची की तस्वीर है जो अपने परिवारवालों को खो जाने पर नग्न होकर युद्धक्षेत्र से भाग रही है।

तू दौड, नग्न होकर, गरम शरीर
धूप को और बाल हवा को देकर।।[2]

---

1. भेडिया - सच्चिदानन्दन - भाषान्तर - सच्चिदानन्दन की चार कविताएँ 2003 वागर्थ अगस्त
2. अनन्त - सच्चिदानन्दन - भाषापोषिणी मासिक (मलयालम)

उस छोटी सी लडकी भागती भागती ने कवि के हृदय में शरण पा ली। कवि मन के भीतर अनेक संघर्ष चल रहे है। लेकिन हृदय के असंख्य धावों के बीच में भी कवि ने लडकी को शरण दिया।

रूस के बस्लान में हाल ही में हुई एक त्रासद घटना का उल्लेख प्रस्तुत कविता में है। रूस और चेचन के बीच हुए इस संघर्ष के दौरान आतंकवादियों ने बस्लान के तीन सौ से अधिक बच्चों की निर्मम हत्या की। इन बच्चों के बारे में सोचकर लडकी की आँखों से आंसू नीचे गिरता है।

कवि ने लडकी के हृदय की आग को बुझाने केलिए एक घडा बात कही और घाव भरे उनके हृदय में मधू का स्पर्श किया। हृदय से उसने लडकी से बताया:- मुझे युद्धहीन दुनिया में जन्म लेना है।

कवि लडकी से इस घृण्य, भीषण दुनिया से अपने को बचाकर, उस काल्पनिक दुनिया की ओर ले जाने को कहते हैं, जहाँ युद्ध न हो, पर इसके बदले कहानियाँ हो, पियानो हो। किन्तु वहाँ पहूँचकर भी वे इस भीषण दुनिया को भूलना न चाहते है। उनकी नज़रें हमेशा यहाँ पर है। क्योंकि युद्ध से मन में वितृष्णा का भाव होने पर भी, वे कवि कर्म को नहीं भूलते हैं, कवि कर्म से बचना नहीं चाहते हैं।

युद्ध को कोसनेवाला कवि-हृदय

युद्ध की नृशंसता को देखकर आम जमता उसे कोसती है। डाँ प्रो मेलत्तु चन्द्रशेखर की कविता - हे युद्ध तूझे कोसता मैं, आम

आदमी की इस आवाज़ को बुलन्द करती है। वे युद्ध को कोसते हैं , साथ ही साथ युद्धविज्ञों को भी।

हे युद्ध तुझे कोसता मैं
हे युद्धविज्ञों तुम्हें भी कोसता मैं।[1]

गाँधी, बुद्ध और अशोक पर कवि अपनी श्रद्धाँजली अर्पित करते है। भारतीय संस्कृति पर कवि मन में असाधारण गर्व है। गाँधीजी के अहिंसावाद, बुद्ध के शरणत्रयी धन और अशोक की महानता कवि को ज़्यादा प्रभावित करते हैं। भारत ने चीन के साथ पंचशील समझौते पर हस्तक्षेप करके पडोसियों के साथ आत्मीय संबन्ध स्थापित किया। बुद्ध, अशोक और गाँधी द्वारा दिए गए महान उपदेशों का आधुनिकतम रूप पंचशील तत्वों में देख सकते हैं।

अपने देश के प्रति असीम श्रद्धाभाव रखनेवाले कवि दूसरे देश की संस्कृति की आलोचना भी करते हैं। वहाँ युद्ध की संस्कृति है। वियतनाम, कोंकोवन, स्वीडन और कोरियाई पहाडों में कवि युद्ध का घृण्य, काला चेहरा देखता है। युद्ध की क्रूर दंष्ट्राओं में फंसी मासूम जनता पर कवि दुख प्रकट करते है। अब दुनिया में चल रहे युद्ध को कवि 'दूसरे कुरुक्षेत्र' की संज्ञा से अभिहित करते हैं।

मृत्यू की लंबी ग्रीवा, बडी चोंच
मारते, सडती लाश पर गीध ये

---

1. युद्धमे निन्ने शपिक्कुन्नु आन - प्रो. मेलत्तु चन्द्रशेखरन - हिन्दी अनुवाद हे युद्ध तुझे कोसता में - पृ. 193 - भाषा नवंबर-दिसंबर 2003

दूसरा कुरुक्षेत्र, बाकी जो बचे
अन्त से वंचित गरमाते रास्ते में गिरते
सडी कलियाँ कीडों का आहार बनतीं।

जैवरासायनिक हथियारों के प्रयोग की और कवि ने इशारा किया है। भारतीय संस्कृति अर्ष संस्कृति है। यहाँ के ऋषि वनान्तरों में शान्ति मंत्र फूँकते थे। पाकिस्तान के लोग इस्लामी है, उनके खुरान में भी अहिंसा और शान्ति के तत्व मिलते हैं। लेकिन दोनों देशों के बीच घमासान लडाई हो रही है। कवि मन में इस समय हिरोशिमा और नागसाकी की यादें आती है और ये यादें उसे डरा भी लेती हैं।

इन सभी तथ्यों पर नज़र डालने से हम इस निष्कर्ष पर पहूँचते हैं कि युद्ध मानवता का सबसे बडा अभिशाप युद्ध का प्रमुख कारण मूल्यगत असंगति है। वैज्ञानिक और तकनीकी उपकरणों का विकास तीव्रगति से हुआ है, किन्तु उनको जीवन मूल्यों से संबन्धित करने में हम असफल हुए है। भौतिक विकास के समानान्तर मूल्यबोध के विकास का अभाव वर्तमान साँस्कृतिक संकट का कारण है। यहाँ मुल्यहीनता नहीं, मूल्यगत असन्तुलन है। संसार में हर समय में होनेवाले युद्ध मूल्यों और वस्तुस्थितियों के बीच उत्पन्न असन्तुलन का परिणाम है। समुचित मूल्य-व्यवस्था द्वारा इसका समाधान किया जा सकता है। इसकेलिए सत्ता का समझदार लोगों के हाथ में होना ज़रूरी है।

भौतिक समृद्धि के लिए दौडनेवाले मानव को एक ही लम्हे पीछे मुडकर देखना है कि युद्ध और आतंक का सहारा लेकर उसने

क्या हासिल किया है। तुरन्त ही हमें उत्र्र मिलता है कि इन्सानी मूल्यों का गला घोंटकर हमने कुछ भी नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अशान्ति ही प्राप्त की है। इससे बचने के लिए हमें महान पुरुषों के जीवन-दर्शन को आत्मसात करना है, प्रेम, करुणा, सहानुभूति आदि श्रेष्ठतम मूल्यों को ज़िन्दगी में स्वीकार करना है। इसकेलिए सही रास्ता दिखाने में महान साहित्यकारों की महत्वपूर्ण कृतियाँ हमेशा हमारे साथ रहेगी।

दूसरा अध्याय

युद्धजन्य साँस्कृतिक संकट : आधुनिक हिन्दी कविताओं में

कविता मानवमूल्यों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। शब्दों से जादू चलानेवाला, कवि नही है। काव्य में जब पाठक अपने समय और समाज की नब्ज को पहचानता है, वह कालजयी हो जाता है। अपने वर्ग, समाज और समय के तनावों को अनदेखा करनेवाली कविता, सार्थकता की सीमा को छूने में असमर्थ होती है। सामयिकता से सरोकार रहना सच्चे साहित्य की खासियत है। युगीन समस्याएँ रूप बदलकर, नया पोशाक पहनकर कविता में उपस्थित होती है।

कविता का पुराना रूप

हिन्दी कविता के इतिहास की ओर नज़र दौडाये तो हम समझ लेते हैं कि लोगों की सस्ती अभीरुचियों को प्रोत्साहित करने केलिए यहाँ कुछ श्रृंगारपरक रचनाओं का प्रणयन हुआ है। ये रचनाएँ लोगों को गुमराव करके एक काल्पनिक दुनिया की ओर ले जाती हैं। साँस्कृतिक प्रदूषण के सिवा ये रचनाएँ कुछ भी नहीं करती।

हिन्दी के आदिकालीन साहित्य में वीरकाव्यों की भरमार थी। यह दौर मुख्यतः राजनीतिक उत्थान-पतन का समय था। भारत के उत्तर पश्चिमी सीमांतों से अनेक विदेशी जातियों ने आक्रमण किया

और परिणामस्वरूप देशी राजाओं को इनसे युद्ध करना पडा। मुहम्मद गज़नी और मुहम्मद गोरी जैसे आक्रमणकारियों ने भी इस युग में अशांति को जन्म दिया। वीरकाव्यों में इसी अशान्तिकालीन वातावरण का चित्रण है। हिन्दू राजाओं के दरबारों में कवियों और चारणों ने उत्साह-वर्धन तथा गुणगान के रूप में अनेक काव्यों की रचना की। इस वीरकाव्य के विभिन्न कवियों ने आश्रयदाता राजाओं के यश, युद्ध-प्रयाण और शौर्य से युक्त कार्यकलाप का चित्रण किया। वीरकाव्य के अन्तर्गत मुख्यतः रासो काव्य-परंपारा का विकास हुआ है। वीररस के चार प्रमुख रूप युद्धवीर, दानवीर,धर्मवीर का प्रभावशाली चित्रण रासो काव्यों में है।

वीरकालीन काव्यों में प्राचीन कृति दलपत विजयकृत 'खुमान रासो' है। इसमें खुमानों पर विविध खलीफाओं की चढाइयों और उनके फलस्वरूप युद्धों का वर्णन है। काव्य के नायक पृथ्वीराज चौहान के जीवनवृत्त, प्रमुख युद्धों एवं विवाहों का वर्णन आदि इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। गज़नी के बादशाह गोरी से पृथ्वीराज चौहान के बीस युद्धों का वर्णन इसमें है। कवि चन्द भी एक वीर योद्धा थे।

युद्ध करना उस युग का घोष था और वीरगति पाकर अमरता प्राप्त करना सहज संदेश था। मृत्यु, भय की वस्तु न थी। इस तरह के घमासान युद्धों के पश्चात्त भारत में राजनीतिक अस्थिरता और परतंत्रता की स्थिति हुई। इस काल की जनता में साँप्रदायिक एकता और समानता लाने के लिए भक्तिकाव्य का विकास हुआ।

भक्तिकाल के पश्चात्त आए रीतिकालीन साहित्य में लक्षणयुक्त श्रृंगार कृतियों के साथ वीरकाव्यों का भी प्रणयन हुआ। रीतिकाल में ग्रन्थों के सौन्दर्य का मूलाधार युद्ध या वीरता का आलंकारिक वर्णन था। तत्कालीन समाज, युद्ध को और युद्ध,समाज को मान्यता देता था। इस वजह युद्ध, इन कविताओं की कर्मभूमि बन गया। वीररस प्रधान कवियों में भूषण का प्रमुख स्थान है। अपने चरित नायक शिवाजी की वीरता का वर्णन भूषण ने 'शिवराजभूषण' में किया। औरंगज़ेब के विरुद्ध शिवजी के युद्ध का वर्णन भूषण इस प्रकार करते हैं कि 'कहीं मुंड कटते हैं, कहीं रुंड नाचते हैं और कहीं हाथियों की कटी हुई सुंडें पृथ्वी को पारती है। कहीं गिद्ध लडते हैं तो कहीं सिंह मन में आनन्द की वृद्धि से लडता है। कही भूत घूमते हुए परस्पर भिडते हैं तो कही देवदूत इकण्ठे होते हैं।' इसी तरह शिवजी के अद्भुत पराक्रम का वर्णन करते हैं कि वर्षा ऋतु की भली रात में वीर शिवजी जब युद्ध में हुँकार उठे तो दस मराठों के धमकने से हज़ारों म्लेच्छ कर गए। पठानों के कबन्धों की धमक से किले की भूमि हिल उठी।'

इसी तरह अलंकारों की चढाव से कविता की गरिमा बढाकर अपने आश्रयदाताओं युद्धवीरता को उत्तेजित करना इस काल के काव्य का मक्सद था। आवाम की त्रासदी, युद्ध के भयानक और बीभत्स परिणाम आदि पर कवियों ने नज़र न डाले।

बदला हुआ तेवर

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल भारतेन्दु युग से शुरू होता है। भारतेन्दु ने रीतिकालीन कीचड से कविता को मुक्त करके भाव, भाषा और शैली में नयापन उपस्थित किया। इस काल की कविता में जनवादी तत्वों का समावेश हुआ। राष्ट्रीयता, ब्रिटिश शासन द्वारा की गई दुर्दशा के प्रति असन्तोष और स्वाधीनता की कामना, हिन्दु-मुस्लिम एकता का आह्वान आदि भारतेन्दुकालीन कविता की विशेषताएँ रही।

भारतेन्दु ने अफगान युद्ध की पृष्ठभूमि में सन् 1887 में 'विजयवल्लरी' की रचना की। मिस्र की लडाई में भारतीय सेना की विजय पर उन्होंने 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' (1888) लिखी। दोनों कविताओं में उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली को अपनाकर साम्राज्यवाद का घोर विरोध किया।

'नए ज़माने की मुकरी' में उन्होंने ब्रिटिश कुशासन का पर्दाफाश किया।

"भीतर भीतर सब रस चूसै
हँसि के तन-मन -धन मूसै"[1]

पहले विश्वयुद्ध के प्राद साम्राज्यवाद का शिकंजा अत्यन्त सख्त हो गया। विश्व परिस्थिति के बदलावों के प्रति जागरूक रचनाकार इस दौर में साम्राज्यवाद और युद्ध की तीव्र निन्दा करने लगे।

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग 2, पृ. 811

जयशंकर प्रसाद की 'अशोक की चिंता' जैसी सशक्त कविताओं का सृजन इस काल में हुआ। इसमें अहिंसा सिद्धान्तों का समर्थन किया गया है। कलिंग के विनाश पर अशोक के मनपरिवर्तन दिखाकर कवि ने शान्ति की राह की ओर जाने का आह्वान किया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध की भीषणतम परिणामों के बाद साम्राज्यवाद-विरोधी जनज्वार को नया उत्कर्ष मिला। छायावाद के समानान्तर विकसित राष्ट्रीय स्वच्छन्दतावाद धारा के कवियों में युद्धविरोध एक स्थायी भाव की तरह मौजूद है। दिनकर का 'कुरुक्षेत्र' इस दौर की मुख्य रचना है।

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने अपनी कविताओं के ज़रिए युद्धोन्मादी लोगों की रक्त पिपासा की भर्त्सना की है। बालकृष्णशर्मा 'नवीन' ने दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान 'घुंट हलाहल' कविता लिखी - फासिस्ट शक्तियों के विकराल पाशविक गर्जन का पुरजोर प्रतिशोध किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौर में लिखित निराला की रचनाओं में भी युद्धकाल का और उसके दहशत का प्रभाव दृष्टिगत है। युद्ध के आरंभिक वर्षों में ही उन्होंने साधारण-से-साधारण और नाम से नगण्य 'कुकुरमुत्ता' को केन्द्र बनाकर साम्राज्यवाद-विरोध की अभिव्यक्ति की। 'राम की शक्तिपूजा' में निराला ने अन्याय और असत्य पर न्याय और सत्य की विजय दिखाई।

प्रयोगवादी काव्यधारा में अज्ञेय, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन, नरेश मेहत्ता, धर्मवीर भारती प्रभृति कवियों ने युद्ध के खिलाफ तीव्र प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की। प्रगतिवादी कवि रांगेय राघव की साम्राज्य-विरोधी भावना की अभिव्यक्ति 'पिघलते पत्थर' संग्रह की कविताओं में है। कवि नरेन्द्र शर्मा 'अग्निशष्य' कविता में नए युग की समस्याओं की ओर संकेत करता है।

आठवें दशक के कवि वीरेन्द्र मिश्र ने साम्राज्यवादियों के विरोध में अपनी कविता को हथियार के रूप में प्रयुक्त किया।

इसी तरह हम देखते हैं कि प्राचीन ज़माने में युद्धकाल योद्धाओं के लिए अनिर्वचनीय आनंद का क्षण उपस्थित करता था। आधुनिक काल में इससे ठीक विपरीत रूप नज़र आता है। आज साम्राज्यवादी ताकतों के अलावा कोई भी युद्ध नहीं चाहता है। आज के कवि युद्ध को निन्दित और क्रूर मानते हैं।

शोषण और संघर्ष के इस युग में कवि कोरी कल्पना की दुनिया से बाहर आया। आज का कवि स्वीकारता है कि युद्ध भयंकर है, विध्वंसक है। कवि-कर्म की चर्चा करते हुए यूरोप के मशहूर कवि हंस मागनुस एन्त्सेन्सबर्गर ने लिखा -"कविताएं उथल-पुथल पैदा कर सकती है, विश्लेषण कर सकती है, प्रश्न कर सकती है, आदेश दे सकती है, ओंठों ही ओंठों हँस सकती है।"[1] आधुनिक कवि कविता को

---

1. बीसवीं सदी के अन्धेरे में (साक्षात्कार कृति) - श्रीकान्त वर्मा

शस्त्र की हैसियत देता है और इस जनविरोधी शक्तियों के खिलाफ खडा करता है। आधुनिक युग में युद्ध की त्रासदी के विरोध में और शान्ति के पक्ष में अनेक महत्वपूर्ण कविताएँ लिखी गई। युद्ध की अमानवीयता और कुत्सित अवधारणा को चुनौती देनेवाली ये कविताएँ हमेशा के लिए शान्ति, सृजन और मनुष्य की अस्मिता का पक्ष लेती है।

दिनकर का युद्ध दर्शन

आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति तटस्थता का भाव कभी नहीं रहा है। वैश्विक स्तर पर उसने मनुष्यता के संकट को वाणी दी है। युद्ध मनुष्यता का सबसे बडा संकट है। आणविक युग में हथियारों का संचय-स्पर्धा, संदेह और अविश्वास को जन्म देता है। इसलिए सारे मानवप्रेमी कवियों ने युद्ध का सख्त विरोध किया।

स्वातंत्र्योत्तर युग में युद्धविरोधी चेतना अत्यन्त प्रबल हुई। द्विवेदी युगीन प्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर ने सबसे पहली बार 'युद्ध' को अपनी कविता का मुख्य विषय बनाया। युद्ध के मूल कारणों तथा उसके पक्ष-विपक्ष का विश्लेषण करके उन्होंने उससे उत्पन्न समस्याओं के समाधान का प्रयास किया।

दिनकर ने अपने कुरुक्षेत्र, रश्मीरथी, परशुराम की प्रतीक्षा आदि काव्यों में युद्ध और शान्ति के संबन्ध में अपना क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किया। द्वितीय महायुद्ध में भीषण संहार, हाकार और त्रास ने दिनकर को इस विषय पर सोचने को बाध्य किया।

दिनकर आदर्श के बलपर आगे बढनेवाला कवि नहीं है। उनका विचार ठोस यथार्थ से उद्भूत है। युद्ध निन्द्य है, शान्ति सबको प्रिय है, किन्तु शान्ति केवल माँगने या चाहने से नहीं मिलती, उस केलिए भी युद्ध करना पडता है। व्यक्ति के मन में अन्तर्निहित स्वार्थ भावना युद्ध का कारण बन जाती है।

विश्व मानव के हृदयनिर्दोष में
मूल हो सकता नहीं, द्रोहाग्नि का
चाहता लडना नहीं समुदाय
फैलती लपटें विषैली व्यक्तियों की साँस से।[1]

युद्ध का वैयक्तिक और सामाजिक पक्ष

सभी मानव युद्ध नहीं चाहते हैं। लेकिन किसी एक विषैली व्यक्ति के अन्तर्मन में युद्ध की ज्वाला निहित है तो वह सारे समाज में फैल जाती है। उस विषैली ज्वाला में सारा समाज झुलस जाता है।

संसार की प्रवृत्ति यह है कि यदि दो अभिमानी लडना चाहते हैं, एक दूसरे को मानना या स्वयं मिटना चाहते हैं तो वह उन्हें अकेले नहीं छोडता। दोनों पक्षों का समर्थन लोग करने लगते हैं और वह युद्ध दो व्यक्तियों के वैयक्तिक द्वन्द्व युद्ध के धरातल को छोडकर सामाजिक स्तर पर व्याप्त हो जाता है। उस समय समाज के सभी मनुष्य सोच-विचार के बिना ही युद्धक्षेत्र की ओर दौड जाते हैं। परन्तु मनुष्य का यह

1. कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. १

स्वभाव नहीं होता कि वह दोनों संघर्षरत मनुष्यों की युद्धाग्नि में पानी डाले।'

कवि यहाँ युद्ध के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। वे बताते हैं 'मनुष्यों में भी आग की भांति विकारों की शिखाएं एक दूसरे से मिलकर प्रचंड वेग में जलती रहती हैं। प्रथमतः व्यक्ति का स्वार्थी अन्तर्व्योम तप्त होता है और उसके पश्चात्त उससे आँच पाकर समुदाय का आकाश भी अग्नि की लपटों में जलता हुआ दिखाई देता है। मनुष्यों में एक-दूसरे के प्रति जो ईर्ष्या, द्वेष, एवं घृणा है, वे ही युद्ध की लपटों में परिवर्तित हो जाते हैं। 'जब इस प्रकार व्यक्तियों के हृदयों में विकारों की भट्टियाँ तैयार हो जाती हैं तब युद्ध का ज्वालामुखी किसी न किसी व्याज से फूट पडता हैं।' मनुष्यों में स्वार्थ, शौर्य एवं आवेग की जो वृत्तियाँ हैं, उनके द्वारा परिचालित होकर ये अपने आप रण में कुछ व्यक्तियों की सहायता के लिए कूद पडते हैं।'

युद्ध के उन्माद को कवि संक्रामशील मानते हैं। यदि एक चिनगारी किसी कोने में उठी तो उसके अनुकूल पवन बहने लगता है। चारों ओर से युद्धाग्नि की लपटें समाज को घेरती है।

युद्ध का उन्माद संक्रामशील है
एक चिन्गारी कहीं जागी अगर,
तुरन्त बह उठते पवन उनचास है,
दौडती, हँसती, उबलती आग चारों ओर है।[1]

1. कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. 12

कवि कहते हैं कि 'युद्ध की विभीषिका से सभी जनता अच्छी तरह से परिचित है। अतः कोई भी सहज रूप से युद्ध करना नहीं चाहता है। न कोई दुसरे को मारना चाहता है और न किसी के हाथ में स्वयं मरना चाहता है। मानव अनयमय शान्ति को भी तोडना नहीं चाहता है। जहाँ तक हो सके, वह अपनी शान्ति-प्रियता निभाना चाहता है।'

सहज ही चाहता कोई नहीं लडना किसी से
किसी को मारना अथवा स्वयं मरना किसीसे
नहीं दुशान्ति को भी तोडना नर चाहता है।
जहाँ तक हो सके निज-शान्ति-प्रेम निबाहता है।[1]

परन्तु समय के बीतने के साथ साथ शासक की क्रूरता और भी कठोर हो जाती है और अन्याय की श्रृंखला बढती जाती हैं। 'ऐसी अवस्था में किसी न किसी दिन क्रान्ति या युद्ध का महाविस्फोट फूटता है और मनुष्य अपने प्राणों को हथेली पर लेकर क्रूर शासक पर टूट पडता है।'

समय ज्यों बीतता, त्यों त्यों अवस्था घोर होती
अनय की श्रृंखला बढकर कराल, कठोर होती
किसी दिन तब महाविस्फोट कोई फूटता है,
मनुज ले जान हाथों में दनुज पर टूटता है।[2]

1. कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. 48
2. वहीं - पृ. 49

क्रान्ति और युद्ध दोनों एकदम भिन्न है। यहाँ दिनकर जनता की क्रान्ति भावना के बारे में बताते हैं। जनता हमेशा अमन चाहती है, वे शान्ति और सद्भावना के पक्षधर है। शासकों की अन्यायभरी और अमानवीय हरकतों के बढने से वे एकदम प्रतिशोध से जाग उठेंगे। रूसी क्रान्ति, फ्राँसीसी क्रान्ति आदि इसके उदाहरण है। सर सम्राट की क्रूरता से बेचैन होकर जनता उनके खिलाफ प्रतिशोध की भावना से जल उठी तो, रूसी क्रान्ति फूट पडी। इसी तरह 1789 की फ्राँसीसी क्रान्ति से नेपोलियन के एकाधिकार शासन का अन्त हुआ।

युद्ध में सम्राट जनता पर टूट पडता है। आम आदमी बेसहारा हो जाता है। क्रान्ति दबी हुई जनता का आक्रोश है। विश्व की महान क्रान्तियाँ, चाहे रक्तप्लावित हो, उनमें जनता की जीत हुई है। क्रान्ति के अन्त में समता और स्‌भावनापूर्ण समाज का उदय होता है। 'इस विध्वंस के प्रणेता पराजित और जेता ही नहीं हैं, अपितु वह सारा समुदाय भी है, जिसने युद्ध में दोनों पक्षों में सक्रिय भाग लिया है।' कवि के अनुसार 'महाभारत का युद्ध केवल दो घरों का द्वन्द्व मात्र नहीं है, उसमें असंख्य युद्ध-प्रेमी नरों के पौरुष की अग्नि भरी हुई थी। 'जो युद्ध प्रतिशोध के ऊपर निर्भर होता है, उस पर अन्याय या पाप का कोई कलंक नहीं लगेगा' विश्व के सभी लोग युद्ध को निन्द्य ठहराते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि जब तक व्यक्ति या राष्ट्रों के स्वार्थ टकराते है, तब तक विश्व में युद्ध अनिवार्य है।

1942 में विश्वयुद्ध के दौरान दिनकरजी युद्ध प्रचार विभाग में कार्यरत थे। युद्ध के वैयक्तिक और सामाजिक पहलुओं पर विचार करने केलिए उन्होंने कल्पना का सहारा नहीं लिया। अपनी आँखों से देखा हाल ही उन्होंने पौराणिक कथा महाभारत को आधार बनाकर प्रस्तुत किया है। युद्ध की भीषणता का मार्मिक दृश्य कुरुक्षेत्र में अंकित है-

बालहीन माता की पुकार कभी आती, और
आता कभी आर्तनाद पितृहीन बाल का,
आँख पडती है जहाँ हाय वहीं देखता हूँ
सेंदुर पूछा हुआ सुहागिनी के भाल का।
बाहर से कक्ष में जो छिपता हूँ,
कभी तो भी सुनता हूँ
अट्टहास क्रूर काल का
मानव को देख आँखें आप झुक जाती
मन चाहता अकेला कहीं भाग जाऊँ।[1]

युद्ध-एक नकारात्मक अवधारणा

युद्ध मानव के सपनों को बरबाद करते है। मानव, जीवन में हमेशा सुख और शान्ति को चाहता है। कुछ लोगों की व्यर्थ मान्यता है कि युद्ध से यह सब हासिल किया जा सकता है। लेकिन स्वस्थ समाज की कल्पना से जो युद्ध किया जाता है, वही युद्ध समाज में विष के बीज बो देते हैं। समाज विषैला बन जाता है, दुनिया में मातृहीन बच्चों की,

1. कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह दिनकर - पृ.१८

अभागे अदमी की, पितृहीन बालकों की पुकार गूँज उठती है। युद्ध के क्रुर अट्टहास से कोई भी बच नहीं सकता।

युद्ध एक तूफान है। जिस प्रकार तूफान अनायास ही नहीं टूट पडता, प्रकृति में जो प्रचंड निनाद धीरे-धीरे एकत्र होता रहता है वही एक आवेगमय विस्फोट के रूप में एक दिन फूट पडता है। उसी प्रकार, मानव समाज में व्यक्तिगत, राजनीतिक ओर राष्ट्रीय स्तर पर जो विकारों की शिखाएँ धीरे-धीरे सुलगती रहती है, क्षोभ, घृणा, ईर्ष्या और द्वेष उनको प्रज्वलित करते रहते है। वही आग देश-प्रम अथवा राष्ट्र-प्रेम के व्याज से युद्धाग्नि के रूप में फैल जाती है।

युद्ध की अनिवार्यता

युद्ध का आरंभ अन्यायी शासक ही करता है। फिर धर्म, नीति तथा न्याय के मार्ग पर चलनेवालों केलिए उसकी चुनौती स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई विकल्प रह नहीं जाता। युद्ध की ज्वाला के आगे शान्तिप्रेमियों के तत्वचिन्तन, गंभीर विचार आदि पीछे पड जाते हैं। इस तरह युद्ध कभी कभी एक अनिवार्य विकार बन जाता है।

दिनकर के मत में युद्ध का उत्तर युद्ध से ही दिया जा सकता है, विषम रोग का उपचार मिष्ठान्न नहीं, तिक्त औषधी है।

रुगण होना चाहता कोई नहीं
रोग लेकिन आ गया जब पास हो
तिक्त औषधि के सिवा उपचार क्या?
शमित होगा वह नहीं मिष्ठान्न से[1]

1. कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. 19

कवि की इस मान्यता को ध्यान में रखकर उन्हें हिंसावादी घोषित करना उचित नहीं है। क्योंकि उन्होंने हिंसा अथवा युद्ध को जीवन के साध्य या अन्तिम लक्ष्य के रूप में कभी नहीं स्वीकार किया था।

दिनकरजी ने किसी भी राष्ट्र केलिए युद्ध को विकास अथवा विस्तार के साधन के रूप में नहीं स्वीकार किया है। परन्तु देश की आत्मरक्षा केलिए सैन्य-शक्ति का संतुलन और उसके प्रयोग की सामर्थ्य राष्ट्र केलिए आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य ही है।

सेना-साज हीन है परस्व हरने की वृत्ति
लोभ की लडाई क्षात्र-धर्म के विरुद्ध है,
वासना-विषय से नहीं पुण्य उद्भूत होता,
वाणिज्य के हाथ की कृपाण ही अशुद्ध है।
चोट खा परन्तु, जब सिंह उठता है जाग,
उठता कराल प्रतिशोध हो प्रबुद्ध है,
पुण्य खिलता है चन्द्रहास की विभा में तब,
पौरुष की जागृति कहती धर्म-युद्ध है।[1]

स्वत्व, धर्म, सम्मान की रक्षा केलिए जो युद्ध किया जाता हैं वह पाप नहीं। अत्याचार का प्रतिशोध लेने केलिए उठाई गई तलवार की चमक में पुष्प खिलता है। अत्याचार सहना बडा पाप है। अन्यायी को अन्याय करने की हिम्मत करने का अवसर देना भी पाप है।

---

1. कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. 31

छीनता हो स्वत्व कोई और तू त्याग तप से काम ले,
यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे,
बढ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।[1]

अतः दिनकरजी का युद्ध संबन्धी विचार बिल्कुल अलग लगता है। एक और वे युद्ध के विरोध में अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, उसकी नृशंताओं और बुरे परिणामों की और हमारा ध्यान खींचता है तो दूसरी ओर वे उसकी अनिवार्यता का भी एहसास कराता है।

वैज्ञानिक प्रगति, मानव, युद्ध-आपसी संबन्ध

मानव-जीवन की सुख-सुविधाओं को बढाने का काम विज्ञान ने सफलतापूर्वक ही किया है। अज पृथ्वी, आकाश दोनों नर की मुट्ठी में हैं। अन्य ग्रहों पर भी वह पैर रख चुका है। विज्ञान के विकास के साथ प्रकृति भी मनुज के अधीन हो गई।

मानव की भौतिक समृद्धि अपनी सीमा को पार कर चुकी है। फिर भी वे आध्यात्मिक धरातल पर अत्यन्त गरीब नज़र आते है। वे आध्यात्मिकता का सहारा लेते हैं, ज़रूर, वह तो उनकी भौतिक सुविधाओं में और भी वृद्धि लाने केलिए। कवि कहते हैं-

मानव का मन अब भी कलुषित है,
बुद्धि में नभ की सुरभि, तन में रुधिर की कीच,
यह वचन से देवता पर कर्म से पशु नीच।[2]

1. कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. 113
2. वहीं

विज्ञान के विकास के साथ युद्ध के साधनों में भी पर्याप्त बदलाव आया। प्राचीनकाल में मनुज हथियार की सहायता से एक दूसरे को मारता था। परन्तु अब विमानों पर आरूढ होकर बमों को गिराकर संहार कर रहा है। यह स्थिति पहले की अपेक्षा अत्यन्त घातक है, भयंकर भी। क्यों कि कुछ ही देर में सारी दुनिया को तबाह करने में सक्षम हथियार अब मानव के पास है। यह स्थिति अत्यन्त भीषण है।

औद्योगिक क्रान्ति के कारण मानव आज एक मशीन सा हो गया है। ज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक बढ गया है, लेकिन दिन-ब-दिन उसका मन अत्यन्त सीमित और हृदय अत्यधिक कठोर बनता जा रहा है। कवि के ही शब्दों में आज का मानव यंत्र संचालित एक पुतला मात्र है, जिसका ज्ञान तो बढता जाता है, परन्तू हृदय अत्यन्त शून्य है।

स्थूल देह की विजय आज है, हे जग का सफल बहीर जीवन,
क्षीण किन्तू आलोक प्राण का, क्षीण किन्तू मानव का मन।[1]

वैज्ञानिक प्रगति ने मानव के मस्तिष्क पक्ष को विकसित किया, परन्तु हृदय-प्रदेश छूट गया, जिसमें पडकर देवता क्षीण हो कराह रहे हैं। कवि इससे क्रुद्ध हो उठते हैं। क्रोध में वह विज्ञान के विकास को पूर्ण रूप से रोकना चाहता है। मानवता के उत्थान के लिए मंगलमयी कला का आह्वान करता है। जो काम विज्ञान नहीं कर सकता, वह काम, कला अवश्य करेगी। ज्ञान की अग्नि से तप्त

---

1. कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. 38

मरुभूमि में कवि सुकोमल भावना की धारा बहाना चाहते हैं। वे ज्ञान और भावना का सन्तुलन चाहते हैं। दिन भर धूप में काम करनेवाले मानव केलिए कुछ शीतल छाया का अनुभव कराते हैं। वे मानव से पूछते हैं कि इस वृद्धि के पवमान में निरुद्देश्य होकर वह कहाँ उडता जा रहा है? किस दिशा की ओर दौड रहा है? उसका लक्ष्य क्या है? अन्त में कवि खीझकर कहते हैं कि 'यदि मानव इस प्रकार आगे बढता है तो समाज का कोई कल्याण नहीं हो सकता। मनुष्य इतना युद्धप्रिय हो चुका है कि वह विज्ञान के फूल को भी वज्र बनाकर संसार का नाश कर रहा है। अतः मानव के कल्याण के लिए विज्ञान की तलवार को दूर फेंकना है।

कवि विज्ञान की उपलब्धियों को नकारते नहीं। उनकी मान्यता है यदि विज्ञान मानव को पशु बनानेवाला है तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं। संघर्षों से युक्त आधुनिक जीवन की अपेक्षा सरल जीवन उन्हें अधिक पसन्द है। युद्ध, शोषण,आदि से हीन इतिहास की सृष्टि कवि को ज़्यादा पसन्द है। विज्ञान का उपयोग हमेशा मानव के कल्याण को ही ध्यान में रखकर करना है। कवि के शब्द है

श्रेय यह विज्ञान का वरदान,
हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिर अवदान,
श्रेय वह नर बुद्धि का शिवरूप आविष्कार
ढो सके जिससे प्रकृति सबके सुखों का भार,
मनुज के श्रम के अपव्यय की प्रथा रुक जाय
सुख-समृद्धि विधान में नर के प्रकृति झुक जाय।[1]

---

1. कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. 116

युद्ध के डर से मानव कहीं नहीं छिप सकता। सब कहीं यह उसका पीछा करता है। एक दूसरे का सामना करने की शक्ति भी अब मानव में नहीं रहती। युद्धक्षेत्र में गरम गरम खून की धारा बहती है तो घर के अन्दर निरालंब, भाग्यहीन मानव की रुदन सुन सकते हैं। वर्तमान ही नहीं, भूत और भविष्य भी युद्ध क्षेत्र में हावी हो जाते हैं।

पहले ही कहा गया है कि युद्ध दिनकर केलिए कल्पना की वस्तु नहीं थी। अपने घर के भीतर रहकर युद्धसंबन्धी कविताएँ लिखनेवाले कवियों से वे बिल्कुल अलग थे। पारिवारिक विषमताओं के दबाव से उन्हें युद्ध प्रचार विभाग में काम करना पडा। "कुरुक्षेत्र की रचना ही इस बात का प्रमाण है कि दिनकर का मन उन दिनों कितना द्वन्द्वग्रस्त रहा होगा।। जो भी हो, उन्हीं बाह्य परिस्थितियों और मानसिक संघर्षों के फलस्वरूप हिन्दी में विचारात्मक काव्य की नींव पडी और हिन्दी का प्रथम युद्ध काव्य कुरुक्षेत्र लिखा गया।"[1]

युद्धविरोध- छोटी सी कविताओं के ज़रिए

अपनी छोटी सी कविताओं में भी उन्होंने युद्ध की तीव्र आलोचना की। कुरुक्षेत्र के पहले 'कलिंग विजय' नामक कविता में दिनकर ने युद्ध की समस्या पर विचार किया था। अहिंसा ही उनका साध्य है। फिर भी अत्याचार ओर आतंक का सामना करने केलिए हिंसा के मार्ग को अपनाने से नहीं हिचकते हैं ।

---

1. दिनकर का युद्धदर्शन - सावित्री सिन्हा - पृ. 114

कलिंग युद्ध इतिहास प्रसिद्ध युद्धों में एक है। इसकी ख्याति इस कारण से नहीं है कि युद्ध में लाखों करोडों लोग मारे गए। बल्कि इसलिए है कि युद्ध शिल्पी राजा युद्ध की त्रासदी देखकर सन्न रह गए। अनाथ बच्चों की, घायल मानव की, यौवनयुक्त विधवाओं की करुण पुकार सुनकर उनका मन पश्चात्ताप से भर उठा। आगे न युद्ध करने की प्रतिज्ञा करके वे बुद्ध के अहिंसा-धर्म का प्रचारक बन गए। सम्राट अशोक के विचारों को वाणी कवि वाणी देते है:-

युद्ध का परिणाम, ह्रास त्रास
युद्ध का परिणाम सत्यनाश
रुण्ड-मुण्ड-लुंठन, निहिंसन, मीच।
युद्ध का परिणाम लोहित कीच।
हो चुका जो कुछ रहा भवितव्यं
यह नहीं नर केलिए कुछ नव्य
भूमि का प्राचीन यह अभिशाप।[1]

दिनकरजी की छोटी सी कविता है- कर्ण-कृष्ण संवाद। युद्ध के भीषणतम त्रासद परिणामों के प्रति वे इस कविता के ज़रिए हमें सचेत करते हैं।

भाई पर भाई टूटेंगे
विष-बाण बूंद से छूटेंगे
वायस-श्रृंगाल सुख लुटेंगे

---

1. कलिंग विजय - रामधारी सिंह दिनकर - संचयिता (काव्यसंग्रह)

सौभाग्य मनुज के फूटेंगे
बाहर शोणित की तप्त भार
भीतर विधवाओं की पुकार
बच्चे अनाथ चिल्लायेंगे।[1]

दिनकर ने युद्ध की समस्या को मानव की सभी समस्याओं की जड मानी। कुरुक्षेत्र की भूमिका में वे बताते है - 'युद्ध निन्दित और क्रूर कर्म है। किन्तु इसका दायित्व किसपर होना चाहिए? उसपर जो अनितियों का जाल बिछाकर प्रतिकार को आमंत्रण देता है? या उसपर जो, जाल को छिन्न भिन्न कर देने केलिए आतुर है।'

युद्ध जैसे क्रूर कर्म के शिल्पी भी मानव है, भोक्ता भी। व्यक्ति चाहे वह जितना क्रूर हो, अपने को दोषी या क्रूर नही मानता। अपने कर्मों का दायित्व वे दूसरों पर लाद लेते हैं। युद्धोन्मुख समाज में हम मुख्यतः तीन तरह के व्यक्तियों को देखते हैं-अन्याय और अनीति का बीज बोनेवाले निरंकुश मानव, जो दूसरों पर अन्याय करते हैं, अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए क्रूरता का जाल दूसरों पर बिछाते है। इस तरह वे संघर्ष का बुनियादी कारण बन जाते हैं। दूसरे, इस अनीति और अन्याय के खिलाफ लडने केलिए तैयार होकर आनेवाला। तीसरे, इस युद्ध या संघर्ष को भोगनेवाली मासूम जनता। जिसको पीढि-दर-पीढि इसका दुष्परिणाम भोगना पडता है। युद्ध से परेशान इन लोगों की कराहट सब कहीं गूंज उठती है। मानव-जीवन के सभी मूल्य युद्ध क्षेत्र

---

1. कर्ण कृष्ण संवाद - रामधारी सिंह दिनकर - संचयिता (काव्यसंग्रह)

में अस्त हो जाते हैं। सत्य, अहिंसा आदि का नाश होता है। युद्ध केवल मनुष्य पर ही नहीं, प्रकृति में भी विनाश के बीज बोते हैं। कवि कल्पना करते हैं कि युद्ध के बाद एक दिन आयेगा, जब नक्षत्रगण टकर जाएग। पृथ्वी पर अब पानी की बूंदें नहीं बरसेगी, बल्कि आग की वर्षा होगी।

टकराएँगे नक्षत्र निकट
बरसेगी भू पर वह्नि प्रखर
फण शेषनाग का डोलेगा
विकराल काल मूँह खोलेगा।[1]

यह तो एक बडा सच ही है कि युद्ध के समय काल अपनी सारी विकरलताओं के साथ नज़र आएगा। प्रकृति में कोई भी प्राणी शेष नहीं बचेगा। समस्त ब्रह्माँड युद्धाग्नि में प्रज्ज्वलित होगा। दिनकरजी मानव को नियति का दास मानते है, जो अपने आप केलिए हँसने का विषय है। नियति के दास मनुपत्र सिन्धु से आकाश तक सबको भयभीत करते हुए आगे बढते हैं। ईश्वरीय सत्ता का निराकरण करके निरुपाय किसी दिशा की ओर ये चल रहे हैं।

अहिंसा सिद्धान्त का प्रचलन सारे विश्व में हुआ है। लेकिन धर्म केवल धर्म और सिद्धान्त केवल सिद्धान्त मात्र रह गया है। व्यावहारिक तौर पर आदमी हिंसाधर्म के प्रचारक बन गए है। इस अभिशाप से मानव समाज की रक्षा कैसे की जा सकती है?

---

1. कर्ण कृष्ण संवाद - रामधारी सिंह दिनकर - संचयिता (काव्यसंग्रह)

अपने प्रसिद्ध काव्य 'रश्मीरथी' में कवि युद्धरत दुनिया से मानव की मुक्ति का उपाय ढूँढ लेने में सतर्क दीखते हैं। युद्ध की समस्या केलिए शाश्वत समाधान ढूँढना मुश्किल है। कवि की राय में इसका कारण मानव की अन्यमनस्कता है। मानव युद्ध की समस्या को दूर करने की अभिलाषा तो रखते है, समाधान खोजते है, परन्तू अन्यमनस्क होकर। इस अन्यमनस्कता के कई कारण नज़र आते है।

कई देशों में युद्ध एक संस्कृति जैसा बन गया है। युद्ध से आजीविका चलानेवाले एक वर्ग है, जिनसे शस्त्र व्यापार को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलते हैं। अपने व्यापार को बनाये रखने केलिए वे हमेशा युद्ध को चाहते हैं। एक और किस्म के लोग है, जो सैनिकों को विशेष प्रशिक्षण देते है। यदि युद्ध न हो तो उनकी आजीविका एकदम बन्द हो जाती है। युद्ध मानव की सृष्टि है, इसकी त्रासदी भोगनेवाले भी वे ही है। मानव ने अपने वंश केलिए एक नाम चुना है homosapiens, जिसका अर्थ है विवेकपूर्ण मनुष्य। पर उसके विवेकहीन कर्मों को देखकर ऐसा लगता है कि इन्होंने इस नाम का सही अर्थ नहीं समझा है।

हिरोशिमा कविता- अज्ञेय

हिरोशिमा की ऊम वर्षा के परिप्रेक्ष्य में अज्ञेय की लिखी कविता है हिरोशिमा। एक दिन हिरोशिमा में अचानक एक सूरज निकला था, यह सूरज पूर्व दिशा में उदित होने के बजाय नगर के बीचों-बीत उदित हुआ था। दशों दिशाओं में सूरज के किरण फैल गये। इससे मानव की छायाएँ दिशाहीन होकर दौडने लगी।

कवि एटम बम की तुलना सूरज से करते हैं। इस सूरज की खासियत है कि यह तो मानव द्वारा रचा हुआ सूरज है। मानव द्वारा रचा इस सूरज ने मानव को भाप में परिवर्तित कर गये। हिरोशिमा के झुलसे हुए पत्थरों और उजडी हुई सडकों पर ये छायाएँ अब भी अंकित है।

मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बनाकर सोख गया
पत्थर पर लिखी हुई य
जली हुई छाया
मानव की साखी है[1]

समय देवता

नई कविता के पुरोक्ता कवि नरेश मेहता ने अपने समय-देवता, संशय की एक रात और महाप्रस्थान जैसी कविताओं में युद्ध की तीव्र निन्दा की। उन्होंने राजनीति की अकर्मण्यता को युद्ध का मूलकारण माना। राजनीतिज्ञ हर समस्याओं को सतही तौर पर देखते है। समस्याओं की तह में जाकर उसका हल करने का कार्य राजनीति नहीं करती। इसकी तलवारों ने पृथ्वी को काट दिया है, इसलिए इसके महलों में विश्वशान्ति असंभव है।

द्वितीय विश्वयुद्ध और भारत विभाजन के भीषणतम परिणामों के बाद लिखी गई कविता है 'समय-देवता'। इस कविता में नरेश मेहता की आगामी सभी रचनाओं के बीज विद्यमान है।

---

1. हिरोशिमा - अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 155

समय-देवता को विश्वमानव पूरी पृथ्वी की यात्रा कराते है, विश्व के सभी विध्वंस, आतंक, और युद्ध की विभीषिका से उसका परिचय कराता है।

समय देवता!
ऐसे समय तुम्हें मेरी पृथ्वी का परिचय प्राप्त हुआ है,
जबकि युद्ध की चीलों के मुँह से
हड्डी की गंध आ रही।
युद्धों के दर्रों में
मानव लुटा हुआ सा
आज एक मैदान चाहता
और चाहता देश-देश की अपनी
कटी हुई नदियों को जोड
खेत में पानी देना[1]

विश्वमानव पथ-प्रदर्शक बन जाता है, समय-देवता को उत्तरी द्रुव से यात्रा करवाना शुरु करता है। प्रारंभ टुण्डा प्रदेश है, वहाँ एक तरह की विचारशून्यता है, परन्तु गार्हस्थ्य सौन्दर्य की कमी नहीं है। रूस पहूँचने के बाद समय को वह चीन पहूँचाता है, जहाँ की धरती युद्ध के गोलों से बाँझ हो गई है।

1. मेरा समर्पित एकांत - नरेश मेहत्ता - पृ. 79

चीन देश के नगर ग्राम-धारी जंगल में
भरा हुआ धुआँ ही धुआँ,
गोबी की मंगल-रेत पर
युद्ध-लाश दुर्गन्ध दे रही।[1]

चीन की भूमि झुलसी हुई, मृतःप्राय दीख पडी है। फिर दोनों जापान पहूँचते हैं। जापान की हिरोशिमा में मनुज की मृत्यू विज्ञान की कब्र में हुई है। वहाँ की हवा में गंधक और फासफरस की पीली लपटें फैल रही है। वहाँ शिशु भी हड्डियों की गुडिया से खेलते हैं। वहाँ मनुज मर गया, सारे नगर जल गए, मन्दिर जीवित।

हिरोशिमा में मनुज मर गया
वही मनुज
जिसके सिर पर यह गगन-मुकुट है,
. . . .
वही सृष्टि-श्री मनुज आज
विज्ञान कब्र में मरा पडा है।[2]

युद्ध इन्सान की नस्लऔर फसल दोनों का विनाश करता है। युद्ध की अग्नि में हरियाली-भरी इस धर्ती की सारी फसलें जल ही है। यहाँ मनुज मर गए और वह खून में लथपथ है। आज धरा पर उसकी हैसियत शरणार्थी से बढकर कूछ भी नहीं।

---

1. मेरा सर्मपित एकांत - नरेश मेहत्ता - पृ. 48
2. वहीं

राजनीति के काँटे प्रत्येक नगर, घर और मानव के सीनों के अन्दर पैठ गए हैं। इसकी हरकतों के कारण पृथ्वी आज फौजी-नक्शा बन गई है।

प्रत्येक नगर, घर, मानव के
सीनों के अन्दर तक पैठ गए हैं,
ये राजनीति के काँटें।
. . ..
वसुन्धरा से धरा बना दी गई आज है
फौजी-नक्शा।[1]

समय-देवता पर प्रसिद्ध आलोचक प्रभाकर क्षेत्रीय का मत बहुत समीचीन लगता है, "कालबोध में यह कृति संसार की जटिल और विषम परिस्थितियों का साक्षात्कार है। नरेश मेहत्ता की यह यात्रा एक तरह से गौतम बुद्ध की धर्म-चक्र प्रवर्तन की आधुनिक यात्रा है, जो प्रकारान्तर से युद्ध से, पारस्परिक घृणा से उत्पन्न तीव्र विनाश का तीव्र प्रतिवाद है। भिन्न-भिन्न देशों की तत्कालीन स्थितियों के प्रति कवि की रचनात्मक प्रतिक्रिया ही उसके दृष्टिकोण को प्रकट करती है। प्रकारान्तर से यह युद्धविहीन विश्व की कामना की कविता है।"[2]

कवि की राय में विश्वशान्ति का स्थापना, शेकस्पियर की वाणी में, आण्डमान की बाँसुरी में, खजूर की उठती बाँहों में, श्रम की

---

1. मेरा समर्पित एकांत - नरेश मेहत्ता - पृ. 69
2. कविता के सौ बरस - प्रभाकर क्षेत्रीय - पृ. 144-145

विजय में, झील के नील फूल में यानी साहित्य, संगीत, कला, सौन्दर्य और प्रकृति के रागात्मक संबन्धों में संभव है।

संशय की एक रात

सार्वजनिक जीवन में मूल्य और मानवी उदात्तताएँ जब शेष बच जाती है, तभी युद्ध शुरू हो जाता है। नरेश मेहत्ता ने अपनी बहुचर्चित काव्यकृति 'संशय की एक रात' में युद्ध की शाश्वत समस्या पर विचार प्रकट किया है। कवि के ही शब्दों में 'संशय की एक रात में युद्ध की अनुपादेयता को केन्द्र बनाकर राम के प्रजाव्यक्तित्व को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है।' कवि का राम देवता नहीं साधारण मानव है, जिसकी आत्मा युद्ध के विनाश पर व्यथित है। राम यह मानने को तैयार नहीं है कि मानव की समस्यायें मात्र युद्ध से सुलझा सकती है।

'संशय की एक रात' पर टिप्पणी करते हुए लक्ष्मीकांत वर्मा ने ज़ाहिर किया है, 'संशय की एक रात में नरेश मेहत्ता की प्रसंगदृष्टि मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आन्तरिक संघर्ष को मानवीय संदर्भ से जोड सकने से ओतप्रोत है। यह दृष्टि ही उन्हें विशिष्ट बनाती है। राम के मन में संघर्ष युद्ध और शान्ति को लेकर है। प्रसंग की दृष्टि से यह संशय एक कालगत परिकल्पना है, जिसके माध्यम से कवि ने अपने युग के मूल्यगत संक्रमण की संदिग्धता व्यक्त की है।"[1]

राम के मन का द्वन्द्व वास्तव में किसी भी साधारण आदमी के मन का द्वन्द्व है। वह खुद को अपने कुल के विनाश का निमित्त

---

1. संशय की एक रात - भूमिका

मानता है, आगे चलकर जन-समुदाय के विनाश का कारण नहीं बनना चाहता है। दशरथ की प्रेतात्मा से उनकी बातचीत होती है तो उन्हें सलाह मिलता है, 'तुम्हें लडना है युद्ध असत्य से।'

राम युद्ध से डरता नहीं। मानव के अन्तर्मन में विराजित श्रेष्ठता को जगाने की प्रतीक्षा करता है। उनका प्रयास 'युद्ध को बचाने के लिए है।' लेकिन वह युद्ध की अनिवार्यता को भी मानता है। उन्हें इस बात पर तनिक भी विश्वास नहीं है कि युद्ध के उपरान्त यहाँ शान्ति बरकरार होगी। अपनी प्रिया प्राप्ति के लिए लडनेवाला युद्ध कभी अनागत भविष्य के युद्ध का कारण हो जाए, ऐसा भय उसके अन्तर्मन को हमेशा झेलता है।

संभव है अनागत युद्ध का कारण बने।
तब अनेकों लंका
अनेकों रावणों का जन्म हो
संभव है
हमारे लौटने के बाद ही
आक्रमणकारी
नयी सैनिक उपनिवेशी योजनाएँ ले
इसी संबन्ध से लौटे।
फिर संघर्ष
फिर संहार
इस ऐतिहासिक विषमता का

कौन-सा प्रतिकार
इस चक्र का कोई अन्त नहीं है अन्त।[1]

राम का ऐसा मानने का कारण है कि युद्ध को रोकने केलिए एक युद्ध, उसे रोकने केलिए अगला युद्ध. . . इसी तरह संसार के इतिहास में युद्ध की अटूट श्रृंखला है। इस ऐतिहासिक विषमता को खत्म करने केलिए राम युद्ध को टालना चाहता है। यह ही नहीं नरेश मेहता हमेशा मानव के अन्तर्मन में विराजमान देवता के जागने की प्रतीक्षा करनेवाला कवि है। इन्सान के अन्तर्मन के इस देवता पर विश्वास होने के कारण राम युद्ध के मार्ग को आपनाने से हिचकते हैं।

युद्ध का परिणाम मानवता की हत्या है, इसलिए किसी न किसी प्रकार इसे रोकना चाहिए। सीताहरण राम की वैयक्तिक समस्या है। अपनी वैयक्तिक समस्या के हल ढूँढने केलिए मासूम जनता की प्राणाहूति राम नहीं चाहता है। लेकिन राज्यहित की रक्षा केलिए उसे युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार करना पडता है। अपनी दूसरी बहुचर्चित कृति 'महाप्रस्थान' की भूमिका में कवि ने व्यक्त किया है - 'राज्य का अर्थ न भोगी न काँक्षी किसी केलिए कुछ नहीं रहता। राज्य यह कैसा प्रतीक विनायक है जो कि अपने संपर्क में आनेवाले को केवल झुलसाता ही है। सभ्यता का प्रतापी ग्रह भी राज्य ही है तथा मारकेश भी।'

समस्त ब्रह्मॉड में पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है जहाँ मानव का अस्तित्व है। मानव ने संसार को देशों में, देश को राज्यों में, राज्य को

1. संशय की एक रात - नरेश मेहत्ता - पृ. 24

प्रान्तों में बांटा है। विभाजन वास्तव में मानव की कला सा हो गया है। इसके बाद उसने दूसरों पर अधीशत्व स्थापित करना शुरू किया है। प्राचीनकाल में सिर्फ राज्य के लिए नहीं, धन, धरती, नारी की प्राप्ति केलिए युद्ध चलता रहा।

व्यक्ति की महत्वाकाँक्षा और युद्ध

प्राचीनकाल के सभी युद्धों का मूल कारण व्यक्ति की महत्वाकाँक्षा थी। राज्य या जन के हित का इनके सम्मुख कोई मूल्य न रहा।

राम-रावण युद्ध का मूल कारण रावण की महत्वाकांक्षा थी। दुसरों की संपत्ति चाहे वह स्त्री हो या न हो पर अधिकार ज़माना युद्ध को बुलावा देने के समान है। यहाँ रावण सीता को हडपकर युद्ध का मूलकारण बन गया। उसने अनीति और अन्याय का जाल बिछा दिया। न्यायहीनता के दौर में खोये हुए मूल्यों को लौटाने केलिए राम ने भरसक प्रयास किया। उसने रावण के पास अनेक शान्तिदूत भेजे। लेकिन इन दूतों को रावण ने वापस भेजा।

कवि का रावण यहाँ एक मिथकीय कल्पना है। कवि के ही शब्दों में अतीत को वर्तमान बनाकर भविष्य के रूप में प्रस्तुत करने का एक प्रयास।' प्रतिदिन संसार में घटनेवाली नृशंसताएं संसार में रावण जैसे स्वेच्छाचारी शासक की याद दिलाती है। अमरिक्का, अफ्गान और इराक के स्वेच्छाचारी शसकों की हरकतें रावण की हरकतें जैसी

हो गयी है। इनके अत्याचार के कारण आज दुनिया महान विपत्ति को झेल रही है। दुनिया का एक कोना भी आज सुरक्षित न रह गया है। इनके अन्याय और बुरी नीतियों का शिकार कभी भी कोई देश हो सकता है। शस्त्रास्त्र और अर्थबल के ज़रिए दूसरों को ये काबू में रखते हैं। ये युद्धकामी मानव नये नये तकनीकों के सहारे युद्धोपयोगी हथियारों का निर्माण करते हैं। ये हथियार संसार की भौगोलिकता को भी बदलने में सक्षम है।

युद्ध - एक मिथ्या तत्व

राम की मान्यता है कि बिना युद्ध के मानव की एकता संभव नहीं होती तो संसार में एक गंभीर समस्या पैदा होती है। हरेक विचारवान व्यक्ति के आगे संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जनता के हाथों में स्वार्थ की तलवार देकर लडेगा तो विश्वास की वंचना होगी। ऐसे युद्ध के परिणामस्वरूप प्राप्त विजय सत्य नहीं, मिथ्या है। युद्ध मिथ्या तत्व है, शास्त्रसम्मत नहीं।

किसी के हाथों सही
पर नियति खोना है. मात्र श्रेष्ठ हाथों की प्रतीति केलिए
इस मिथ्यातत्व के
शास्त्रसम्मत सत्य कहकर मत छलो।

कवि को मानव की शक्ति पर अदम्य विश्वास है। मनुष्य से अधिक उन्नत और संस्पर्शी रचनात्मक बाध्यता सृष्टि में अन्यत्र नहीं।

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहत्ता - पृ. 10-11

जैवीयता की पराकाष्ठा है मनुष्यत्व और इसलिए यह श्रेष्ठ है। लेकिन विधि के अदृश्य हाथ मानव को खिलौना बनाते हैं। सृष्टि की विराटता की उपेक्षा करनेवाला मानव नहीं है। विराट संसार की तुलना में व्यक्ति का व्यक्तित्व नगण्य है। युद्ध टूटे सन्दर्भ की विवशता मात्र नहीं। राम बताते है कि उनकी आत्मा कृष्ण के सदृश्य है। महाभारत युद्ध के समय कृष्ण की आत्मा भी संशय के ग्रस्त रही थी। 'मैं मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ, किन्तु तलवार से या युद्ध से नहीं।' राम यह मानने को तैयार नहीं है कि मानवीय समस्याओं के समाधान केलिए युद्ध ही एकमात्र उपाय है। वे शान्ति के उपाय ढूँढ लेते हैं। राम बताते है कि अगर सीता की प्रप्ति के लिए युद्ध अनिवार्य है तो वह अपने धनुष, बाण, खड्ग आदि भाद्रपदी वर्षा के क्षणों को समर्पित करता है। मुझे ऐसा साम्राज्य नहीं चाहिए जो घायल मनुष्यों के खून पर चरण रखती हुई उनके पास आये। इतने भयंकर युद्ध के परिणाम के रूप में मुझे सीता भी नहीं चाहिए। युद्ध की विभीषिका राम के सामने एक पिशाचिनी के रूप में खडी है।

युद्धविरोधी मानव का नुमाइंदा राम

युद्ध समस्या का एकमात्र समाधान नहीं है। बलपूर्वक कार्यसिद्धि होने से उसका अन्त अच्छा नहीं रह जाता। कोई भी दर्शन या शास्त्र उन्हें सत्य प्रस्थापित नहीं कर सकता। समूह जितना ही शक्तिशाली होगा अवश्य ही वह युद्ध में रुचि लेगा। ऐसा समूह युद्ध के द्वारा ही समस्या का समाधान करना चाहता है।

राम संसार के युद्धविरोधी मानव का नुमाइंदा है। उनकी आत्मा हमेशा युद्धकामी मानव के विरोध में आवाज़ उठाती है। इसलिए अपनी वैयक्तिक समस्या को निपटाने केलिए वह सामूहिक अभिशाप युद्ध को अपनाना नहीं चाहता। लेकिन सीताहरण की समस्या वैयक्तिक धरातल को छोडकर सामाजिक धरातल पर पहूंचती है जबकि छोटे छोटे साधारण और दुर्बल पुरुष जाति-भेद, राग-द्वेष और प्रादेशिकता को भूलकर रावण से युद्ध करने के लिए रामेश्वरम में एकत्र होकर महासेतु का निर्माण करने लगे। मानव के विद्रोह का अद्‌भुत प्रतीक है यह महान बाँध। सीता इन लोगों की छीनी हुई आज़ादी का प्रतीक है। खोई हुई अपनी आज़ादी को पुनः प्राप्त करने के लिए ये कठिन परिश्रम में लग गये। आम आदमी के कठिन परिश्रम और उन्मेष को देखकर उन्हें निश्चय हो गया कि उनका युद्ध सार्वजनिक हित केलिए है।

युद्ध की समस्या को सामाजिक और वैयक्तिक धरातल पर सभी युगों में भोगा जाता रहा है। आधुनिक व्यक्ति घुटन, टूटन, संत्रास और संशय को लेकर संघर्ष कर रहा है। 'संशय की एक रात' का राम समसामयिक युग के संघर्षशील व्यक्ति का प्रतीक है।

महाप्रस्थान

युद्धक्षेत्र की त्रासदी से कुछ भी भिन्न नहीं है युद्धोपरान्त भीकरता। युद्धकामी मानव अनेक इच्छाओं को रखते हुए परस्पर लडते हैं। उनका विचार है कि स्वस्थ सुन्दर समाज अपना निकट है। किन्तु युद्धोपरान्त, स्थिति बिल्कुल बदल जाती है। जिस साध्य की प्राप्ति केलिए भाई-भाई परस्पर टूटते है, वह वश में आने पर मन में एक तरह की वितृष्णा पैदा होती है। इस तरह की विशेष मानसिकता का आकलन करते है नरेश मेहत्ता अपने 'महाप्रस्थान' खण्डकाव्य में।

कुरुक्षेत्र युद्ध के ‾ाद पांडवों को साम्राज्य प्राप्ति हुई। लेकिन मारे हुए बन्धुजनों की चीख-पुकार सदैव उनका पीछा करता रहा। धर्मराज युधिष्ठिर का युद्ध-प्रताडित अन्तर्मन अश्वमेध और राजसूय यज्ञों से भी स्वस्थ और शान्त नहीं हुआ। पत्नी द्रौपदी और भाइयों के साथ वे वन की और प्रस्थान करते हैं।

युद्ध के कारणों को परखते हुए कवि इस निर्णय पर पहूँचते है कि व्यवस्था की अमानवीयता ही युद्ध का कारण बन जाती है। राजा क्रूरताओं और षड्यंत्रों का प्रतीक है। राजनीति विषकन्या की आत्मजा है। संघर्ष, षड्यंत्र और कुचक्रों का सहारा लिए राजा सिंहासन पर आरूढ होता है। ऐसी सत्ता पर अधिकार बनाए रखने केलिए फिर संघर्ष अनिवार्य हो जाता है। सत्ताधारी प्रत्येक व्यक्ति के भीतर विचारशून्यता का अन्धा कारागार निर्मित कर देता है।

एकसाधारण जन
पृथ्वी पर
हल की रेख से
धन-धान्य का भाषा-ग्रन्थ रचता है
जबकि सत्ताधारी
पृथ्वी पर
रथ की रेख से
रक्तस्नात इतिहास लिखता है।
विशाल बान्धवता की नहीं
उसे तो चारों ओर
विद्रोह और षड्यंत्र की गंध आती है।[1]

सत्ताधारी हमेशा अपनी सत्ता की रक्षा चाहते हैं। इसके लिए वे आम आदमी के खून बहाते हैं। युद्धक्षेत्र में जनता की जान, संपत्ति आदि की हानि हो जाती है। युद्धविजयी शासक इतिहास में अमर हो जाता है। दुर्ग, प्रासाद, शिलालेख आदि उनकी अजय्यता के अमर प्रतीक बन जाते हैं। सम्राटों की अमरता के पीछे असंख्य पीडित आदमियों की दर्दभरी कहानियाँ है। इनकी कराहट का स्वर सब अनसुना करते हैं। ये स्मृतिभवन, शिलालेख, आदि व्यक्ति को अमरत्व प्रदान करनेवाले नहीं, क्योंकि जड से जड का प्रतिनिधित्व कभी नहीं हो पाता है।

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहत्ता - पृ. 115

आदमी का स्वत्व किसी भी साम्राज्य से बडा है। हरेक आदमी के भीतर देवता विराजमान है। मनुज के भीतर विराजे इस देवता की प्रतीक्षा में युधिष्ठिर ने कौरवों से सालों तक क्षमा की। द्रौपदी पर हुए अपमान को उसने भीरुत्व के कारण सहन नहीं किया था। वह विवेकी मानव था। सामनेवाला यदि क्रुद्ध होकर पशु समान हो गया तो विवेकी मानव को श्रम से उसके पुनः मनुष्य होने की प्रतीक्षा करनी है। युधिष्ठिर का धर्म करुणा था। किसी भी साम्राज्य या शक्ति के सामने इसे छोडने को वे तैयार नहीं थे। सौ वर्ष के वनवास के बाद कौरवों से राज्यप्राप्त हो जाएगा, ऐसा एक विश्वास उनके मन में भरेगा तो वे कभी भी युद्ध करने को तैयार न होता था।

कवि का युधिष्ठिर आज के स्वार्थपूर्ण शासकों से बिल्कुल भिन्न है। वह मूल्यान्वेषी राजा है। उनकी नीति मानव के स्वत्व की रक्षा है। लेकिन अपनी नीति या धर्म का पालन करने में वह असमर्थ हो गया। क्योंकि मानव जीवन से मूल्यों का हनन होता रहा। युद्ध का मूलकारण भी यही मूल्यहनन है।

मूल्य और मानवी उदात्तताएं
जब सार्वजनिक जीवन में
हो जाती है शेष
तभी होता है युद्ध
युद्ध का घोष[1]

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहत्ता - पृ. 44

मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियाँ युद्ध और आतंक का शिलान्यास करती है। आज युद्ध और आतंक सामाजिकता के पर्याय बन गए हैं। व्यवस्था की अमानवीयता के कारण निरीह आदमी राज्यलोलुप निरंकुश सत्ताधारी का भोज्य बन जाता है। मानवता का रथ किसी अंधे राह की ओर से गुज़र रहे है। इस तरह लूट, खसीट, षड्यंत्र और युद्ध होते रहे तो एक दिन राज्य-व्यवस्था संपूर्ण मानवता के खिलाफ खडी होगी।

युद्ध-त्रासदी की भोक्ता स्त्रियों की दर्दभरी कहानी

कवि ने द्रौपदी, गाँधारी, उत्तरा आदि की चरित्र-सृष्टि द्वारा युद्ध की त्रासदी के भोक्ता स्त्रियों की दर्दनाक कहानी कही है। अन्यायी दुर्योधन द्वारा भरी सभा में द्रौपदी का चीरहरण हुआ।

उस दिन राजा ही नहीं
राज्य स्वयं धृतराष्ट्र बन गया।[1]

बाद में पांडव-पत्नी ने अनेक यातनाओं का सामना किया। युद्ध की ज्वाला में उनके सभी पुत्र स्वाहा हो गए। युद्ध की अमानवीयता देखकर उसका दिल आतंकित हुआ। लेकिन सब कुछ मौन होकर स्वीकार करना पडा। युद्धविजयी पतियों की वितृष्णा, जनता की जडता सब कुछ उसने देखा। अन्त में पतियों के साथ राज्य त्याग करके महाप्रस्थान केलिए निकली। युद्धानन्तर उसे राज्य हासिल हुआ। लेकिन उसका वंश धरा से अप्रत्यक्ष हो गया। हतभाग्या द्रौपदी शरीर से अपने

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहत्ता - पृ. 56

पतियों के साथ चल रही थी। लेकिन उसका मन हत्याओं, चीत्कारों से अ ा भी मुक्ति नहीं पायी हुई थी।

> परन्तु मन
> उन्हीं हत्याओं, चीत्कारों, षड्यंत्रों
> और कूटनीतिज्ञों के बीच
> वैभव की जूठन बीनने में लगा रहा।[1]

कौरवलक्ष्मी गांधारी का दुख भी इससे भिन्न न था। श्मशान सरीखी रणभूमि में जाकर कौरवलक्ष्मी गांधारी ने कृष्ण को अभिशाप वर्तमान युग पर भी पडा है। कौरवमाता ने वर्षों बाद अपनी आँखों की पट्टी खोल दी तो देखा कि

> सौ सौ पुत्र
> शवों में अंग भंग होकर फैले थे
> यहाँ वहाँ
> माँस के गिद्ध ग्रास से[2]

आज प्रतिदिन प्रत्येक राज्य में ऐसी अनेक घटनाएँ होती है, जिससे करोडों मातृहृदय झुलस जाती है। अपने वंश की क्षति देखने में उनका मन अशक्त हो जाता है। कुरुक्षेत्र युद्ध में कौरवों के षड्यंत्र से चक्रव्यूह में पडकर अभिमन्यू की दारुण मृत्यू हुई। उसकी विधवा उत्तरा माँ होनेवाली थी। उसका दारुण क्रन्दन समस्त दिशाओं में गूँज

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहत्ता - पृ. 45
2. वहीं - पृ. 58

रहा था। युद्ध के बाद सारे समाज के सम्मुख उसे एक अभिशापग्रस्त ज़िन्दगी जीनी पडी। द्रौपदी के चीरहरण, गाँधारी के पुत्रवियोग, उत्तरा का वैधव्य, ये सभी व्यवस्था के अन्धेपन के कारण उभरी हुई त्रासदियाँ है।

आज भी स्त्रियाँ राज्य के अन्धेपन के कारण परेशानियाँ भोग रही हैं। अमरिक्का ईरान युद्ध इसकेलिए प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अमरिक्का में ऐसे अनेक 'माफिया' संगठन है जो स्त्रियों का बलात्कार करके दूसरे राज्यों में ले जाते हैं। विवाहित स्त्रियों की बिक्री 3,000 डालर केलिए और यौवनयुक्त सुन्दरी स्त्रियों की बिक्री 10000 डालर केलिए होते हैं। ईराख के माता-पिता, लडकियों को स्कूल भेजने से डरते हैं। यहाँ स्त्रियों के मानवाधिकार, स्वस्थ जीवन और स्वतंत्रता का हनन होता है। माफिया संगठन के डर से वे हर रात काटती है। शेल अक्रमण के भय ये चैन से सो भी नहीं सकती। इस तरह वे एक तरह की पागल मानसिकता से गुज़रती है। हर क्षण वे ऐसा डर महसूस करती है कि कब अपने पति गोली के शिकार होते हैं और बच्चे अनाथ हो जाते हैं। यदि अमरिक्की तानाशाही के विरोध में मारनेवालों की पत्नी या बहन या माँ होती है तो उनके सामने ज़िन्दगी एक प्रश्नचिह्न सी हो जाती है। आजीवनी केलिए उन्हें भीख माँगने से लेकर व्यभिचार तक करना पडता है।

आम आदमी के स्वत्व का अपहरण करके ही सम्राट दीप्तित साम्राज्य का अधिकारी हो जाता है। महाभारत युद्धानन्तर मानवता की आर्तता की जयघोष में युधिष्ठिर राजा बन गया। कटी हुई मानवता के

सिर पर पैर रखकर ही सम्राट सम्राट बन जाता ह। युद्धानन्तर जयी-पराजित सब दरिद्र हो जाते हैं। पराजितों की गरीबी यदि संपत्ति की होती है तो विजयी की दरिद्रता मनः शान्ति की होती है। सब कुछ हासिल हो जाने पर भी पूर्णता से उसे भोगने में वह अनमना हो जाता है।

युद्ध की अमानवीयता और व्यक्तित्व का टूटन

ज्ञानी, विवेकी और स्वतंत्र व्यक्तित्ववान पुरुष का व्यक्तित्व भी युद्ध की अमानवीयता के कारण टूट जाता है। इसका ज्वलन्त मिसाल है द्रोणाचार्य का चरित्र। शिष्यगण का अत्याचार और अभिमन्यू का सामूहिक वध देखने केलिए द्रोणाचार्य विवश हुआ। वे पांडवों और कौरवों के गुरू थे। अपने शिष्यगणों की आपसी लडाई में उन्हें एक पक्ष का साथ लेना पडा और विवेकशील वीरपुरुष होकर भी उन्हें अविवेकी दुर्योधन का साथ देना पडा, अनेक षड्यंत्रों और कुचक्रों में सहयोगी होना पडा। शिष्यों द्वारा प्रियपुत्र अश्वत्थामा की मृत्यू देखने का अभिशाप भी उसे झेलना पडा।

युद्ध समाज का खतरनाक अभिशाप है। इसके उपरान्त समाज में कुलगोत्र-हीन वर्णसंकरता जन्म लेती है। इस ऐतिहासिक कुष्ठता का उत्तरदायी मानव ही है। व्यवस्था जब व्यक्ति से शक्तिसंपन्न हो जाती है, समाज में स्वत्वहीन रह जाती है।

कवि की संकल्पना का समाज ऐसा है जहाँ व्यक्ति और व्यवस्था दोनों अपने को एक दूसरे का पर्याय समझते हैं। तब सारे

समाज में फैला हुआ अंधकार दूर हो जाता हैं। समाज से अस्तित्वहीन हुए मूल्य पुनः लौट आते हैं। काव्य के अन्त में कवि व्यक्त करते है:

एक कथा नहीं
आसन्न घटनाओंवाला
रक्तरंजित एक इतिहास
बल्कि अनन्त त्रासदियोंवाली
एक महागाथा संपन्न हुई
जिसके अन्तिम अधूरे श्लोक-सा
मैं
इस धर्मचक्र का साक्षात् करने को शेष हूँ।[1]

संभाव्य होनेवाली घटनाओं का रक्तरंजित इतिहास है महाभारत कथा। केवल मनोरंजन करनेवाली काल्पनिक कथा नहीं। अनन्त त्रासदियोंवाली इस महागाथा की आवृत्ति आगे कभी नहीं होनी है। कवि-कर्म की सार्थकता इसमें है।

महाप्रस्थान, संशय की एक रात आदि कृतियों में कवि ने संघर्षरत मानवता का चित्रण करने केलिए पौरैणिक कथाओं का सहारा लिया है। युद्ध की त्रासदी से त्रस्त मानवता का चित्र इसमें उभारा गया है। इसमें साम्राज्यवादी शोषण और उपनिवेशवादी मनोवृत्ति का विरोध किया गया है। नरेश मेहत्ता के काव्यों में मानव ही प्रमुख है। उसके अस्तित्वगत संघर्ष को कवि ने प्रायः सभी काव्यों में आवाज़ दी है।

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहत्ता - पृ. 140

युद्ध के खतरनाक परिणामों पर चेतावनी-नागार्जुन और शमशेर की कविताएँ

युद्ध के भयानक और विध्वंसक परिणामों पर नागार्जुन हमें चेतावनी देते हैं। युद्ध के इस तरह ज़ारी रहने पर प्रकृति की हरियाली नष्ट हो जाएगी। पेड-पौधे सूख जाएगा, जहरीला भाप सब कहीं फैल जाएगा। इससे तालाब की मछलियाँ मर जाएगी। सारी पृथ्वी बंजर भूमि बन जाएगी। यहाँ ग्रीष्म के अतिरिक्त कोई भी ऋतुएँ शेष न बचेगी। कवि के शब्द देखिए:

नाम नहीं होगा हरियाली का
पेड-पौधे सूखेंगे
न होगी आस, दूब नहीं दिखेगी
परिणत होंग सारे ही खेत
चटियल मैदानों में
छोडेगी जहरीला फाप
मरी हुई मछलियों वाली तलइया
पटापट बेहोश होंगे ढोर-डंगर
ग्रीष्म के अतिरिक्त
नाम-शेष होंगी बाकी सब ऋतुएँ।[1]

अब हमें जाग रहने का समय है। हमें जागकर आपसी फूट-फाट का इलाज करना है।

1. जागते रहे निरंतर - नागार्जुन - समकालीन सृजन

'अमन का राग' में कवि शमशेर बहुत आदिम, अभिनव और हृदय की सच्ची सुख-शान्ति का गीत गा रहा है।

विश्व की सभी महान संस्कृतियों का महामिलन वे चाहते हैं। इसलिए वे शेक्स्पियर को कालिदास की उज्जैनी में और कालिदास को वैमर के कुंजों में विहारते पाते है। माक्सिम गोर्की को होरी के आँगन में देखते हैं, ताजमहल के साये में राजर्षि कुंग को पाते हैं।।

समस्त संसार कवि केलिए एक जैसा है। अमरिका का लिबर्टी स्टैत्यू और मास्को के लाल तारे के बीच उनमें कोई अन्तर नहीं महसूस होता। कवि केलिए पेंकिंग का स्वर्गीय महल मक्का मदीना से कम पवित्र नहीं। वोल्गा से आए आर्यों का शंखनाद वे काशी में सुन रहे है। नेरूदा दुनिया के शान्ति पोस्ट आफीस का सबसे प्यारा और सच्चा कासिद है।

कवि स्वयं को निराला के राम का एक आँसू मानते है, जिसने तीसरे महायुद्ध के कठिन लौह पर्दों को पाताल में रोक दिया है।

मैं निराला के राम का एक आंसू
जो तीसरे महायुद्ध के कठिन लौह पर्दों को
ऐटमी सूई सा पार कर गया पाताल तक
और वहीं उसको रोक दिया।[1]

आतंक और वर्ग संघर्ष से भरे इस दुनिया में काले और सफेद रंग है, कुछ देशों में लाल रंग के तारे भी चमकते हैं। किन्तु

1. अमन का राग - शमशेर बहादूर सिंह - समकालीन सृजन

दुनिया में हरियाली कहीं नहीं हैं। वर्ग संघर्ष और युद्ध के परिणामस्वरूप दुनिया एक बंजर भूमि बन गयी है।

अब युद्ध को रोकने का समय आया है। युद्ध के नक्शों को छोटे बच्चे काट लेते है, झिलमिली फूलपत्तों की रौशन फानूसें बना रही है। हथियारों का स्टील और लोहा अब रेल में परिवर्तित हो गया है, जो हज़ारों देशों को एक-दूसरे से मिलाती है। युद्ध के नक्शों को काटने के बाद बच्चे खुशी के साथ इनकी और से दौडकर रेल के डिब्बों में बैठ जाती है। रेलगाडी की खिडकियों की और से वे हमारी और झ्रॉंक रहे हैं। नदियों से जाती हुई स्टीमरों में मिठाईयाँ, खिलौने और किताबें भरी हुई है। इससे नदियाँ सार्थक सिद्ध हो गयी है। सुख-भरा यह भविष्य कवि की कोरी कल्पना नहीं, यह तो शान्ति की आँखों में वर्तमान है। कवि बताते हैं-

'यह सुख का भविष्य शान्ति की आँखों में वर्तमान है
इन आँखों से हम सब अपनी उम्मीदों की आँखें सेंक रहे हैं।
ये आँखें हमारे दिल में रौशन और हमाली पूजा का फूल है।
ये आँखें हमारे कानून का सही चमकता हुआ मतलब
और हमारे अधिकारों की ज्योति से भरी शक्ति है।
ये आँखें हमारे माता-पिता की आत्मा और
हमारे बच्चों का दिल है'

1. अमन का राग - शमशेर बहादूर सिंह - समकालीन सृजन

कवि मानते हैं कि इन आँखों में हमारे इतिहास की वाणी और कला का सच्चा सपना निहित है। इनको देख पाना अपने आपको देख पाने के समान है।

युद्ध के खिलाफ संघर्षरत श्रीकान्तवर्मा की कविताएँ

नई कविता के प्रमुख कवि श्रीकान्त वर्मा की काव्यचेतना भी हमेशा युद्ध के खिलाफ संघर्षरत दिखाई देती है। वे इतिहास प्रसिद्ध बर्बर विजेताओं की वीरता के गायक नहीं, उनकी कविताओं में युद्ध से तडपती आम जनता की आवाज़ गूँज उठती है, साथ ही साथ वे युद्धकामी मानव पर भी व्यंग्य करते हैं।

अपनी छोटी-सी कविता 'युद्ध और क्लिप' में युद्ध के सिलसिले अन्तहीन ज़ारी रहने पर कवि आशंका व्यक्त करते हैं। यहाँ संवेदनशून्य, आत्मसीमित, युद्धरत मानव कवि के तीखे व्यंग्य के शिकार हो जाते हैं।

कवि का कोकरोच संसार के प्रत्येक मानव का नुमाइंदा है, वह किसी देश में पडा हुआ है। युद्धकामी मानव के बीच रहने से वह डरता नहीं। युद्ध हो या न हो, यह तो उसकी सोच के परे की बात है। इस पर न तो वह चिन्तित हो उठता है, न व्यथित होता है। लेकिन उसे यह ज़ाहिर है कि उसे लेकर युद्ध कभी नहीं होगा। किसी की गोली खाकर मरने की आशंका भी उसे नहीं।

किसी भी देश की ज़मीन पर पीठ पर
पडा अपनी काकरोच
मज़े में, फिकर नहीं
युद्ध अगर होगा तो होगा
ज़ाहिर है एक कोकरोच को
लेकर नहीं होगा
जिसे हो, उसे हो काकरोच को
युद्ध का डर नहीं।[1]

कवि बताते हैं कि यदि कोई आदमी इस काकरोच के पास से गुज़र जाना चाहते हैं तो जाओ, क्येंकि सौन्दर्य पर उसका मन रमता नहीं। काकरोच देखने में एक क्लिप जैसा लगता है। दुनिया में क्लिपें अनेक है, इसलिए कोई भी सुन्दरी इसे एक क्लिप की परह अपने सिर पर धारण नहीं करती। जैसे क्लिपों की संख्या यहाँ खतम नहीं होती, युद्ध भी यहाँ निरन्तर होता रहता है।

युद्ध चाहे हो या न हो दुनिया में सारी गतिविधियाँ चलती रहती है। सुन्दरियाँ क्लिप लगाकर इधर - उधर चलती है। युद्ध के त्रासद परिणाम, उसकी समाप्ति - ये समस्याएँ उन्हें उलझती नहीं। अर्थात आदमी संवेदनशून्य होकर अपने में सिमट गये हैं।

वास्तव में युद्ध की त्रासदी के भोक्ता दो तरह के होते हैं। प्रत्यक्ष भोक्ता, जो युद्धक्षेत्र में अचानक मर जाते है या घायल हो जाते

1. दिनारंभ - श्रीकान्त वर्मा (1959 से 1966 तक की कविताएँ दिनारंभ में है)

हैं। बाकी सभी इसका परोक्ष भोक्ता है। युद्ध अगर होगा तो होगा, लेकिन अपने को लेकर नहीं होगा। अपने पर इसका असर भी नहीं पडेगा। इसलिए वे निश्चिन्त होकर युद्ध की खबरें सुनते है और आराम से ज़िन्दगी बिताते हैं।

किस की गोली खा
मरने का कोई अंदेशा नहीं
जीता कोई धर्म नहीं
मरना पेशा नहीं।[1]

इस कविता के अनेक आयाम है। युद्ध पर मानजाति की निस्संगता और उनकी संवेदनहीनता पर कवि व्यथित हो उठते हैं। युद्ध को समाप्त करने केलिए यहाँ गंभीर चर्चाएँ नहीं होती। चर्चाएँ निरन्तर होती रहती है, लेकिन शाश्वत शान्ति की राह बन्द रह जाती है। नेतागण मीडिया का आकर्षण केन्द्र् बनना चाहते हैं। इसलिए बीच-बीच में शान्ति-वार्ताओं का आयोजन किया जाता है। किन्तु इससे क्या फायदा? समाज में युद्ध का सिलसिला अन्तहीन ज़ारी रहता है।

1. दिनारंभ - श्रीकान्त वर्मा

शांतिगंधर्व - वीरेन्द्र मिश्र

युद्ध की विकरालता केवल मानव पर नहीं, पशु पक्षियों पर भी आघात पहूँच देती है। आठवें दशक के लोकप्रिय कवि वीरेन्द्र मिश्र ने अपने शान्ति-कपोत का गीत नामक कविता में प्राकृतिक शक्तियों पर भी काबू करनेवाली युद्ध की भीषणता को उभारने की कोशिश की है। उनकी कविताएँ शान्ति-गंधर्व में संगृहीत है। 1942 और 1982 में लिखित युद्धविरोधी ये कविताएँ साम्राज्यवाद से पीडित जनता को स्वर देती है।

अनुभूति की प्रामाणिकता के स्थान पर समय की प्रामाणिकता को गीतिकार अधिक महत्व देते हैं। आदिम युग की ओर आदमी के पुनः लौटने पर कवि विचारवान होते हैं। तितलियों के पंखुरियों पर यहाँ बारूद छिडक पडता है, उजले हंसों के पंख जल उठते है, पानी में कहीं छिपी मछली भी यहाँ सुरक्षित नहीं। क्योंकि यहाँ पानी में अंगार गिरा हुआ है। कामधेनू पर हिंस्रक पशु गरजता है। परिश्रम से पाये धन भी यहाँ सुरक्षित नहीं है। संस्कृति का मंगल-कलश टूट-फूट हो गया है। युद्ध की नयी संस्कृति यहाँ जन्म ले रही है।

आतंकवाद का क्रूर हाथ

आतंकवाद पूरे संसार को अपने नियंत्रण में कर चुका है। आतंकवादी लोग पृथ्वी के मानचित्र को बदल दिया है, ये इस मानचित्र पर नियंत्रण पाने केलिए आतंकवादी लोग निरपराध लोगों की खून

बहाते हैं। शान्ति-कपोत नन्हे-पंखों की कसम खाकर इन अपराधियों से बताता है:-

> यो सच्चाई का वक्ष छेदने से
> दीपों पर यों अंगार फेंकने से
> मिलने कभी सिंहासन ईश्वर के।[1]

आतंकवादियों का विचार है कि युद्ध करके उन्हें एक ऐसे राज्य की प्राप्ति हो जाए कि जहाँ स्वर्गसमान सारी सुविधाएँ उपलब्ध हो। दूसरों के खून बहाने में वे अनूठी खुशी महसूस करते हैं। अपने 'अहम' को तुष्ट करने केलिए दूसरे लोगों पर संघर्ष चढाने में वे हिचकते नहीं। ये संसार में मूल्यहीनता के बीज बोते हैं। सबसे पहले मानव मन में मूल्यों की समाप्ति होती है, बाद में मूल्यहीनता समाज की और फैल जाती है। आतंकवादी केवल आदमी का ही नहीं, सत्य, अहिंसा आदि का भी वक्षच्छेदन कर लेते हैं। ये द्वीपों पर अंगार फेंकते है, कन्याओं का अपहरण कर लेते हैं। युद्ध ने इसप्रकार मानव के तन, मन और आत्मा पर भी आघात पहूचाया है। अब आकाश भी इन्सानों से लडने में तैयार हो चुका है।

इस तरह प्रस्तुत कविता में साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ कवि अपनी आवाज़ उठाते हैं। साम्राज्यवृद्धि के लिए वे औरों पर आक्रमण करते हैं। दूसरे देशों के मानचित्र देखकर ये साम्राज्यवादी लालच से भर उठते हैं, किसी भी कीमत पर औरों के तन, मन और

1. शान्ति गन्धर्व - वीरेन्द्र मिश्र - पृ. 19

आत्मा पर आघात पहूँचाकर उसे अपना बनाना चाहते हैं। इनकी कटुनीति का बुरा असर आम आदमी पर पडता है।

मानवजाति के महामिलन का आह्वान

बिछुडे हुए मानवजाति के महामिलन केलिए श्रमवंत बन जाने का आह्वान करते है कवि 'श्रमवंत बनो' (1961) कविता में। मानव की अदम्य शक्ति में वे विश्वास करते हैं। छिन्न-भिन्न हुए मानव-जाति को एकता के सूत्र में बाँधने की क्षमता प्रत्येक मानव में है।

धाराएँ जो विपरीत दिशा में प्रवाहमान
तुम ही मोडोगे उनको सूर्य दिशाओं में।[1]

इस संसार के इतिहास को परखा जाए तो हमें मालुम हो जाता है कि यहाँ युद्ध केलिए अनेक सेतुओं को बाँधे गए है, ये सब आज टूट भी गए है। शासन मिलने केलिए और मुकुट धारण करने केलिए अनेक आदमी यहाँ यूद्धरत थे। वे सब कालसीमा में विलीन हो गए, उनका निशान भी आज न रह गया है।

अनगिनत चक्रवर्ती डूबे
रुक नहीं सका, इतिहासों का धाराप्रवाह
संकल्प भागीरथ का ही उसको मोड सका।[2]

1. शान्ति गन्धर्व - वीरेन्द्र मिश्र - पृ. 20
2. वहीं

कवि आशा करते हैं कि यह महामिलन होना ही है। उसकेलिए हमें सेतुबंध रचना है। हमें मुकुट का धारण करना है। यहाँ मुकुटधारण राज्यशासन के लिए नहीं, बल्कि नदियों और पहाडों में श्रम से क्लान्त आदमियों के महासृजन केलिए है।

खुशी-भरे मन से गाते वक्त यदि कहीं कुछ अशुभ घटनाएँ होती तो, उससे निराश न होना है। बीत गई अशुभ घटनाओं को विस्मृति के गर्त में धकेल देना है और पिछले अभिशापों को भविष्य के वरदानों में बदलना है।

> समवेत गीत के वाणी मुखर निनादोम में
> सिंहासन पर लगती है यदी कूछ धूल
> न व्याकुल हो जाओ
>
> . . . .
>
> पिछले अभिशापों में बदलो
> आनेवाले वरदानों में।[1]

युद्ध केलिए अनेक सेतुबंध यहाँ रचे गए थे, वे सब टूट गए और अधिकार की लालसा से अनेक आदमी यहाँ रणक्षेत्र में लडे, वे सभी मारे गए और उनकी स्मृति मात्र शेष बची है। इसलिए हमें एक नया सेतुबंध रचना है, यह तो युद्ध केलिए नहीं, बिछुडे हुए महामानवों के महामिलन केलिए है। कवि का आशावादी दृष्टिकोण यहाँ द्रष्टव्य है।

1. शान्ति गन्धर्व - वीरेन्द्र मिश्र - पृ. 21

सृष्टिविरोधी युद्धोन्मुख मानव

प्रकृति से बिछुडे हुए मानव उसका नाश करने में लगे हुए है। सृष्टिविरोधी होकर पाषाण काल की ओर वह लौटकर जा रहा है। इस पर वन की आत्मा व्यथित होती है - 'जंगल और युद्धोन्मुख मानव:एक वनकथन' नामक कविता में।

सृष्टि का इतिहास गुज़र गया। अब उसकी प्रतिध्वनि मात्र शेष बची है। अनेक महर्षिगण भी यहाँ से होकर गुज़र गए है। उनके मंत्र-श्लोक अब पत्तों के नीचे दबे पडे है, जो अपने अन्तिम साँस ले रहे हैं।

अनेक राजाएँ वन में मृगया केलिए पधारे, वन के अनेक पशु इनके तोपों के शिकार हुए। जंगल-राजा शेर भी आदमी के साथ शहर आए। प्रदर्शनों में यह लोगों की आँखों की खुशी करने में लग गए। वन की पगडंडी से होकर मानव ने अपना इतिहास रचा था। लेकिन बाद में मानव को देखकर प्रकृति विस्मित हुई। अपने विस्मृत नेत्रों से प्रकृति ने मानव को देखा, उसे लगा कि मानव स्वयं बडा अद्‌भुत है। लेकिन धीरे-धीरे मानव प्रकृति से बिछुड गया। उसके धूल-धूसरित गाँव पधारने केलिए, पत्र-पुष्प स्वीकार करने केलिए, गिरि कानन विचरने के लिए वह तैयार नहीं। वह प्रकृति से लडने केलिए तैयार रह गया है। वह आज मानव नहीं, बल्कि युद्धोन्मुख मानव है।

अब यह किससे कहूँ
कि
मेरे धूल-धूसरित गाँव पधारों
पत्र-पुष्प मेरे स्वीकोरो
नद बनकर हो प्रवाहमान
गिरि कानन विचरो
वाणी के मृदु फूल लुटाओ
जबकि स्वयं तुं
मुझ सा ऊबड-खाबड प्रान जाने केलिए
उठो इस क्षण।[1]

मानव की आपसी लडाई में प्रकृति को बलि चढानी पडी। इस पृथ्वी में अब आदमी अपने मरघट का निर्माण कर चुका है। अब यहाँ के उजले पुष्प गंधविहीन है, ऊँचे वृक्ष पत्रहीन है, पथ छायाविहीन है। निरर्थकता के इस पथ से होकर आदमी आज गुज़र रहे है।

मेरी कुल्ल वनस्पतियों के दीप बुझाकर
मेरी आस्थाओं के दोनों पंख जलाकर
मुझको मेरा वन्य सत्य समझा-समझाकर
पत्रहीन ऊँचे वृक्षों के
गंधहीन उजले पुष्पों के
छायाहीन निरर्थक पथ के वियावान में
अपने साथ लिए जाते हो।[2]

1. शान्ति गन्धर्व - वीरेन्द्र मिश्र - पृ. 25
2. वहीं - पृ. 26

रत्नगर्भा पृथ्वी पर वह कुँडली मारकर बैठ गया है। मानव पृथ्वी का सर्वनाश कर रहे है, स्वयं सबका नाश करने केलिए उद्यत होकर वे मृत्यू के कगार पर खडे हुए है। उसकी नियति आत्महनन की है, नियति का निर्माता भी वही है। बीत गए पाषाणकाल को फिर से वापस आने की आशंका कवि-मन को अशान्त करती है।

रत्नगर्भा के उपनिवेश पर
बैठे तुम कुंडली मार कर
मणि की रक्षा करने को
ध्वंसों की विष-फूत्कार उगलते।
अपने मरघट के निर्माता
आत्महनन के भाग्यविधाता
क्या मेरा पाषाण विगत ही
है मेरा भवितव्य चिरन्तन।[1]

जडमय वस्तुओं को वन चेतनापूर्ण बनाता है। लेकिन युद्धोन्मुख मानव वन के चेतनायुक्त, सौन्दर्यपूर्ण वस्तुओं को भी जड बना देता है। बमविस्फोटों और अणुविकिरणों से मानव, वन की हरियाली को नष्ट कर देते हैं। मानव द्वारा हुए अत्याचारों और कुरीतियों पर वन विलाप करने लगे तो सुनने के लिए कोई भी शेष न बचेगा। अब उसके वनरोदन केवल वह मात्र सुन सकता है। बाद में कवि को यह अपना भ्रम ही लगता है। वन की चिर-समाधि व्यतीत हो गई है। समय के

1. शान्ति गन्धर्व - वीरेन्द्र मिश्र - पृ. 26-27

बीत जाने पर पृथ्वी का अन्त हो जाएगा और तब वन का अस्तित्व ही शेष बचेगा।

तीसरे विश्वयुद्ध की आशंका से भयभीत कवि-मन

प्रथम विश्वयुद्ध और दूसरे विश्वयुद्ध ने दुनिया में सर्वनाश के बीज बो दिए थे। अब तीसरे विश्वयुद्ध की आशंका से कवि-मन भयभीत हुआ। तीसरे विश्वयुद्ध होगा तो खूनी सागर में किनारा ढूँढकर वह थक जाएगा। उसे कहीं भी किनाारा नहीं मिलेगा। सब कहीं महानाश की शंखध्वनि बजेगी। चारों दिशाओं में आग लगेगी। समस्त संसार में अन्धकार फैलेगा और इस अंधकार में दीप बुझेंगे। समस्त संसार में फैले खूनी रंग आस्मान में भी छाएगा, आस्मान लाल रंग का हो जाएगा।

आदमी के अक्रामक हरकतों को देखकर निराशा से चाँद सितारे कहीं डूब जाएँगे। पृथ्वी में सब कहीं आदमी के दर्दभरे चीत्कार उठ जाएगा और इसे सुननेवाला भी हिल जाएगा। भयानक शब्दों से तोप और बम गिर जाएँगे और महानाश से जल-थल और नभ का कोई कोना ही नहीं बच जाएगा। कालान्तर में आनेवाले महाप्रलय में सभी जीव डूब जाएगा। इस विनाश से मानव की रक्षा करने केलिए ईश्वर भी नहीं आएगा।

संसार में ईश्वर का ही नहीं कला और साहित्य का अस्तित्व भी नहीं रहेगा। अब यहाँ आम आदमी के खून और पसीना मात्र शेष

बचेगा। विश्व के इस विनाश के साक्षि के रूप में मानव, सैनिक-पोशाक पहनकर आएगा।

कवि कहते हैं कि युद्धोपरान्त परिचितों को न देखकर बूढे कहीं न कहीं गिर जाएँगे। अब गोधूली की वेला में पशुओं के धूल से भरे घण्टे न बजेगा। क्योंकि गोधूली की वेला में पशुओं के घण्टे की आवाज़ में ग्रामीण संस्कृति की मधुर गूँज थी। ईश्वर पहले ही अस्तित्वहीन हो गये, अब संस्कृति का स्वत्वहीन होना विस्मय की बात नहीं।

> यम के झण्डे के नीचे गूँजेगा आर्तनाद का नारा
> संस्कृति का सर्वनाश होगा, निराशा और अन्धकार चारों
> चरफ फैलेगा।
> त्राही-त्राही के कोलाहल में बज जाएगा संस्कृति का स्वर।

युद्ध की ज्वाला में फँसकर मानव का वंशनाश हो जाएगा। नर नारी अनाथ हो जाएंगे, यहाँ विधवाओं का आर्तनाद गूँज उठेगा और उनकी भीड लग जाएगी। द्रौपदी की रक्षा केलिए कोई कृष्ण न पधारेगा, क्योंकि वह अब कैद में बन्द है। अनाथ बच्चे भूख से तडपकर मरेंगे। युद्धानन्तर माँ और बहनों की लाज बिक जाएगी।

> नर और नारी अनाथ होंगे और
> यहाँ विधवाओं की भीड लगेगी।
> कैदी होंगे कृष्ण कि जिस क्षण चीखेगी द्रौपदी बिचारी
> माँ बहनों की लाज बिकेगी, भूखे बच्चे आह भरेंगे।[2]

1. शान्ति गन्धर्व - वीरेन्द्र मिश्र - पृ. 27
2. वहीं - पृ. 28

युद्धानन्तर यहाँ मानव का अस्तित्व न रह जाएगा। महाभारत काल में द्रौपदी के चीरहरण के समय भगवान कृष्ण वहाँ आकर भरी सभा में हुए अपमान से उसकी रक्षा की। युद्ध के दौरान आधुनिक काल में भी स्त्रियों पर अपमान चलता रहता है। युद्धकामी मानव में माँ बहनों को पहचानने की क्षमता नहीं होती है। अपमान भय के आज स्त्रियाँ कई देशों में पुरुष जैसा पोशाक पहनकर ज़िन्दगी बिताती है। द्रौपदी की रक्षा केलिए कृष्ण पधारे। लेकिन आज भगवान को सबसे पहले कैदी बनाते है, उसके बाद अत्याचार का बोलबाला हो रहा है।

माँ बहनों की लाज को बिकने का, भूख से तडपते बच्चों की कराहट का, भगवान को कैद में डालने का दायित्व केवल मानव को है, उसके अहं को है। मनुष्य अपने अहं के प्रतीक के रूप में अनेक अंबरचुंबी इमारतों का निर्माण करता है। ये सब क्षण-भर में ढह जाएँगे। अत्याचारी शासक-वर्ग की क्रूरताओं का गवाह बनने केलिए यहाँ प्रतिष्ठित माननीय लोग उपस्थित होंगे। लेकिन शान्ति का सबेरा दूर रहेगा। हमें ऐसा लगेगा कि शान्ति निकट है, लेकिन दूसरे क्षण वह दूर ही महसूस होगा। अहिंसा पर आधारित बुद्ध और गाँधी के सपने सिसक सिसक कर रह जाएगा।

इतिहास को न दोहराने की आशा कवि व्यक्त करते हैं। फिर भी उसके दिल में तीसरे विश्वयुद्ध की आशंका धडकती है। वे बताते है कि तीसरे विश्वयुद्ध होगा तो यहाँ की ऋतुएं बंजर हो जाएगी। पृथ्वी एक हवनकुंड बनेगी, जिसमें परमात्मा और देवता भी न रहेंगे।

साहित्य और संगीत शेष न बचेगा। कवि नहीं, तब यहाँ यंत्र गीतिकार रहेगा। रेडियम के प्रदूषण से मुक्त और स्वस्थ वह कहीं बैठकर सुन्दर गीत गाएगा। संसार की सभी प्रवृत्तियाँ यंत्रवत चलेगी।

यंत्रवत स्वचालित सी चल जाएगी बगिया
सचमच अनुभव होगा गीत में बहाये का।[1]

मनुष्य की इन प्रवृत्तियों से पृथ्वी अस्तित्वहीन हो जाएगी। किसी यंत्र के सहारे तब आस्मान के सितारों का गाना सुनेंगे।

हिरोशिमा -सी बनी मातृभूमि

भारतीय मानवता की हरकतों ने अपनी मातृभूमि को हिरोशिमा जैसा बनाया है।

शायद कितने ही हिरोशिमा बने हमारी जन्मस्थली में
फिर से लौटे हिटलर युग की बुझी गुलामी गली-गली में।[2]

हिटलर युग की पुनरावृत्ति के भय से कवि का मन त्रस्त हो जाता है। अगर हिटलर युग पुनः आएगा तो महायुद्ध के खूनी प्रवाह में किनारा न मिलने से हम उलझ जाएँगे। यमुना नदी प्रश्नाकुल होकर खडी होगी, वह पूछेगी कि मुझपर तुमने क्यों शोणित घन बरसा दिया है। हिन्द महासागर इस दशा को देखकर न तो चिन्तित होगा, न प्रश्नाकुल होगा। वह गरजेगा कि महान प्राचीन और विज्ञ संस्कृतिवाले हमने शान्ति को फाँसी लगा दी है।

1. शान्ति गन्धर्व - वीरेन्द्र मिश्र - पृ. 145
2. वहीं - पृ. 146

नदी, समुद्र, वन आदि ईश्वर के अमोल वरदान है। मानव की आपसी लडाई में तुरन्त ही इनका विनाश होता है। इस अभिशाप से मानव को मुक्ति पाना है। कवि आशा करते हैं कि देश-विदेश में अब युद्ध के सैनिक न रहे, बल्कि शान्ति के सैनिक रहे। ये सैनिक ललकार रहे कि शान्ति पताका लेकर आगे चलो।

इतिहास में मानव ने अनेक गलतियाँ की। इतिहास को दोहराना नयी पीढि से किया गया सबसे बडा अभिशाप है। इतिहास की भूलों की पुनरावृत्ति कभी नहीं होनी है। उन्हें कहीं न कहीं धकेलना है।

अमन की बरबादी - आतंकवादियों का मज़ाक

'प्रथम-अणुविस्फोट' नामक कविता में कवि हिरोशिमा के अणु-विस्फोट के खतरनाक परिणामों की ओर संकेत करते हैं।

एशिया महाद्वीप का एक छोटा-सा इलाका है हिरोशिमा। हिरोशिमा में जब पहला एटम बम गिरा, समस्त एशिया भूमि तब कुम्हालाई। यहाँ की जनता ही नहीं, राक्षस भी नए सबेरों से डरते थे। क्योंकि राज्य सीमा में युद्ध का बोलबाला शुरू हो गया था, सामुन्दर में परमाणु परीक्षण होता था। रात की समाप्ति पर आगे क्या होगा, इसका पता किसी को नहीं था।

आज एटम बम और अणु-विस्फोट के रूप में मानवता नये नये खतरों का सामना करता है। आतंकवादियों केलिए अमन-चमन की बरबादी मज़ाक के विषय बन गए है;

अमन-चमन की बरबादी भी क्या मज़ाक है
पतझर के बदले अपना मधुमास न दो
अभी कोरिया, हिन्द चीन में गाँव नए है
जहाँ रक्त में डूब गई तरुणाई थी
उठो कि फिर इतिहास न दुहराया जाय।[1]

कवि वीरेन्द्र मिश्र पुरानी संस्कृति के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं। उसका नाश करनेवाले साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ वे अपने शब्दों के सहारे लडते हैं। विज्ञान की असीम प्रगति के कारण मानव ने सारी सुविधाएँ हासिल की है। लेकिन इससे उसका अस्तित्व खतरे में पडा हुआ है।

संगित, साहित्य, कलाएँ आदि मानव के दिल को चैन और शान्ति प्रदान करते हैं। लेकिन शान्ति की बरबादी यहाँ कुछ लोगों केलिए हस्सी-मज़ाक का विषय है। ईश्वर को कैद में डालकर आदमी संस्कृति का सर्वनाश देख रहे है। युद्ध-क्षेत्र के खूनी रंग आज आकाश में भी बिखर गया है। सर्वनाश से आकाश, पाताल और जल भी बच न पाये है। स्वत्वहीन आदमी के स्वत्व को वापस पाने केलिए हमें सजग होना है। युद्ध और आतंक की समाप्ति होनी है, मनुष्य अपने अहंभरे दिल को कहीं खोना है। ऐसा करने पर स्वत्व की वापसी संभव होगी।

1. शान्ति गन्धर्व - वीरेन्द्र मिश्र - पृ. 46

बाँस का टुकडा - युद्ध के खिलाफ शान्तिकामी कवि की प्रतीक्षारत यात्रा

हिन्दीतर प्रदेश केरल के मशहूर हिन्दी कवि श्री. अरविन्दाक्षन की सृजनात्मक क्षमता की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति 'बाँस का टुकडा' नामक लंबी कविता में हुई है। कवि ने इसमें कृष्ण के चरित्र के प्रबल पक्ष यानी युद्धविरोधी पक्ष को उजागर करने की सराहनीय कोशिश की है।

कृष्ण के बारे में हमेशा हमारी कल्पना गीता के उद्‌घोषक, गोकुल नायक, राधा के प्रेमी या माखन चोर के रूप में होती है। कृष्ण नाम सुनने पर हमारे सामने मुस्कान-भरे चेहरे के साथ एक नटखट, नन्हा-सा बालक उपस्थित होता है। चेहरा उनका मासूम है, माक्खन और दही से भरा हुआ है। परंपरा से देखे जानेवाले इस कृष्ण के चेहरे पर किसी अनसुलझे प्रश्नों का बोझ नहीं है। किन्तु महान प्रतिभाशाली कवि की इस कविता की ओर से गुज़रते वक्त हमारे मन से नटखट चेहरेवाला वह कृष्ण दूर हो जाता है। कवि का कृष्ण आज के युद्धविरोधी बुद्धिजीवि का प्रतिरूप है।

कविता की शुरू में आत्मकथ्य में कवि ने ज़ाहिर किया "कृष्ण के पात्रत्व में हम अपनी बहुत सारी संकल्पनाओं का साक्षात्कार कर सकते हैं। मैं ने कृष्ण के पात्रत्व में उस प्रबल पक्ष को देखा जो उनमें निहित युद्धविरुद्ध दृष्टि है। गीता प्रवचन को भी मनुष्य के यथार्थ की खोज का आख्यान माना गया है।"[1] कवि का कृष्ण हमारे संकल्प

1. बाँस का टुकडा - भूमिका

का कृष्ण नहीं, हमारेलिए चिरपरिचित यदुकुल मोहन कृष्ण नहीं, अर्जुन के सखा, द्रौपदी का रक्षक और गोपियों का चीरहरण करनेवाला भी नहीं। वे ऐसा कृष्ण है जिसकी अन्तरात्मा युद्ध के खिलाफ लडती है, युद्ध को रोकने केलिए अपने को समर्पण कर देते है। उसकी जीवन यात्रा ही वास्तव में युद्ध के विरोध में है। लगातार उनका मन युद्ध से लडता रहता है।

अब युद्ध मेरी दहलीज पर आ खडा है
. . . .
मुझे सन्धि केलिए जाना है
मेरेलिए यह सन्धि नहीं,
मेरी अपनी यात्रा है
लगातार मैं युद्ध से लडता रहा।[1]

अपनी दहलीज पर युद्ध की नृशंसता को अनुभव करनेवाला कृष्ण अपनी सारथी के साथ संधि यात्रा केलिए निकलता है। युद्ध से लडकर युद्ध के कारागार से युद्धविहीनता का एक फूल खोजना उनका लक्ष्य है। अनैतिकता के आतंक के बीच में से आस्वादनीयता की सुगंध का अनमोल क्षण वे ढूँढते है। अमानवीय हरकतों रूपी चट्टानों के बीच से सहज क्षणों का मन्द मधुर प्रवाह पहचानने की तीव्र कोशिश करते हैं।

1. बाँस का टुकडा - अरविन्दाक्षन - पृ. 16

युद्ध से लडने उसे जाना था
युद्ध के जंगल में उसे घुसना था
युद्ध के तहखानों में उसे ढूँढना था
युद्धविहीनता का एक फूल
. . . .
अनैतिकता के आतंक के बीच उसे परिभाषित करना था
आस्वादनीयता की सुगंध का एक अनमोल क्षण
अमानवीयता की चट्टानों के मध्य उसे पहचानना था
सहज क्षणों का मन्द मधुर प्रवाह।[1]

युद्धक्षेत्र की ओर से संधि केलिए गुज़रते वक्त कृष्ण की आँखें युद्ध से बेचैन और शासकों से वंचित हताश जनता पर पडती है। उनसे वे आशीर्वाद माँगते हैं। अपनी यात्रा को वे उनकेलिए समर्पित करते हैं।

ये निरीह, निरालंब आदमी राजमहल के पास रहते है। शस्त्रों के प्रयोग से युद्ध के नये नये तरीकों से वे एकदम अपरिचित है। किन्तु शासक वर्ग के न्याय-अन्याय के तर्क के बीच वे अनजाने ही पड जाते हैं। इनके सपने एकदम बरबाद हो जाते है। इनके दुख से साक्षात्कार करने केलिए और इनके सपनों को खोजने केलिए कृष्ण की आत्मा तडप उठती है।

1. बाँस का टुकडा - अरविन्दाक्षन - पृ. 17

कवि का कृष्ण पांडवों का दूत नहीं, युद्ध की त्रासदी से कराहती बैचैन आम आदमी का दूत है। नदियों को, आकाश को, बादलों की किलकारियों को नष्ट न होने देना है। उनकेलिए वे कौरवों से जीवनदान माँगने कोलिए उद्यत है। कृष्ण की यात्रा इसकेलिए है। वे बताते हैं;

मैं जीवनदान माँगूँगा
सुयोधन के आगे हाथ पसारकर
मैं जीवनदान माँगूँगा
मैं इस प्रकृति को माँगूँगा
इन नदीयों को
इस आकाश को
सफेद बादलों की किलकारियों को
मैं जीवनदान माँगूँगा।[1]

युद्ध में सर्वनाश का सामना करनेवाली प्रकृति, गन्दगी से भरी हुई नदी और जहरीली वायू से भरा हुआ आकाश - ये सब देखकर कवि की आत्मा व्यथित हो उठती है। प्रकृती की अनुपम सुन्दरता को और पृथ्वी की जीवन्तता को वापस लाने केलिए वे उद्यत है।

हस्तिनपुर के राजमहल में आये कृष्ण समझते हैं कि मात्र धृतराष्ट्र नहीं, पूरा राजमहल अंधापन में डूबा हुआ है। धृतराष्ट्र आँखों

1. बाँस का टुकडा - अरविन्दाक्षन - पृ. 19

का अंधा है, विचार और मोह का भी। राजमहल के सारे लोग एक दूसरे से टकराते है, उनकी विचारधारा में, दृष्टिकोण में अंधेरा छाया हुआ है। उनकी आँखें खोलना मुश्किल सा लगता है। अन्याय, अनीति, क्रोध, मोह और भ्रष्टचार का अंधेरा सारे महल में फैला हुआ है।

अधिकार पाने की इच्छा ही मनुष्य को उन्मत्त बना देती है। सिंहासन एक हो, चाहनेवाले असंख्य हो उसे पाने केलिए युद्ध की अनिवार्यता महसूस होती है। अधिकार मोह से उन्मत्त शासक आपस में लडते है ओर हमेशा अस्त्र चमकाते रहते हैं। लडाई में असंख्य निरीह, मासूम जनता की मृत्यू होती है, असत्य और अनैतिकता का व्यापन होता है। अतः कवि का कथन है,

> सिंहासन का भूगोल कुरुक्षेत्र रचता है
> सिंहासन का भूगोल शस्त्र चमकाता है
> सिंहासन का भूगोल अस्त्र चमकाता है।[1]

हमारे इतिहास की गोता लगाते तो हम समझते हैं कि विश्व भर में युद्ध के नाम पर जो सर्वनाश हुए है, उसके कारणों में मुख्य सत्ता का मोह है। सत्ता की नशा में आनेवाले शासक अपने हथियार चमकाते है, दूसरों पर हमला करने के लिए हमेशा तैयार हो उठते हैं। युद्ध क्षेत्र से काफी दूर स्थित मासूम जनता इनकी अमानवीयता के शिकार हो जाती है। विस्मय की बात है कि शासकों की रणनीति के बारे में ये

1. बाँस का टुकडा - अरविन्दाक्षन - पृ. 58

अनभिज्ञ है। बम, तोप जैसे हथियारों से वे बेवाकिफ है। किन्तु युद्ध के दौरान इन शस्त्रों का सर्वाधिक प्रयोग इन पर पड जाता है।

कवि अनुभव करता है कि कुरुवंशी और पांडुपुत्रों के बीच मैत्री आसान है, लेकिन अधिकार और स्वत्व के बीच यह कभी भी न हो सकता है। कौरवों और पांडवों के बीच का रिश्ता खून का रिश्ता है, खूनी रिश्तों में दरारें डालने में सत्ता की कूटनीति हमेशा काबिल हो जाती है।

युद्ध में होनेवाली मृत्यू को कवि मृत्यू नहीं स्वीकार करते है। यह हमारी अनैतिकता का प्रक्षेपण है। आत्मकथ्य में उनका कहना है 'युद्ध की नृशंसता आज हम अपनी दहलीज पर अनुभव कर सकते है। इसलिए इस नृशंसता के शिकार बने कइयों की मृत्यू हमारे जीवन में एक बहुत बडा फासला छोड जाती है। यह मृत्यू नहीं, हमारी अनैतिकता का ही प्रक्षेपण है।' समाज में जब जीवन के महान मूल्य अस्तव्यस्त हो जाते है, तब अनैतिकता का व्यापन होता है। इस अनैतिकता का प्रक्षेपण युद्ध के ज़रिए होता है। युद्ध संबन्धी सभी हरकतों में इस अनैतिकता को देखा जाता है।

महाभारत काल में अनैतिकता का व्यापक मात्रा में प्रचलन था, उसी अनैतिकता का सिलसिला आज भी ज़ारी है। आधुनिक युद्धोन्मुख मानव में जो अनैतिक हरकतें देखी जाती है, उनमें पुरानी हरकतों का प्रतिबिंब नज़र आता है।

युद्ध को कवि अनिश्छित पर्व की संज्ञा से अभिहित करते है। इसकी अनिश्छितता इसलिए है कि युद्ध कितने दिनों तक ज़ारी रहेगा, उसमें कितनों की जान खो जाएगी, इन बातों का निश्चय किसी को भी नहीं। महावृक्ष के समान युद्धरूपी पर्व अनिश्चित फैला हुआ है।

महावृक्षों के नीचे हम अक्सर सुन्दर छाया की शीतलिमा महसूस करते हैं। लेकिन युद्धरूपी इस महावृक्ष के नीचे छाया के बदले महाताप है, अग्नि की अजस्र धाराएँ है।

अनिश्चित पर्व के महावृक्ष के नीचे
छाया के बदले महाताप है।
यह क्षत्रियों का पर्व नहीं
यह वनमानुषों का पर्व है।[1]

युद्ध की अग्नि सब कहीं फैलकर पृथ्वी को झुलस देती है। इसके ताप से कोई भी बच नहीं पाते हैं। बूढे, औरतें, निरीह बच्चे - सब इसके ताप से झुलस जाते है। इनमें कुछ के शरीर अग्नि से झुलस जाते है तो कुछ का मन ही अग्नि-सा तप जाता है।

कवि देख रहे हैं कि युद्ध जंगलों में फैल रहा है। अधिकार के विषैले पौधे सब कहीं उग आये है। गुफाएँ राजमहलों में परिवर्तित हो गई है, कठोर शिलाएँ सिंहासन का रूप धारण कर चुकी है, वृक्षों की हरी-भरी छायाएँ काले रंग में बदल गयी है। इन सबको बचाने की

1. बाँस का टुकडा - अरविन्दाक्षन - पृ. 24

आकाँक्षा उसमें भरी हुई है। इस केलिए उसे शस्त्रों की ज़रूरत है। शस्त्रों को अपनाने के बारे में वे सोच रहे हैं। कृष्ण को लगता है कि शस्त्रें महानगरों की देन है। महानगरों में घुसते ही आदमी डरने लगता है, गिडगिडाने लगता है, वहाँ उनका स्वागत शस्त्रयुक्त आदमी करता है। फिर वह भी महानगर के शस्त्रागार का हिस्सा बन जाता है। अतः महानगर में घुसते ही आदमी कुत्ते में परिणत हो जाता है। महानगर अपने कुत्तों और भेडियों के साथ शस्त्रागार को भी पाल रहा है।

आज आतंकवाद का फैलाव विश्व-भर हो रहा है। शस्त्र-व्यापार एक व्यवसाय सा हो गया है। संसार का इतिहास ही युद्धों का इतिहास मालूम हो जाता है। युद्ध को रोकने केलिए यहाँ महत्वपूर्ण अनेक संगठन भी हुए। लेकिन युद्ध का सिलसिला यहाँ ज़ारी रहता है। युद्ध को रोकने की इसी असमर्थता के पीछे शस्त्र व्यापारियों की साजिश काम करती है। यदि युद्ध की समाप्ति हो जाय तो उनका व्यवसाय का भविष्य क्या हो जाएगा? संसार में अशान्ति को कायम करते ही वे दुनिया में अपनी बाज़ार को बरकरार रहते हैं।

नदियों और समुद्रों की शीतलिमा को वापस लाने केलिए, युद्ध से हताश स्वजनों की रक्षा करने केलिए कृष्ण शस्त्र चाहते हैं। इसलिए वे एक ही समय शस्त्रों से प्रेम करते हैं, नफरत भी।

युद्ध-क्षेत्र में हमेशा पुरुषों का वर्चस्व बना रहता है। स्त्रियाँ अक्सर युद्धक्षेत्र से बाहर रहती है। लेकिन युद्ध की त्रासदी ज़्यादा से ज़्यादा मात्रा में स्त्रियों को ही भोगनी पडती है। पुरुष स्त्री को एक

व्यक्ति नहीं, जिस्म मानता है। इसलिए युद्धभूमि में और उसके बाहर स्त्री का मान हमेशा लूटा जाता है, वे बलात्कार के शिकार हो जाती है। यहाँ कवि की चेतना युद्धक्षेत्र में तडपती, चिल्लाती स्त्रियों के साथ कराह उठती है। युद्धक्षेत्र में प्रलाप करती गाँधारी की आवाज़ कृष्ण को एक अनाथ माता का क्रन्दन नहीं लगता, राजमाता के क्रोध का एहसास भी उसे नहीं होता। यह उसे एक स्त्री की आहट लगता है।

वह एक अनाथ माता का प्रलाप नहीं था
वह एक राजमाता का कोप नहीं था
वह एक स्त्री की आह थी
गाँधार की राजकन्या की तपिश थी।[1]

कुरुक्षेत्र के विशाल मरुस्थल में जमी हुई महिलाओं का मन एकदम बर्फ सा ठंडा था। अपनी सारी आशा-आकाँक्षाओं को खोकर ही वे वहाँ बैठी हुई है। इनमें पति की मृत्यू में विलाप करनेवाली विधवाएँ है, पुत्रों को खोनेवाली माताएँ है, पिता की मृत्यू पर रोनेवाले बच्चे भी है। उनका भविष्य ही अस्तित्वहीन रह गया है। लेकिन मन का वह ठंडापन उनके अन्तर्मन को छूते नहीं। उनके अन्तर्मन में चिनगारियाँ है-

महिलाओं का झुंड
श्मशान की रेखा के पास एकदम बर्फ सा ठंडा था।
पर वह जलती राख है
चिनगारी है।

1. बाँस का टुकडा - अरविन्दाक्षन - पृ. 12
2. वहीं - पृ. 11

युद्ध विजय के बाद भी कृष्ण उदास, भावहीन और अन्यमनस्क नज़र आये। क्योंकि वे पांडवों का पक्षधर नहीं था, कौरवों के पक्ष में भी नहीं था। उनकी आत्मा युद्ध के खिलाफ थी। युद्ध को टालने में अपने को असमर्थ पाकर वे बहुत खिन्न उठे।

कवि की मौलिकता की पहचान कर्ण की चरित्र सृष्टि में है। कर्ण का चरित्र कृष्ण के बिल्कुल विपरीत है। कर्ण अपनी ज़िन्दगी युद्ध के जंगल में बिता रहा है। समझौते केलिए जब कृष्ण कर्ण के सामने पहूँचता हे, वह बताता है

मेरा जन्म ही युद्ध केलिए हुआ है
रोज़ मैं युद्धक्षेत्र का होकर जीता हूँ।[1]

कर्ण युद्ध की अविराम यात्रा है। उसके सारे सपनों को युद्ध ने तोड डाला, सपनों ने उन्हें भी तोडा। युद्ध को उसने स्वीकार किया। मातृस्नेह से और माँ की दूध से वह वंचित हुआ था। लेकिन युद्ध ने उसे पिलाया। अतः उसका जीवन युद्ध की अविराम यात्रा बन गया।

सपनों ने उन्हें तोडा
युद्ध ने उसे सँवारा
उसे स्तन का वह कण नहीं मिला
उसे युद्ध ने पिलाया
वह युद्ध की अविराम यात्रा है।[2]

1. बाँस का टुकडा - अरविन्दाक्षन - पृ. 35
2. वहीं

इस अविराम यात्रा में बादलों की सुन्दरता पर, पेडों की हरियाली पर, नदियों के अविराम प्रवाह पर उनकी नज़र नहीं पडी।

कृष्ण गाँव में पले-बढे। कलियों और फूलों के बीच वृन्दावन में उनका बचपन बीता था। कृष्ण केलिए उनकी बाँसुरी अपना सब कुछ था। वह उसके जीवन के राग भावों का प्रतीक था। उसकी अपनी अभिव्यक्ति थी। जब कभी बाँसुरी से मनमोहक आवाज़ निकलती है, कोई यह सोचता तक नहीं है कि बाँसुरी काठ का एक छोटा टुकडा है। इसकी सुरीली आवाज़ में हम अपने आपको भूल देते थे। प्रेमविहीन, युद्धोन्मुख मानव की हरकतें देखकर कृष्ण की बाँसुरी के छेद दूर हो गये, बाँसुरी एकदम गुमसुम हो गयी। अब वह कृष्ण के हाथों में एक सूखा डंडा मात्र है। अनुपम, सुरीली आवाज़वाली बाँसुरी का काठ-परिवर्तन कवि की अनन्य कल्पना है।

बाँस के इस टुकडे ने
एक कुल को लडते देखा
आपस में वार करते देखा।
इसमें से छेद गायब हो गए है,
नाद गुमसुम हो गया है
राग विलीन हो गया है
अब यह बाँस का टुकडा है।[1]

1. बाँस का टुकडा - अरविन्दाक्षन - पृ. 10

रक्त के स्थान पर रंग बिखेरकर अनिश्चित पर्व को सचमुच में पर्व बनाने का कृष्ण का सारा प्रयास विफल रहा। वह कुरुक्षेत्र को गलत भाषा की कृति मानता है। व्याकरणहीन इस कृति में निष्कर्ष का अभाव है। इसलिए इसका अन्त कभी भी न हो सकता है।

अपनी माता का भी बलात्कार करने केलिए आतुर एक पीढी का जन्म तुरन्त ही होने की संभावना है। भविष्य की इस विकरालता को कवि प्रतीकात्मक ढंग से दर्शाते हैं। कान्हा की प्रिय राधा एक सपना देख रही है। कृष्ण उसे भोग रहा है, उसके गर्भ में विषाणुओं को भर रहा है। कंचन-सी रंगवाली राधा अचानक काली हो गयी, उसके गर्भ से नुकीले सींगवाले जन्तु पशु उतरने लगे। उन खूँखार जानवरों ने राधा के साथ बलात्कार किया, उसके मातृत्व का हनन किया।

कवि हमेशा हरी-भरी और जीवन्त अनुभूतियों के साथ वसुंधरा को देखना चाहते हैं। अश्वत्थामा का अस्त्र धरती में गिर जाने की संभावना है। इससे धरती की हरियाली नष्ट न होने देना है, पक्षियों की चहचहाहट और नदियों के कलरव को कभी भी खोने न देना है। इसके लिए वे अश्वत्थामा के अस्त्र को रोकने का आह्वान करते हैं।

युद्ध की त्रासदी के भोक्ता आम आदमी बहुत टूट चुके थे। निरालंब होकर वे आगे बढने लगे। कृष्ण इन्हे रोकने की कोशिश में है। अचानक उनकी आँखें एक गाभिन पर पड गयी, वह अत्यन्त बेचैन हो उठा। क्योंकि गाभिन चल नहीं सकती थी, रेंग रही थी। उसका

गर्भपात्र पारदर्शी था। उसे देखकर घबराहट से पक्षियाँ उडने लगी, जानवर भागने लगे।

> व्रणित शिशु को वह ढो रही थी
> वह कटा हुआ मांस का लोथडा
> लटकता हुआ था।[1]

युद्ध की अमानवीयता और नृशंसता को दिखाने में ये पंक्तियाँ बहुत ही सक्षम निकलती है। माँ की कोख में पडे बच्चे भी युद्ध की त्रासदी से मुक्त नहीं है। पृथ्वी में उनकी पैदाइश या तो अंगहीन होकर होता है या बुद्धिहीन।

कृष्ण के व्यक्तित्व में निहित युद्ध विरोधी पक्ष को उजागर करने की सफल कोशिश कवि ने की है। युद्ध से संबन्धित सभी समस्याओं पर वे इसमें प्रकाश डालते हैं। इनमें युद्ध से परेशान आम आदमी की बेचैनी है, नारी की दर्दनाक हालत है, हरियाली ओर प्राकृतिक रमणीयता को खोनेवाली प्रकृति की व्यथा है, भविष्य पीढी की विकराल हरकतों पर कवि मन की आकांक्षाएँ है।

'कठिन रास्ता कविता का' नामक अपने छोटे से लेख में अरविन्दाक्षन जी ने ज़ाहिर किया "कविता की बात अगंभीरता से शुरु करनी चाहिए। अपने को गंभीर तथा अपनी सैद्धान्तिकी को भी अत्यत्त गंभीर घोषित मात्र करने से कविता प्रासंगिक नहीं हो सकती है।

1. बाँस का टुकडा - अरविन्दाक्षन - पृ. 70

कविता के अन्तक्षेत्र को चाहिए कि अपने आसपास के अनिवार्य सरलीकरणों से जूझे।"[1] इस कविता के संबन्ध में उनका यह कथन बिल्कुल समीचीन लगता है। कविता के ज़रिए कवि एक गंभीरतम विषय को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। इसकी अभिव्यक्ति केलिए सभी लोगों केलिए प्यारे कृष्ण को उन्होने चुन लिया है। इससे आशय की स्पष्ट पहूँच पाठकों के अन्तर्मन में ही होती है।

युद्ध की त्रासदी को स्वर देनेवाली तीन कविताएँ

युद्ध-संस्कृति के इस दौर में मानवता की आवाज़ अत्यन्त क्षीण होती जा रही है। असभ्य समाज में घटित होनेवाले युद्ध, इतिहासज्ञों, कवि-गणों और पत्रकारों केलिए आज आजीविका का साधन बन गया है।

अमरिक्का में कहा जाता है - अगर कुत्ता आदमी को काट ले तो यह सुनकर पत्रकार बियर पीना बन्द नहीं करता, लेकिन अगर कोई आदमी कुत्ते को काट ले तो, वे मुँह का कौट छोडकर उठ भागता है.. . . .. इस कथन का यह दृष्टिकोण मूल्य है कि कौन समाचार कहाँ कितने महत्व का समझा जाता है। युद्ध के दौरान दुनिया-भर के पत्रकार अपनी अपनी कालाबाज़ियाँ दिखाते है, भ्रमों के नये नये घेरे पैदा करते हैं। अतः इनकी ईमानदारी पर हम प्रश्नचिह्न लगा सकते हैं।

1. कविता का यथार्थ - सं - डॉ. अरविन्दाक्षन

युद्धोपरान्त

दुनिया के महान इतिहासज्ञों, कवि-गणों और पत्रकारों की ईमानदारी पर कवि सुन्दर चंद ठाकूर प्रश्न करते है, अपनी 'युद्धोपरान्त' नामक कविता में। वागर्थ में प्रकाशित उनकी तीन कविताएँ युद्ध की त्रासदी को स्वर देनेवाली है।

कवि की राय में युद्ध किसी भी सभ्य भाषा के भीतर घटित होते हैं। असभ्य समाज में युद्ध होता है। युद्ध की विभीषिका के भोक्ता मासूम बच्चे और औरतें हैं। युद्धोपरान्त लोगों के घाव तो जल्दी मिट जाएँगे। युद्ध में गिरी इमारतों का पुनर्निर्माण जल्दी ही शुरू हो जाएगा। मृत सैनिकों का अन्तिम संस्कार बडे सम्मान के साथ किया जाएगा, बाद में इनके चित्र दीवार पर शोभायमान हो जाएगा। नये अफसोस के आने पर युद्ध में घायल बच्चों और स्त्रियों का शोक भी धीरे धीरे विलीन हो जाएगा।

युद्धोपरान्त, कवियाँ कविताएँ लिखना शुरु करेंगे, बन्द-कमरे में बैठ कविगण मार्मिक कविताएँ लिखने के यत्न में बार-बार अपने शब्द-ज्ञान पर भाषा का जाल फेंकेंगे।

यहाँ कवि केवल कीर्ति पाने केलिए कविताएँ लिखनेवाले कवियों पर व्यंग्य करता है। घर की चहरदीवारी में बैठ कर लिखनेवाली इन कविताओं में युद्धत्रस्त आदमी की वेदना की सही अभिव्यक्ती नहीं होती। इस तरह के लेखन से कवि अपने कवि-कर्म से पूरी ईमानदारी नहीं निभा सकता है।

पत्रकार युद्ध की नयी नयी खबरों के साथ उपस्थित होंगे। कभी-कभी पत्र की बिक्री बढाने केलिए वे युद्ध संबन्धी अनूठे तथ्यों को प्रस्तुत करेंगे। इतिहासज्ञ पाठ्यपुस्तक केलिए युद्ध के प्रारंभ और अन्त की तिथियाँ निश्चित करेंगे और उसकी ऐतिहासिक भूमिका का विश्लेषण करेंगे।

युद्ध के बाद समाज में दो भिन्न तरीके के लोग नज़र आते है। इनमें घायल, मृत लोग युद्ध का प्रत्यक्ष भोक्ता है। लेकिन युद्ध से बिल्कुल दूर स्थित आदमी है, जिसके मन में युद्धोपरान्त एक विशेष तरह की उत्तेजना भर आएगी। लोग इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे कि इतिहास के तमाम युद्ध शासक वर्ग की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति केलिए लडे गए थे। लेकिन इसे टालने में वे असमर्थ रही। शासक -वर्ग के प्रति इनके मन में घृणा का भाव है। लेकिन लोगों की घृणा हो या न हो अधिकारी इस पर ध्यान न देते थे। क्योंकि चुनाव का समय बीत चुका है। हाल ही में चुनाव न होंगे। किन्तु चुनाव के पहले इन लोगों को अपने वश में लाने में नेतागण कामयाब होंगे।

कवि आशा करते हैं कि समाज में अधिक संवेदनशील मानवता के जाग्रत होने की संभावना है। वे दूसरों के शोक को अपना शोक मानकर प्रलाप करेंगी, और वे ऐसे हो:-

> जिसके पास चीज़ों को देखने का कोई राजनितिक ढंग नहीं था
> और
> जिसने देश या समाज के अनुसार व्यक्तियों में भेदभाव
> करना सीखा था

वही थी जो हाथ थामे मनुष्यों के साथ
वही थी जो घायलों की तीमारदारी केलिए सुबकती हुई
अपनी सांसें युद्ध में झोंकती रही।[1]

नयी सरकार शासन संभाल लेगी, दुधमुंहे बच्चों का आर्तनाद सुनकर, उनकी माताओं की चीख पुकार सुनकर, शहर के विध्वंस को देखकर वे आश्वासन के नये नये वचन देंगे। सरकार वहाँ निश्चिन्त खडी होगी। समय के बीत जाने पर फिर ऐसी घटनाएँ होती रहेगी। लेकिन वास्तविक समस्याएँ सुलझने के बदले उलझी हुई रहेगी।

टैंक और बच्चे

अमरिक्का जैसे ताकतवार देशों ने सारे देशों में एक ऐसी बन्दूकी संस्कृति फैलायी है कि छोटे बच्चे भी बन्दूक और टैंकों के छोटे छोटे नमूनों से खेलने में मज़ाक उठाते है। सुंदरसिंह ठाकुर 'टैंक और बच्चे' नामक कविता में बच्चों की ऐसी मानसिकता पर प्रकाश डालते हैं।

बच्चे हमेशा फौजियों को श्रद्धा की भावना से देखते हैं। वे मानते हैं कि ये समर्थ सैनिक देश की रक्षा करनेवाले है। बच्चे इसलिए फौज़ियों से प्यार करते हैं। ऐसी एक बन्दूकी संस्कृति बच्चों के बीच फैल गई है कि छोटे-छोटे बन्दूकों से खेलना वे बडप्पन मानते हैं। इतना ही नहीं वे फौज़ियों जैसा पोशाक पहनना पसन्द करते हैं।

1. युद्धोपरान्त - सुन्दर चन्द ठाकुर - वागर्थ - अगस्त 2003

कवि भी अपने बचपन में फौज़ियों को बडे प्यार से देखते थे। बचपन की स्मृतियों उन्हें बार बार आती रहती है:

बचपन में राह चलते अक्सर मैं
फौज़ी गाडियों की ओर हाथ हिलाता था
और सैनिकों से अपने अभिवादन का
जवाब पाकर खुश होता था।[1]

कवि देखते हैकि इराकी बच्चे भी अमरिक्की सैनिकों के हाथ से हाथ मिलाते हैं। उनके टैंकों को वे कौतूहल से देखते है और पास जाकर उसे छूना चाहते हैं। बच्चों के मासूम मन में आपसी वैरभावना नहीं रहती। वे यह नहीं जानते है कि अपने हमलावार लोगों से वे मिलते-जुलते हैं। अपने पिता की निर्मम हत्या के पीछे इन लोगों का हाथ है और पहियों के नीचे उन्हीं की मातृभूमि कुचली जा रही है। कवि इन बच्चों को समझाते है कि इन टैंकों से और इन आतंकवादियों से कृपया दूर रहिए। खूनी टैंकों के चालक अंधे हो चुके हैं। ये डरते हैं कि उनकी और दौड आते बच्चों के सीनों में बारूद न भरा हो।

विडंबना की बात है कि ये बच्चे ही बडे होकर सैनिक हो जाते है और आपस में लडते हैं। परिस्थितियों के प्रभाव से बच्चों के मन में संघर्ष के बीज उपजते हैं।

1. टैंक और बच्चे - सुंदर चन्द ठाकुर - वागर्थ - अगस्त 2003

बारहवर्षीय अली इस्माइल की कथा

समाचार पत्र में जब अली इस्माइल का चित्र नज़र आया तब कवि की यादें अपने बचपन की और लौट जाती है। इराक-अमरिक्का युद्ध की त्रासदी का जीवन्त साक्ष्य है अली इस्माइल नामक बारह वर्षीय बालक। युद्ध के दौरान अली के दोनों हाथों को काट डाला गया। माता-पिता और भाई बहन समेत घर के बारह सदस्यों को युद्ध की आग में जला दिया। युद्धोपरान्त केवल बालक ही शेष बचे:

उनके घने बाल साबुत थे और दो बडी बडी आँखें भी
बच गई थी
पर अब इन आँखों में एक अकथनीय
पीडा की परछाई नज़र आती थी।
उसके हों 'अतल से रुक रुककर उठती वेदना
को दबाने के प्रयास में भिंचे रहते थे।[1]

अली का चेहरा बहुत सुन्दर था, चेहरे में थकावट की रेखाएँ चमक पडी हुई थी। गले के नीचे दोनों हाथ पेड की टहनियों की तरह काले पडे हुए थे। डाक्टरों ने इन्हें काटना ही उचित समझा-

वे सिर्फ उसके हाथ नहीं थे, उसका बचपन
अतीत और भविष्य भी थे,

1. बारह वर्षीय अली इस्माइल की कथा - सुन्दर चंद ठाकुर - अगस्त - 2003

उनके कंधों में जब जब कंपन उठता
था जैसे कि वे रह-रहकर अपने हाथों को तलाशते हो।

बालक जब होश में आया, अपने परिवारवालों के बारे में पूछने लगा। उसकी सेवा-शुश्रूषा में लगी नर्स सभी से कहती थी अली को मर जाना चाहिए था। लेकिन अमरिक्का उसे हर हाल पर जीवित रखना चाहता था।

कवि को बचपन की स्मृतियाँ आती है। उसके घर के आँगन में आमरूद का एक पेड था, जिसकी डालें हिलाकर उसके फल वे अपनी बहन को देते थे। दहलीज में खडी माँ तब उससे नीचे उतर आने को कहती थी। बाग्दाद में बहुत ही खजूर के पेड है। इसलिए कवि अपने बचपन की तुलना अली के बचपन से करते हैं।

वह भी अपनी बहन को खुश करने की खातिर
माँ के छिपकर चढता होगा पेड पर
और खजूर तोडते हुए अपनी बहन को बताता होगा
कि उसे वहाँ से कितना बाग्दाद दिखाई देता है
टिमरिस नदी की टमक पर कितनी दूर तक तैरती है
उसकी निगाह।[1]

अली के भिंचे होंठों और कटे हाथोंवाली तस्वीर देखकर सबके मन में उससे दया उमडती है। डाक्टरों ने उसे तसल्ली दी कि

1. बारह वर्षीय अली इस्माइल की कथा - सुन्दर चंद ठाकुर - अगस्त - 2003

नकली ही सही पर उसे दुनिया के सबसे महंगे और सुन्दर हाथ लाकर देंगे। उसकी परेशानी केलिए उत्तरदायी अमरिक्का देशवाला डाक्टर थे वे। बडी संवेदनाभरी नज़रों से डाक्टर अली की सेवा करता है। अली का दायित्व अपने कंधों पर लाने में अमरिक्का के दूसरे लोग भी तैयार हो जाते हैं।

बडे-बडे रईस और मशहूर हस्तियाँ इस
दौड में शामिल है
अमरिक्का उसे माँ बाप की कमी नहीं
महसूस होने देगा।
. . . .
अमरिका डाँलर से खरीदेगा उसकेलिए
नया जीवन
अमरिका उसके आँसू सुखा देगा
अमरिका उसे मशीन बना देगा।[1]

अमरिका की संवेदना कवि को नकली लगती है। अमरिक्का के साम्राज्य की क्रूरता ने बालक को अनाथ बना दिया है, युद्ध की दावाग्नि में घायल होकर उनके दोनों हाथ भी खो गए। बारह वर्षीय उस बालक के प्रति कवि-मन में तीव्र सहानुभूति उमडी हुई है। अमरिका ने उसे एक मशीन बना दिया है। उसका बचपन, अतीत और भविष्य भी युद्ध की अग्नि में नष्ट हो गए है।

1. बारह वर्षीय अली इस्माइल की कथा - सुन्दर चंद ठाकुर - अगस्त - 2003

आज दिन-ब-दिन होनेवाले युद्ध में असंख्य लोग विनाश का सामना करते हैं। युद्धानन्तर समाज में जन्मी पीढी शारीरिक और मानसिक तौर पर अनेक परेशानियाँ भोगती है। अणुबम के संहारक प्रयोग से गाट (कैन्सर) जैसे खतरनाक बीमारियाँ होती हैं। कोख में पडे शिशु भी युद्ध की त्रासदी से सुरक्षित नहीं। मनुज की जीवन व्यवस्था, उनके साँस्कृतिक और कलात्मक जीवन भी युद्ध से अस्त-व्यस्त हो जाते ह ।

युद्ध हमारा सब कुछ छीन लेता है, किसी को कुछ नहीं देता है। पल-भर में युद्ध आदमी को बदल देता है, प्रेम करता हुआ आदमी वहशी बन खून का प्यासा हो जाता हैं, एक बूँद खून केलिए भी वह मतवाला होता है, एक टुकडा ज़मीन केलिए लाखों की जान ले लेता है। अच्छे खासे आदमी को यह पाताल-प्रमत्त रक्त-पिपासू बना देता है। दूसरों की ज़मीन जीतकर वे अपने देश की सीमाएँ बढाने और ऐश्वर्य बढाने के नाम युद्ध का खेल खेलने केलिए उद्यत हो जाते ह ।

युद्ध स्त्रियों की पवित्रता को नष्ट कर देता है, माँ की कोख को खाली बना देता हैं, पत्नियों केलिए पति का साया शेष नहीं बचने देता है। मनुष्यता इससे ध्वस्त हो जाती है, सभ्यता, संस्कृति और कला भी नष्ट होती है। युद्ध ने आज तक किसी को खुशहाली नहीं दी, समृद्धि नहीं दी, शान्ति नहीं दी, अमरता भी नहीं दी। युद्ध ने हमें हिटलर और मुसोलिनी जैसे स्वेच्छाचारी शासकों को दिया है, युद्ध की

ज्वाला में हिरोशिमा और नागसाकी राख में परिणत हो गया है, आधी दुनिया ही इसमें तबाह हुई है।

युद्ध माँ की छाती से बेटे को अलग देता है, पति की बाँहों से पत्नी को खींच लेता है। युद्धोन्माद में फँसकर आदमी शान्ति का हर प्रयास व्यर्थ कर देता हैं। इसके नगाडे बजाते बजाते महानपुरुषों के उपदेश और संतों की वाणी को वह पावों तले रौंद देता हैं। खून और रक्त के प्यासा आदमी इस तरह मानवता का काला इतिहास रचता है। संसार से मानवता की फसल को नष्ट करके यह हमारे अंतर की शान्ति को भंग कर देता है।

संसार-भर की शान्ति और हमारे अंतर की शान्ति को कभी भी नष्ट नहीं होने देनी है। कविता हमें खुद के खिलाफ लडने की ताकत देती है। इस तनाव-भरे माहौल में मूल्यों की रक्षा करके मानवता को बचाने का ब्डा काम साहित्यकार को सौंपा गया है।

मनुष्य हमेशा जीवन को सुन्दर और श्रेष्ठतर रूप में देखना चाहता है। इस इच्छा से प्रेरित होकर वह साहित्य और कलाओं का सृजन करता है। साहित्य मनुष्य का रसास्वादन करता है, उसके जीवन में सरसता लाता है। समाज जब दिग्भ्रमित होता है, उसको सही दिशा दिखाने का काम भी सच्चा साहित्यकार करता है। मूल्यों की रक्षा करने की इच्छा में साहित्य कभी तलवार की मार भी करते हैं। सच्चा साहित्य का लक्ष्य मूल्यों की रक्षा और इसके ज़रिए विश्वबन्धुत्व की स्थापना है।

उपर्युक्त सभी कविताओं की और दृष्टि डाले तो मालूम होता है कि युद्ध संबन्धी कवियों का दृष्टिकोण एक ही है। कोई भी कवि इतिहास-प्रसिद्ध राजा की क्रूरता का यशोगान नहीं करता है। युद्ध के खिलाफ संघर्षरत कवि की आत्मा मानवता की रक्षा करने केलिए उद्यत होती है। समाज का सबसे बडा अभिशाप युद्ध का कारण सामाजिक व्यवस्था का असन्तुलन है। पूरी मानवराशी को पतन की धाई में धकेलनेवाली तामसी शक्तियाँ संसार में जन्म ले रही है। विज्ञान की प्रगति के बावजूद भी मूल्यहीनता के अभाव में यहाँ वैचारिक संकट उभरा हुआ है। परिणामतः आज मानव शान्ति को फांसी देते हुऐ आगे बढ रहे है। युद्ध-संस्कृति के इस युग में मानवता की आवाज़ अत्यधिक क्षीण होती नज़र आती है। इस थकान-भरी आवाज़ में अपने शब्दों से उत्तेजना भराने में उपर्युक्त सभी कविताएँ सफल हुई है।

तीसरा अध्याय

हिन्दी कथासाहित्य में युद्ध की विभीषिका का स्वर

साहित्य सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। जीवन की सभी गतिविधियों का सजीव अंकन इसमें होता है। समसामयिक घटनाओं से निरपेक्ष होकर सच्चा साहित्य का सृजन नहीं हो पाता है। पाश्चात्य और भारतीय काव्यशास्त्री इस तथ्य से हमेशा सहमत रहे हैं कि साहित्यकार को समाज के दलित और पीडित वर्ग का पक्षधर होना चाहिए।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि "जीवन के गंभीरतम समझे जानेवाने प्रश्नों का समाधान साहित्य में खोजना आधुनिक प्रवृत्ति है। इसी प्रवृत्ति के कारण से युद्ध, आतंक, विभाजन आदि से संबन्धित कृतियाँ साहित्य जगत में प्रमुख स्थान हासिल करती है।"[1]

युद्ध विरोधी स्वर - हिन्दी कथा साहित्य में

महायुद्धोत्तर हिन्दी कथा साहित्य की मुख्य विशेषता है मानव के सामाजिक जीवन से निकट संबन्ध। द्वितीय महायुद्ध ने मध्यम वर्ग की ज़िन्दगी को ज़्यादा दुर्बल बना दिया। पूंजीपतीयों केलिए युद्ध

1. मध्यकालीन बोध का स्वरूप-हज़ारी प्रसाद द्विवेदी पृ.53

वरदान सिद्ध हुआ, यह इसलिए है कि युद्ध के समय इन्हें शोषण केलिए खुला मौका मिला। अतः द्वितीय महायुद्धोत्तर साहित्य में मध्यम वर्गीय प्रवृत्तियों का चित्रण सफलतापूर्वक हुआ है।

उपन्यास के क्षेत्र में द्वितीय महायुद्ध के प्रारंभिक काल में सन्नाटे की स्थिति थी। लेकिन कहानी काफी विकसित हो रही थी। इसका एक कारण कहानी की रूपगत विशेषता थी, दूसरा, कहानी का पोषण मुख्यतः पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से ही हुआ है।

हिन्दी के महान कथाकारों ने विभाजन की विभीषिका संबन्धित जितनी कृतियाँ रची है, उससे अपेक्षाकृत कम मात्रा में ही युद्धोपरान्त विदीर्ण मानव की कथाएँ कही है। कारण इसका यह होगा कि विभाजन की विभीषिका को भारतवासी ने जितना भोगा, उतनी युद्ध की त्रासदी को नहीं।

विभाजन भारत का ही हुआ है, भारत के सपुत्र ही विभाजन के उपरान्त परदेशी हो गये हैं। हिन्दी के वरिष्ठ कवि श्री केदारनाथ सिंह ने ठीक ही कहा है "निकट अतीत में जो दो विश्वयुद्ध हुए, उनका प्रत्यक्ष प्रभाव भारत पर नहीं पडा, दूसरे महायुद्ध के समय कल्कत्ता थोडा सा प्रभावित हुआ, अवश्य, पर यह प्रभाव वहाँ तक सिमटा था। परोक्ष प्रभाव अधिक व्यापक पडा। आर्थिक मंदी से महँगाई बढी और साम्राज्यवादी दमनचक्र भी तीव्र हुआ, लेकिन ऐसा नहीं है कि हिन्दी में युद्ध पर साहित्य बिल्कुल लिखा ही नहीं गया।"[1]

1. मेरे समय के शब्द - केदारनाथ सिंह-पृ.135

विभाजन संबन्धी साहित्य में साहित्यकार अपना आँखों देखा और भोगा हुआ यथार्थ ही प्रस्तुत करता है। द्वितीय महायुद्ध की भीषणता का उतना प्रभाव हमारे साहित्यकार पर नहीं पडा है। फिर भी मानव को अंधेरे से प्रकाश की ओर ले जाना अपना लक्ष्य मानकर कुछ साहित्यकारों ने उस विभीषिका की तीव्र अभिव्यक्ति की है। भारत - चीन, ईरान ईराक, भारत - पाक संघर्ष की पृष्ठभूमि को भी साहित्यकारों ने स्वीकार किया है। इनमें चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, अमृतलाल नागर, मुक्तिबोध, मोहन राकेश, महीपसिंह, नासिरा शर्मा, आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

एक ही समस्या - भिन्न भिन्न परिप्रेक्ष्य

युद्ध की समस्या को लेकर जितनी कहानियाँ हिन्दी में रची गयी है, उसका परिप्रेक्ष्य एकदम भिन्न है।

हिन्दी साहित्य में युद्ध विरोध का जो अभियान द्वितीय महायुद्धोत्रर काल में शुरू हुआ, उसकी जडें प्रथम महायुद्ध के बाद लिखे साहित्य में मिलती है। साम्राज्यवाद की युद्धघोर मानसिकता के खिलाफ इस युग में साहित्यकारों ने आवाज़ उठाई। हिन्दी कहानी में इसका प्रथम प्रयास चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी में देखा जाता है। साहित्य-क्षेत्र में इसकी ख्याति एक अनूठी प्रेमकथा के रूप में है, लेकिन इस कहानी का पुनर्वाचन करने पर इसमें प्रस्तुत युद्धविरोधी चेतना से हम प्रभावित होते हैं।

महीपसिंह के 'युद्धमन' में युद्धभूमि से कई मील दूर रहे परिवारवालों की मानसिकता को उजागर किया गया है। युद्ध की समस्या हर समय समाज को मथती है। लडाई के समय वीर सैनिक के परिवारवालों को एक भिन्न मानसिकता से गुज़रना पडता है, फिर भी वे कभी नहीं चाहते हैं कि आगे घर से कोई, सेना में भर्ती न हो जाए। देश की रक्षा वे चाहते है, पर युद्ध से नफरत करते हैं।

युद्धमन की पृष्ठभुमि भारत - पाक संघर्ष है तो एटम बम, कई सेकंडों में कंकाल में परिणत हिरोशिमा नगर की कहानी है। इसमें युद्ध की कई प्रत्यक्ष तस्वीरें है। बमवर्षा में घायल कोबोयाशी पंगु हो जाते है, जीवन और मृत्यु के बीच छटपटाते है। कोबोयाशी की करुण हालत युद्धविरोधी मानसिकता हममें करती है और साथ साथ सभी करुणामय से प्रार्थना करने लगते हैं कि आगे किसी को ऐसी बदकिस्मत न हो जाय।

'क्लाड ईथरली', युद्धकामी मानव की युद्धोपरान्त मानसिकता की कहानी है। क्लाड ईथरली वही अमरिक्कन विमान चालक है, जिसने हिरोशिमा में एटम बम की वर्षा की। युद्ध की त्रासदी उन्हें ऐसी मानसिकता पर पहूँचा देता है कि वह पागलखाने में बन्द हो जाता है।

सैनिक जीवन के अन्तसंघर्ष को स्वर देनेवाली कहानियाँ है चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'वापसी' और मोहन राकेश का 'मिट्टी के रंग।' नासिरा शर्मा की कहानियां किसी एक सीमित दायरे में बन्द नहीं रहती, उसका रचनात्मक कैनवास अत्यन्त व्यापक है, मानव की समस्यायें

सभी देशों में एक सी होती है, इसलिए वे समान संवेदना से भारत, इराक, इरान, अफगान, युगांडा, फिलिस्तीन और युथोपिया के मानव की त्रासद भरी कहानियाँ बताती है।

कब्रिस्तान में लाशों को धोनेवालों की मानसिकता पर आधारित कहानी है 'पहली रात'। इरान इराक की संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी गयी कहानियाँ है-तारीखी सनद और पुल-ए-सरात । 'तीसरा मोर्चा' की पृष्ठभूमि कश्मीर का संघर्ष है, 'ज़ैतून के साये', फिलिस्तीन की कहानी है, 'काला सूरज' यूथोपिया की है, अफगान युद्ध के परिप्रेक्ष्य में लिखी गयी कहानी है 'कागज़ी बादाम'। लेखिका के ही शब्दों में "ये सारी कहानियाँ उस धारा को संवेदना के समन्दर को पकडने की कोशिश है, जो मानवीय है।"[1]

युद्धविरोधी स्वर - 'उसने कहा था' में

हिन्दी कहानी साहित्य में 'उसने कहा था' की पहचान पवित्र और निस्वार्थ प्रेम कहानी के रूप में हुई है। 1915 में सरस्वती में छपी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की इस कहानी के शिल्प और कला पक्ष पर काफी गंभीर चचाएँ हुई है। 'यह कहानी सात दशकों से भी ऊपर के समय में अपनी सार्थकता और प्रासंगिकता बनाए रख सकी, समय और साहित्य के बदलते संदर्भों में भी अपने महत्व का एहसास कराती रही, अपने ताजापन और वैशिष्ट्य को कायम रख सकी तथा अपनी व्याख्या और

1. इफ़्ने मरियम - नासिरा शर्मा-भूमिका

विश्लेषण के लिए आलोचकों को आमंत्रित करती रही, ये सारी बातें इस कहानी की मूल्यवत्ता और गुणवत्ता की तसदीक करती हैं। सचमुच यह सफ्र अपने में बे-मिसाल ही कहा जाएगा।"[1]

इसकी सजीव प्राणवंत भाषा और जीवंत संवादों ने पाठकों के मन को प्रभावित किया था। कहानी की चर्चाओं में अक्सर अनछुआ पक्ष है इसका युद्ध विरोधी पक्ष। इस कहानी के महत्व का यह एक नया और ताज़ा आयाम है।

प्रथम विश्वयुद्ध 1914 में शुरु हो गया था। भारत तब अस्वतंत्र था। लेकिन बिना चाहने पर भी इस पराधीन देश को युद्ध में घसीट लिया गया। अंग्रेज़ों के पक्ष में हमने जर्मनों के खिलाफ लडे। 'उसने कहा था' इसी पहले विश्वयुद्ध के दौरान 1915 में लिखी गई कहानी है। इसमें वर्णित युद्ध 'राम राम, कैसी लडाई है' का संदर्भ यही पहला महायुद्ध है, जिसमें अग्रेज़ फौज के अंग के रूप में अग्रेज़ों के पक्ष से भारतीय सैनिक अपने देश से दूर विदेश में लड रहे थे।"[2]

आम आदमी और हमेशा युद्ध-क्षेत्र में देश की रक्षा में रत सैनिक युद्ध नहीं चाहते हैं। मज़बूरी के कारण उन्हें लडना पडता है। युद्ध की मारामारी उनकी चुनी हुई नहीं है। सैनिकों का कहना है, 'राम राम यह भी कोई लडाई है। दिन रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड

1. डॉ शिवकुमार मिश्र - समकालीन सृजन (जानवरी-मार्च 1988)
2. वहीं

गई। लुधियाने से दस गना जाडा, और मेह और बरफ ऊपर से।.... जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है।'

युद्ध की त्रासदी और उसकी भयानकता की अभिव्यक्ति इन वाक्यों में है। सैनिकों की मज़बूरी है कि किसी भी वातावरण में चाहे वह गरम हो या बर्फीला हो इसका परवाह किए बिना उसे लडना पडता है। 'राम राम कैसी लडाई है', इस एक ही वाक्य से समझ सकते हैं कि लडाई की अमानवीयता कितनी है? ये लोग लडाई चाहते नहीं, फिर भी उन्हें मोर्चा संभालना पडता है, दुश्मन को मारना पडता है। उनकी दुश्मनी उन आदमियों से नहीं जिन्हें वे मारते हैं, पर उनके देश की बुरी नीतियों से है। यहाँ स्थिति ज़्यादा भिन्न् है।

अंग्रेज़ों के गुलाम होने के कारण भारत के सैनिक उनके पक्ष में जर्मनों के विरोध में लडते हैं। 'युद्ध की मारामारी इनकी अपनी चुनी हुई नहीं हैं। वे तो अपने हाथों पकाकार और पेट भर खाकर सोना चाहते हैं - चैन की नींद, जो युद्ध के इस माहौल में उन्हें नसीब नहीं। सैनिक हैं, इसलिए कर्तव्य के नाते पूरी बहादुरी से लडते और मरते हैं, नमक की अदायगी करते हैं, परन्तु उनका मन कहीं अपने देश में ही रमा होता है।'

अपने वतन की मिट्टी में समा लेने की अदम्य लालसा फौज़ियों में है। मातृभूमि और परिवार की यादें उन्हें सताती हैं। अपने ही हाथ से लगाए आम के पेड की छाया उनकी आँखों में हैं। 'मैं तो

बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा, भाई कीरत सिंह की गोदी में मैरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आम के पड की छाया होगी।'

लडाई के विरोध में मानव को हीं, प्रकृति की भी तीव्र प्रतिक्रियाएँ है। प्रकृति की इस प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति गुलेरीजी बहुत ही प्रभावकारी ढंग से करते हैं। बहुत ही 'डा वातावरण था', ड की तीव्रता के कारण दाँत आपस में टकराकर टक-टक बजे रहे थे। इतनी 'डापन में उन्हें इतनी बडी लडाई लडनी पडी है कि हड्डियों-हड्डियों में तो जाडा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाए तो गरमी आ जाए।' 'लडाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी, जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती।

युद्ध के समय घर में फौजियों की स्त्रियाँ तनाव से रहती हैं। इस कहानी में सुबेदारनी के पति और पुत्र दोनों सेना में है। उनके बारे में सोचकर वह ज़्यादा परेशान भी है। क्योंकि बोधा सुबेदारनी का इकलौता बेटा है। उसके बाद चार बच्चे हुए, लेकिन एक भी नहीं बच गया। अपनी सारी परेशानियाँ अब उनके पुत्र पर केन्द्रित है। एकमात्र पुत्र को युद्ध उनसे छीन लेगा, इस परेशानी के कारण लहनासिंह से वह उनको बचाने की प्रार्थना करती है। 'मैंने तेरेको आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फुट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताप्न दिया है। लायलपुर में ज़मीन दी है.... पर सरकार ने हम

तीमियों की एक धंधरिया पलटन क्यों न बना दी जो सुबेदारजी के साथ चसी जात। एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार हुए-एक भी नहीं जिया। अब दोनो जाते हैं। मेरे भाग। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। ऐसे ही इन दोनों को बचाना।'

बचपन में लहना और सुबेदारनी, जो तब एक छोटी सी लडकी थी, अक्सर मिलती थी। एक बार लहना ने लडकी की जान को बचाया। अब वर्षो बाद ये दोनों मिल जाते है। तब सुबेदारनी, जिसके मन में युद्ध में शामिल अपने एकमात्र बेटा और पति को लेकर ज़्यादा तनाव है उसे बचाने की प्रार्थना करती है।

घर से बहुत दूर विदेश में प्राण की बाजी लगानेवाले फौजियों के घरवाले हर पल तनाव से काटते हैं। वे रात-दिन पतियों बेटों के प्राणों के लिए मंदिरों, मस्जिदों में मत्थे टेकती रहती है। “युद्ध कितना अमानवीय होता है, हृदय की कोमल संवेदनाओं को किस प्रकार तार तार कर दिया जाता है, मन की सहज आकाँक्षाओं पर किस प्रकार पानी फेर देता है, यह सब इस कहानी के भीतर गहरे उतर कर साफ-साफ पढा जा सकता है।[1]”

1. डॉ शिवकुमार मिश्र - समकालीन सृजन (जानवरी-मार्च 1988)

इन्सानियत की 'वापसी'

स्वदेश से दूर जाकर देश रक्षा हेतु युद्ध में भाग लेते वक्त, सिपाही लोगों के घरवाले असुरक्षित अवस्था से गुज़रता है। उनका घर उजाड देता है, स्त्रियाँ और बेटियाँ पशु-तुल्य सैनिकों की शारीरिक भूख को मिटाने केलिए विवश होती है। युद्ध क्षेत्र से लौटते सैनिक घरवालों की दुर्दशा देखकर आहत हो जाता है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'वापसी' में युद्ध की इन सभी अमानवीयताओं को एक सैनिक की त्रासदयुक्त ज़िन्दगी के ज़रिए उद्घाटित किया गया है।

द्वितीय महायुद्ध के परिप्रेक्ष्य में लिखी प्रस्तुत कहानी में रूसी सैनिक वासिली की कहानी है। पौधों और जानवरों की बीमारियों का विशेषज्ञ वाासिली महायुद्ध के समय फौज में भाग लेता है। महायुद्ध में जर्मन सेना ने रूस पर घोर विनाश मचाया। निरीह बच्चे, बूढों और स्त्रियों पर उनका मनमाना जुल्म हुआ। कई जर्मनों को बरबाद करके रूसियों ने भी प्रतिशोध ली। वासिली के गाँव, कस्बा, प्रांत सब का सब नासियों के अधिकार में चला गया। पत्नी और बच्चे की खबरें मिलनी बन्द हुई। बीसों बार मौत के मूँह में कूदने पर भी वह कामयाबी से ज़िन्दा बच गया।

लडते लडते वासिली सेना के साथ खारकोव तक पहूँचा। दस दिन की छुट्टी में वह अपना गाँव आया। गाँव पहूँचे तो वासिली ने वहाँ एक खुली जगह में सिसककर रोती हुई औरत को देखा।

वासिली को देखकर उसके रोने की आवाज़ ऊँची हुई। पास ही मैदान में श्वेत बरफ पर दो बच्चों की अधजली काली लाशें देखकर वासिली आतंकित हो उठा। - "छह साल का एक लडका और चार साल की फूल-की कली सी एक लडकी! रोनेवाली इन दोनें बच्चों की माँ है।"

जर्मन सैनिकों ने बच्चों को जलती हुई आग में फेंककर मारा था। उनकी माँ के सामने ही ये पाशवीयता हुई है। माँ बताती है, मैंने अपने कानों से इन मासूम बच्चों की आखिरी चीखें भी सुनीं। बच्चों को आग में फेंकते ही वे जर्मन यहाँ से चले गए। मैं चिल्लाई, कुछ पडोसी इधर-उधर से निकलकर मेरी मदद को भी आए। हम लोगों ने धधकती आग से इन बच्चों को निकाल तो लिया, मगर आप लोग देख ही रहे हैं कि ये किस हालत में हैं।"[1]

माँ के सामने बच्चों की निर्मम हत्या, बच्चों की आखिरी पुकार सुनने पर भी कुछ न कर सकने की माँ की विवशता - ये कितना ही बीभत्स और अविश्सनीय दृश्य होगा। यह युद्ध की अमानवीयता है, यही युद्ध के दहशत है।

अपनी सारी बहादुरी के बावजूद भी वासिली वहाँ न खडा सका। क्यों कि वह तो एक निरीह सैनिक है। देश रक्षा के लिए सेना में भागीदार बना एक मासूम किसान। अपने ही घर पहूँचने पर वासिली समझ लेता है, घर अब नासियों का अड्डा बना हुआ है। जर्मनों से डरकर घरवाले मकान के पीछे एक गड्ढे में रहते हैं।

1. वापसी - चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - पृ. 12

पत्नी और छोटी बेटी से अपनी बडी लडकी लिस्सा के बारे में पूछता है तो, उनके सामने पहले-वाली महाभयंकर और हृदयविदारक दृश्य एक बार फिर उपस्थित होता है। उसने देखा कि सामने उसकी प्यारी बेटी लिस्सा का अधजला शरीर पडा है, जिसे जर्मनवालों ने पिछली रात में बलात्कार करके पट्रोल छिटककर आग लगा दी है।

अपनी प्रिय बेटी के अधजले शरीर देखने पर वासिली को लगता है कि यह तो उसकी महामहिमाशालिनी माँ-रूस माता के हज़ारों-लाखों निरीह बच्चों का प्रतीक है! रूसी माता के विशाल आंगन को एक महाश्मशान के रूप में परिणत देखकर नासियों के विरोध में प्रतिहिंसा से वह जल उठा।

वासिली के जीवन का दूसरा दौर यहाँ शुरू होता है। गाँव से वापस आए वासिली के सामने एक ही लक्ष्य रह जाता है, जर्मनों की तबाही। "वासीली को अब अपनी ज़िन्दगी से एक तरह का मोह हो गया। बहादुर तो अब वह पहले से भी ज़्यादा था, परन्तु पहले के समान मौत के मुँह में नहीं कूदता था। अब वह ज़िन्दा रहना चाहता था और महज़ और अधिक जर्मनों को मारने के लिए ज़िन्दा रहना चाहता था।"[1]

लडकी की मृत्यू ने वासिली के पितृ-हृदय पर घोर आघात पहूँचा, पिता से ज़्यादा एक रूसी नागरिक होने के नाते वे नासियों का दमन करना चाहता है, इसी वजह से बेटी की जली हुई लाश में उसे

1. वापसी - चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - पृ. 16

हज़ारों निरीह बच्चों की परछाइयाँ नज़र आए। वासिली की इच्छापूर्ति के रूप में रूसियों ने फ्राँकफर्ट में बडा आतंक मचाया। 'उसकी आँखों के सामने हज़ारों जर्मन फौजी और जर्मन नागरिक हताहत हो रहे थे। फ्राँकफर्ट का बुरा हाल बना दिया था। वासीली इसी दृश्य के सपने देखता आ रहा है।' फ्राँकफर्ट की धधकती ज्वालाएँ वासिली के संतप्त हृदय पर अत्यधिक शीतलता पहूँचा रही थी। वासिली के मन के प्रतिशोध के आग के सामने ये ज्वालाएँ न के बराबर थी।

प्रतिशोध की शीतलता महसूस करते वक्त फ्राँकफर्ट के वीरान, सुनसान मोहल्ले में उसने किसी निरीह प्राणी के रोने की आवाज़ सुनी। 'लपटों की ऊंची धू-धू ध्वनि की तुलना में यह आवाज़ बहुत ही क्षीण और दुर्बल थी। परन्तु इस आवाज़ में जो गहरी वेदना और अचूक द्रावकता थी, वह उसे बरबस श्राव्य बना देती थी।.... उसे कुछ समझ न आया कि यह किस जन्तु की आवाज़ है। पालतू बिल्ली, इनसान का बच्चा, कोई निरीह परिन्दा - किसीकी भी यह आवाज़ हो सकती है।

नज़दीक की जलती हुई इमारत के तहखाने में एक जर्मन युवति की लाश पडी हुई थी। उसकी नंगी छाती से लगकर ढाई तीन साल की एक फूल-सी कोमल बालिका चिल्ला रही थी। उसकी चिल्लाहट की आवाज़ ही कुछ देर से वासिली को बेचैन बना देती थी। वासिली बच्ची के पास पहूँचकर उसे अपनी गोद में बिठाकर बाहर आ गया। एक पल के लिए वह भूल गया था कि वह अब फ्राँकफर्ट में है।

"अपनी ज़िन्दगी में यह पहला सौभाग्यशाली दिन है, जब मैं नाज़ी दानवों का यह किला उखाड फेंकने का पुण्यकार्य कर रहा हूँ। और चिमगादड़ की तरह चीं-चीं करनेवाली यह ज़रा-सी लडकी भी तो एक जर्मन लडकी है, जिसे मैं नाहक यहाँ उठा लाया हूँ।"[1]

लडकी के जर्मन होने का एहसास होने पर वासिली प्रतिहिंसा की भावना से जल उठा। शैतान जर्मनों की तरह उसने उसे मकानों की धधकती ज्वाला में फेंकना चाहा। लेकिन बच्ची की मासूम हस्सी देखकर उसे अपनी छोटी बच्ची मार्या की याद आई। बच्ची उसे अपना 'पापा' समझकर पापा, पापा पुकारने लगी।

मार्या की याद के साथ साथ उसे अपनी बडी लडकी लिस्सा की भी यादें सताने लगी। उसने सोचा कि एक जर्मन नाज़ी पिशाच ने किस क्रूरता के साथ उस पवित्रतम लडकी की जान ले ली थी, और यह बालिका भी तो किसी जर्मन की ही लडकी है। इस विचार के आने पर उसने बालिका को अपनी छाती से अलग कर दिया। सुनसान और दोनों ओर दहकती हुई सडक पर उसे अकेला छोडकर वासिली तेज़ी के साथ भागा। थोडी देर बालिका उस भयावनी रात के सन्नाटे में वासिली को 'पाप', 'पापा' कहकर पुकारती रही।

1. वापसी - चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - पृ. 18

वासिली आखिर परास्त हो गया। युद्ध के बाद घर पहूँचे वासिली के साथ वह बच्ची भी थी। लोगों से वह बताने लगा कि मेरी लिज़ा रूप बदलकर वापस आई है।"[1]

युद्ध की नृशंसता के कारण मानवीय और अमानवीय पक्षों के बीच वासिली का व्यक्तित्व उलझता रहता है। उसके अन्तर्मन का पशु कभी जाग उठने का प्रयास करता है, पर तुरन्त ही वह वापस जाता है। उसने यह चाहा भी था कि अपने अन्तर की संपूर्ण प्रतिहिंसा और दानवीयता को जगाकर एक क्रूर और हिंसक पशु के रूप में परिवर्तित करे - एक ऐसा क्रूर पशु, जो इस नन्हीं-सी बालिका के यदि टुकडे-टुकडे न कर सके तो कम से कम उन शैतान जर्मनों की तरह उसे जर्मन मकानों की धधकती ज्वाला में तो फेंक सके। किन्तु वासिली कभी भी ऐसा न हो सकता है। क्यों कि उसके अन्तर्मन का मानवीय पक्ष अमानवीय पक्ष से ज़्यादा प्रबल और तीक्ष्ण है। इस कारण जर्मन ब्रच्ची की मासूम हँसी और 'पापा,' 'पापा' पुकार सुनकर अपनी सारी यातनाओं को भूलकर वह मानवता की ओर तथा मानवमूल्यों की ओर लौटता है। अपने मन को काबू में करने से तथा इन्सानी मूल्यों को जगाने से युद्ध और प्रतिशोध के सिलसिले को कुछ ही क्षणों के लिए रोकने में वासिली सफल हो जाता है।

वापसी वासिली के साथ निरीह, मासूम बच्चे की वापसी है, साथ ही प्रतिहिंसा और दानवीयता की भावना से इन्सानियत की ओर वासिली की भी वापसी है।

1. वापसी - चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - पृ. 20

जीवन और मृत्यु के बीच छटपटानेवाले मानव का दस्तावेज़ - एटम बम

हिन्दी के प्रमुख यथार्थवादी कहानीकार है अमृतलाल नागर। मानव जीवन की त्रासद और संघर्षपूर्ण यथार्थ की प्रस्तुति नागरजी की कहानियों में हुई है। 'एटम बम' नामक अपनी छोटी सी कहानी में एटम बम की विभीषिका का सजीव अंकन हुआ है।

इस कहानी में नागरजी ने कोबोयशी नामक जापानी नागरिक की संघर्षपूर्ण ज़िन्दगी को प्रस्तुत किया है। कोबोयशी पच्चीस साल पहले हिरोशिमा पहूँचे थे। बचपन में ही माता पिता की मृत्यु हो जाने के कारण घर का सारा काम उनके कंधों पर आ पडा। इसलिए इच्छा न होने पर भी, घर को संभालने केलिए उसे सेना में भर्ती होना पडा।

महायुद्ध के समय कोबोयाशी अपनी पूर्ण गर्भिणी पत्नी को लेकर अस्पताल पहूँचते है। प्रसववेदना से तडपती पत्नी को डाक्टरों को सौंपकर कोबोयाशी सन्तान की प्रतीक्षा में घडियाँ गिनने लगा। अचानक उसने देखा कि चारों ओर धुएँ के बादल फैल रहे है, सारे मकान गिर रहे हैं, बम के फूटने से सारी धर्ती हिल गयी। कोबोयाशी का सारा शरीर झुलस गया और वह बेहोश होकर नीचे गिर गया। होश में आने पर कानों में धडाके की आवाज़ गूँजने लगी। दिल की धडकन बढ गयी, विषैली हवा के स्पर्श से उसका रोम रोम जलने लगा। पानी की एक बूँद केलिए वह तरसने लगा। आँखों से आँसू निकलकर नीचे

गिरे तो उन आँसुओं को पीकर अपनी प्यास को बुझाने का प्रयास करता है।

कोबोयाशी को अचानक उसकी पत्नी और होनेवोले बच्चे की याद आयी। लडखडाता हुआ आगे बढा तो उसने देखा कि पूरा मकान गिर कर मिट्टी में मिल चुका है। चारों ओर सूनापन था। चीखें मारते हुए वह अस्पताल पहूँचा।

अस्पताल में घायल लोगों की भीड दिखाई पडी थी। इतने में नागसाकी में भी बम की वर्षा हुई थी। अस्पताल मरीज़ों से भर गया, डाक्टर सुसुकी इन मरीज़ों के बीच में रहकर अधिक परेशान हुए। मरीज़ों की दुखभरी आवाज़ों के बीच वे स्वयं खो गये। इन नयी लाशों को हम कहाँ से जीवन प्रदान करेंगे। स्वार्थी मनुष्य अपनी शक्ति का प्रयोग नाश केलिए ही कर रहा है। "इस प्रकार कहकर वे अधिक परेशान हुए। डाक्टर को कर्तव्य से विमुख पाकर नर्स कर्तव्य की याद दिलाती है। अपनी बेचैनी और परेशानी को भूलकर डाक्टर जल्दी ही आपने कर्म में लीन हुए।"[1]

पूरी कहानी में युद्ध और आतंक का वातावरण छाया हुआ है। सैनिक कोबोयाशी युद्ध की सारी परेशानियाँ भोगता है। परिवार को संभालने केलिए उसे सेना में भर्ती होना पडा। वह सेचता है - "मैं ने ऐसा कौन सा अपराध किया था, जिसकी यह सजा मुझे मिल रही है? अमीरों और अफ्सरों को छोडकर कौन ऐसा आदमी था, जो यह लडाई

1. अमृतलाल नागर रचनावली (7) - पृ. 129

चाहता था? दुनिया अगर दुश्मनी निकालती है तो उन लोगों से। हमने उनका क्या बिगाडा था? हमें क्यों मारा गया। प्यास लग रही है, पानी न मिलेगा। ऐसी बुरी मौत मुझे क्यों मिल रही है? मैं ने ऐसा कौन सा अपराध किया था।"[1]

कोबोयाशी की जीवन कथा से यह बिल्कुल सच ही निकल जाता है कि दुनिया में आज बुरे लोगों का राज है। ईश्वर भी फुर्सत आने पर भले आदमियों की उपेक्षा करते हैं। कोबोयाशी सीधा-सादा जीवन बितानेवाला एक भला आदमी है। फिर भी युद्ध ने उनका सब कुछ छीन लिया। युद्ध के दौरान परेशानियाँ भोगनेवाली मासूम जनता का प्रतीक है कोबोयाशी।

युद्ध मनुज के सारे सपनों को क्षण-भर से तोडते है। कोबोयाशी के मन में परिवार और होनेवाले बच्चे के बारे में असंख्य सपने थे। प्रसववेदना से तडपती पूर्ण गर्भिणी पत्नी को साथ लिए वह आस्पताल पहूँचता है। नये बच्चे की रुदन के स्थान पर वह बम फटने की आवाज़ और भागती हुई जनता की चिल्लाहट सुनता है। उनकी आंखों के सामने धुएं के काले बादल छा जाते है। यह करोडों आदमियों के भविष्य पर छाई अनिश्चितता के बादल है।

युद्ध के समय साधारण लोग ज़्यादा परेशानी भोगते है। शासक-वर्ग साम्राज्य-व्याप्ति केलिए या प्रतिशोध की भावना से आतंक का सहारा लेते है, युद्ध करते है। आम जनता की व्यथा और परेशानी

1. अमृतलाल नागर रचनावली (7) - पृ. 129

उनके विचार के परे की बात है। परेशानियां भोगते समय कोबोयाशी सोचता है अमिरों और अफ्सरों को छोडकर कोई भी यह लडाई नहीं चाहता।

युद्ध से हताश, बेबश एक सैनिक का प्रलाप पूरी कहानी में गुँजता रहता है। मरीजों की चिकित्सा करनेवाले डाक्टर भी ज्यादा बेचैन दीख पडते है। वेदना से तडपनेवाले आदमियों की करुण पुकार वे सह न कर सकते हैं। नये मरीज़ के आने की खबर जब नर्स आकर बताती है तो वे पूछते है- इन नये मुर्दे मरीजों के लिए नई ज़िन्दगी कहाँ से लाऊंगा, नर्स? विनाश लोलुप स्वार्थी मनुष्य शक्ति का प्रयोग भी जीवन नष्ट करने केलिए कर रहा है "....फेंक दो उन ज़िन्दा लाशों को, हिरोशिमा की वीरान धर्ती पर! या उन्हे ज़हर दे दो! अस्पताल और डाक्टरों का अब्र दुनिया में काम नहीं रहा।"[1]

डाक्टर के मन में कभी न समाप्त होनेवाला युद्ध का डर छाया रहता है। युद्ध की डरावनी छाया हमेशा उनका पीछा करती है। यह उसे कुछ देर केलिए अकर्मण्य बना देती है। एटम बम की संहारक शक्ति के सामने वह कुछ भी न कर सकेगा, उसका सारा प्रयत्न विफल हो जाएगा, यही उसकी चिन्ता है। अस्पताल की नर्स उसमें आत्मविश्वास जगाती है "एटम की शक्ति से हारकर क्या हम इन्सान और इन्सानियत को चुपचाप मरते हुए देखते रहेंगे"[2].....

1. अमृतलाल नागर रचनावली (7) - पृ. 130
2. वही

कहानी के अन्त में भौतिक क्रूरता पर कर्तव्यपरायण मानवता का विजय वर्णित है। हिरोशिमा शहर के ध्वंसावशेष के बीच, जीवन और मृत्यु के बीच छटपटानेवाले कोबोयाशी की करुण कहानी पाठकों के मन में युद्धविरोधी चेतना को जगाने में पूर्णरूपेण सफल हुई है।

क्लाड ईथर्ली-व्यवस्था की अमानवीयता के खिलाफ गूँजी आवाज़

क्लाड ईथर्ली मुक्तिबोध की विशिष्ट कहानी है। क्लाड ईथर्ली वह अमरिक्कन विमान चालक है, जिसने हिरोशिमा में एटम बम डाला। इस प्रवृत्ति के लिए अमरिक्का की सरकार ने उसे इनाम दिया, और 'वार हिरो' भी घोषित किया। अपनी कारगुज़ारी देखने हिरोशिमा पहूँचे वह नास्तनाबूद हुए शहर के बदरंग और बेमहक को देखकर पश्चात्ताप से भर उठा। "निरपराध जनों के प्रेतों, शवों, लोथों, लाशों को देखकर उसके हृदय में करुणा उमड आई।"[1] आत्मा की आवाज़ सुनकर वह बेचैन होने लगा। उसके मन को ऐसी चिन्ता सताने लगी कि उसने पाप किया है, जघन्य पाप किया है। उसे दण्ड मिलना ही चाहिए। लेकिन अमरिक्का उसे दण्ड देने के लिए तैयार नहीं था।

उसने सरकारी नौकरी छोड दी और घोषित किया कि वह पापी है, उसे दण्ड मिलना चाहिए, उसने निरपराध जनों की हत्या की है, उसे दण्ड दो। ईथर्ली की ये हरकतें अमरिक्का को अजीब लगी और अमरिक्का ने उसे पागलखाने में बन्दी बना दिया।

1. मुक्तिबोध रचनावली (3) - पृ. 175

क्लाड ईथर्ली में व्यवस्था की अमानवीय हरकतों के खिलाफ मुक्तिब्रोध आवाज़ उठाते हैं। जघन्य हत्या और पापाचरण को भी अमरिक्की व्यवस्था पाप नहीं, महान कार्य मानती है, देश-भक्ति मानती है। लेकिन क्लाड ईथर्ली के विचार काफी भिन्न है। चाल साल तक वह पागलखाने में रहा। वहाँ से छूटने पर एक गुण्डे की मदद से उसने सरकार की संस्थाओं में धावा मारने लगा। वह पकडा गया। लेकिन अपने 'प्रख्यात युद्धवीर' को मामूली चोर या उचक्का घोषित करने के लिए अमरिक्का तैयार नहीं था। उस हैसियत की रक्षा के लिए, उसे फिर पागलखाने में डाल दिया।

व्यवस्था की अमानवीयता ने ईथर्ली को पागलखाने में बन्दी बना दिया है। व्यवस्था में इतनी अमानवीयता नज़र आती है कि "जो आदमी आत्मा की आवाज़ ज़रूरत से ज़्यादा सुन करके हमेशा बेचैन रहता है और इस बेचैनी में भीतर के हुक्म का पालन करता है, वह निहायत पागल है। पुराने ज़माने में सन्त हो सकता था। आजकल उसे पागलखाने में डाल दिया जाता है"।

ईथर्ली ने अपनी आत्मा की आवाज़ को ज़्यादा से ज़्यादा सुन ली, हमेशा बैचैन रहा इसलिए सबने उसे पागल घोषत किया। ईथर्ली पागल नहीं है, पर पागलखाने में बन्द है। आध्यात्मिक अशान्ति से तडपता उसका मन हमेशा शान्ति के लिए बेचैन हो उठता है।

1. मुक्तिबोध रचनावली (3) - पृ. 175

प्रतिहिंसा और महावीनाश की परिणति आत्महनन में होती है। पश्चात्ताप और पीडा का एक कभी न सूखनेवाला धाव, व्यक्ति को भीतर ही भीतर खोखला बना रहता है। इस प्रकार का खोखला और सूखा हुआ व्यक्तित्व क्लाड ईथर्ली में नज़र आता है।

पाप और अन्यय का साथ देनेवाला इस अन्याय के बाद कठिन पश्चात्ताप करता है। अन्याय का साथ देने से उनकी आत्मा कराहती है। आधुनिक सभ्यता के नियंता उसकी बेचैनी और कराहट को उसका पागलपन मानते हैं, उसे पागलखाने में डाल देते हैं, जिससे उनके द्वारा किए अन्याय, शोषण, पाप और क्रूरता का बर्बर रूप आवाम के समक्ष प्रकट न हो सके। यह सच वर्तमान समाज या द्वितीय महायुद्ध के ब्राद उपजा सच नहीं है। युग-युगों से आदमी ऐसा है। इस सत्य का उद्घाटन मुक्तिबोध की इस कहानी में हुई है।

युद्धमन - युद्धभूमी से कोसों दूर स्थित आदमी की अन्तर्व्यथा

भारत-पाक संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी गयी महीपसिंह की प्रसिद्ध कहानी है 'युद्धमन'। सेना से रिटयर्ड होकर आये कोहली साहब की मानसिकता को केन्द्र में रहकर पूरी कहानी की बनावट हुई है। कोहली साहब्र एक रिटयर्ड सैनिक है, जिनके बेटे, दामाद और बहुत से नज़दीकी रिश्तेदार सेना में काम करते है। युद्ध के ज़ारी रहने के कारण साहबजी को हर दिन तनाव में रहना पडता है। संवेदना प्रकट करने के लिए आनेवालों से साहबजी घृणा करते हैं।

कोहली साहब के बेटे, दामाद और बहुत से नज़दीकी रिश्तेदार सेना में काम करते हैं। युद्ध ज़ारी रहने के कारण साहबजी को हर दिन तनाव में रहना पडता है। संवेदना प्रकट करने केलिए आये लोगों से वे घृणा करते है। फिर भी वे यह नहीं चाहते है कि अपने घर से कोई आगे सेना में भर्ती न हो जोए। क्योंकि अपना आत्मधैर्य को वे खो नहीं देते है। देश की रक्षा करना एक साहसी जवान का कर्तव्य समझते है।

सेनाओं के बीच में अक्सर युद्ध होता है, विजयी सेना धूम मचाती है, पराजित अपने खेमों में लौट जाते है। सैनिकों के बीच में सिपाहियों और अफसरों की मृत्यु एक मामूली सी घटना हो गयी है। मृत्यु के उपरान्त वीर जवानों को उपाधियाँ प्रदान करते हैं। लेकिन युद्धभूमि से दूर रहनेवाले घरवालों की मानसिकता के बारे में कोई सोचता तक नहीं है। युद्धक्षेत्र गये सैनिकों की जानकारी केलिए परिवारवालों को तनाव - भरे दिन काटना पडता है। यदि ये सैनिक शहीद होगे तो देश केलिए एक वीर सपूत मिलता है, और सैनिकों केलिए परमवीर, महावीर जैसी उपाधियाँ। किन्तु अपने प्रियजनों द्वारा छोडे गये फासले को ये उपाधियाँ कभी भी पूरा न करती है।

साहबजी की बहन गुरमीत का बेटा हरबंश कुछ दिनों के लिए सेना से गायब हो जाता है। आकांक्षा भरे कुछ दिनों को समाप्त करते हुए एक दिन वंशी की चिट्टी आती है कि वह सुरक्षित है। साहबजी के बडे लडके महेन्द्र का दस बारह दिन से कुछ पता तक नहीं है। साहबजी का मन तनाव से भरा हुआ है। लेकिन संवेदना की नकली

मुद्रा प्रकट करने केलिए बाहर से आनेवाले लोगों को वे देखना नही चाहते हैं। अपने तनाव को वे अकेला भोगना चाहते हैं। "उनकी जीत को मैं सबके साथ बाँटूंगा। जीत सबकी संपत्ति होगी। परन्तु यदि युद्धमें मेरे किसी बच्चे ये दूसरे संबन्धी को शहीदी मिली तो उसका सुख या दुख सिर्फ मेरा होगा।"[1]

भारत - पाक संघर्ष के समय समाचार पत्र पढनेवाले साहब को युद्ध-खबर के अलावा विदेशों की, स्पार्टस की और शेयर मार्कट की खबरें बेकार लगती है। "ये खबरें व्यर्थ जगह छेकार कर कही है।"[2] अखबारों में आये मरे हुए सैनिकों की लंबी सूचि पढने की मानसिकता उसे नही है। "हर बार वे इसके आसपास से ही गुज़र गये है। लगता है वे नाम नही है, बैठे हुए सांप है। पता नही कौन फन उठाकर उन्हें डस ले।"[3]

अपने सारे तनाव और बेचैनी को वे किसी के सामने प्रकट करना नहीं चाहते। अपने टाइपराइटर पडी बडी कागज़ पर उतारना चाहते है। वे टाइप करने लगते है- युद्ध चल रहा है, सैकडों लोग मर रहे है, किसी के साथ कुछ भी हो सकता है, जिसके साथ आज नहीं होगा कल होगा। युद्ध आज बन्द हो जाए तो कल फिर शुरु होगा। सेनाओं का काम है युद्ध करना, उन्हे जीतना, उनमे मरना " ....इतना

1. इक्यावन कहानियाँ - महीपसिंह - पृ. 208
2. वहीं
3. वही - पृ. 213

टाइप करने के बाद उन्हें बहुत ही तसल्ली महसूस हुई। 'उनकी सारी उत्तेजना, उस कागज़ द्वारा उलीच दी गयी थी।"[1]

रेडियो पर डेढ बजे समाचार का समय आया। साहबजी का ध्यान समाचार सुनने में रहा। पौत्र चन्नी एन.डी.ए के पर्सनालिटी टेस्ट फेल हो गया है। इस पर कोहलीजी बहुत नाराज़ दीख पडे। लेकिन उनके मन में एक विश्वास भरा हुआ की चन्नी तो ज़रूर एक अच्छा अफ्सर हो जाएगा। "वैसे जब एन.सी.सी के अंडर आफिसर की युनिफार्म पहनता है तो जंचता खूब है और अब तो एमरजन्सी कम्मीशन खुल जायेंगे। उसमें चन्नी ज़रूर चुन लिया जाएगा ....आई ऐम शयोर.... ही विल मेक ए गुड आफिसर।"[2]

कहानी में साहबजी की मानसिकता के भिन्न भिन्न आयाम देखा जाता है। अपने मन के तनाव और बेचैनी को वे अपने में ही सीमित रखना चाहते है। शुरु सें साहबजी का मन अत्यन्त उदास दीख पडा, अन्त में उन्होंने धैर्य संभाल लिया, मन की बेचैनी दुर हो गयी।

सेना में काम करनेवालों के परिवारवालों की मानसिकता पर महीपसिंह बहुत ही सरल ढंग से यहाँ प्रकाश डालते है। लोगों की नकली सहानुभूति पर भी वे व्यंग्य करते है। अच्छा सैनिक देश की संपत्ति है। लेकिन यदि वे मार जाए तो हानि सिर्फ परिवारवालों को

1. इक्यावन कहानियाँ - महीपसिंह - पृ. 213
2. वहीं - पृ. 214

होती है, तनाव और बेचैनी भी उन्हें अकेला भोगना पडता है। इस बडे सत्य की ओर महीप सिंह यहाँ इशारा करते हैं।

मिट्टी के रंग

अपनी ज़िन्दगी के आखिरी दम तक लडने में मज़बूर सिपाहियों की कहानी है मोहन राकेश का 'मिट्टी के रंग'। वेतन केलिए, अपनी आजीविका चलाने केलिए ये सैनिक युद्ध-क्षेत्र जाता है। इन्हें न किसी से दुश्मनी है, प्रतिशोध का भाव है। अपने परिवारवालों की चिन्ता है। इनके माध्यम से मोहन राकेश युद्ध की निरर्थकता को अभिव्यक्त करते हैं।

मैथिलोन और सदानन्द, मिस्र स्थित भारतीय सेना के सैनिक हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध का समय है। दो दिनों के बाद उनकी सेना फ्रंट पर भेजनेवाली है। लेकिन सदानन्द लडना नहीं चाहता है। युद्ध के दहशत और त्रासदी से उसका मन एकदम ऊब हो उठता है। मौत के नाम सुनने से ही वह काँप उठता है। "मौत! दनदनाती गोलियों और आग उगलते टैंक! एक-एक इंच ज़मीन जीतने के लिए लोहे के पिशाचों का नाच।"[1] उसका मन हर पल अपने प्यारे गाँव की ओर लौटता है।

जीवन और मौत की निरर्थकता उसे बेचैन बनाता है। "युद्ध में यह मौत किसकेलिए है। वह तो सिर्फ ज़मीन जीतने के लिए है। ज़मीन का मतलब ताजमहल और पिरमिड नहीं। इसका मतलब केवल

1. पहचान तथा अन्य कहानियाँ मोहन राकेश - पृ. 174

मिट्टी है, जिसके नीचे कीडे, सांप, छछूंदार। ऊपर हैं ठग, गुण्डे, वेश्याएँ !"[1]

युद्ध एक राजनैतिक निर्णय होता है। शासकों के लिए यह त्योहार-जैसा है, इतिहासज्ञों के लिए एक घटना है, और सैनिकों के लिए यह पाशवीय मृत्यू है। षान मूर क्राफ्ट विल्सन का यह कथन सदानन्द और मैथिलोन के सन्दर्भ में बहुत ही सही निकलता है। क्यों कि ये युद्ध करने को नहीं चाहते हैं। किन्तु नेताओं के निर्णय को कन्धे पर डालने के लिए मज़बूर है। उन्हें लडाई से दो चीज़ें मिलती है। मौत और वेतन। "हम दूसरों की लडाई लड रहे हैं दोस्त! इस लडाई में सिपाही की एक ही चीज़ अपनी है, और वह है वेतन के रुपए। उन्हें वह जिस तरह चाहे खर्च कर सकता है।"[2]

युद्ध क्षेत्र में मैथिलोन की मृत्यू होती है। उसने एक खत और हीरे की अंगूठियाँ जेब में रखे थे। यह उसकी बहन को देने केलिए था। सदानन्द उसे अपने पास रख देता है और वह युद्धक्षेत्र से काफी दूर पहूँचता है। डरावनी रात में रेत में पडकर वह मर जाता है। उसने भी अपनी पत्नी को हीरे की अंगूठियाँ खरीदनी चाही। तारीख एक को ही वेतन मिलते हैं। लेकिन उस समय तक वह जीते रहेगा क्या? इस चिन्ता के मारे वह मैथिलोन की अँगूठियाँ और पत्नी माधवी के नाम पर एक पत्र अपनी जेब में रख देता हैं। सदानन्द की मृत्यू के बाद

1. पहचान तथा अन्य कहानियाँ - मोहन राकेश - पृ. 176
2. वहीं

उनकी लाश के साथ महानन्द नामक एक सिपाही के वश में ये अंगूठियाँ आती है। महानन्द ने इन अंगूठियों को उस ईजिप्शियन युवति को दी, जिससे एक रात भर उसे प्रेम मिला।

कहानी में सिपाहियों की दयनीय हालत का वर्णन है। ज़िन्दगी और मौत के बीच ये असमंजस की स्थिति से गुज़रते हैं। उन्हें हमेशा विधायकों की आज्ञा का पालन करना पडता है। शत्रू देश के किसी सिपाही के साथ उनकी दुश्मनी नहीं, जिसे वे गोलियों से मार देते हैं। वेतन के लिए दोनों एक-दूसरे को मारते हैं। 'मैं लडता हूँ क्योंकि मुझे लडने का वेतन मिलता है। वे लडते हैं क्योंकि वेतन मिलता है। सिपाही से कमांडर तक हरेक को वेतन मिलता है। मिनिस्टर और प्राइम मिनिस्टर को वेतन मिलता है। सम्राट और उसके परिवार को वेतन मिलता है। इतने वेतनों के पीछे कोई लडानेवाली शक्ति है।' वेतन के लिए दूसरों पर गोली चलानेवाले इनपर जीवन की अनिश्चिंतता और मृत्यू की दहशत छाई रहती है। "मैं वेतन पाने केलिए उन्हीं पर गोलियां चलाता हूँ, जो मेरी तरह वेतन लेते है, और गोलियाँ चलाते हैं। मेरी गोलियों ने कइयों की जानें ली हैं। किसी की गोली एक दिन मेरी जान ले लेगी।"

सदानन्द युद्ध के दहशत और आतंक-भरे वातावरण से मुक्ति चाहता है। उसका मन हमेशा अपने गाँव और परिवार से संबन्धित चिन्ताओं में डूबा रहता है। "वह मौत की ध्वनियों से जितना दूर हो

सके उतना दूर निकल जाना चाहता था। इसलिए वह भागता गया।"[1] चाँदनी की शीतलता ओर भंगिमा में भी उसे मौत की छाया नज़र आती है। "मेरे नीचे ठंडी ज़मीन है, और इस ज़मीन को मैं नहीं पहचानता। मेरे चारों ओर चांदनी है, पर चांदनी का यह रूप वह नहीं है, जो मेरे घर के आंगन में था।"

घर - आँगन से दूर किसी अजनबी ज़मीन में आजीवनी के लिए दूसरों को मारने में बेबस सैनिकों की आत्मव्यथा के ज़रिए युद्ध की निरर्थकता पर कहानीकार ने बखूबी से प्रकाश डाला है।

युद्ध के खिलाफ बुलन्द एकदम भिन्न आवाज़-नासिरा शर्मा की कहानियाँ

हिन्दी और उर्दु में समान दक्षता से साहित्य सृजन करनेवाली प्रतिष्ठित लेखिका है नासिरा शर्मा। उनकी कहानियों की सबसे प्रमुख विशेषता है कि वे किसी एक देश या प्रदेश के सीमित दायरे में कैद नहीं रहती। उनका रचनात्मक कैनवास अत्यन्त व्यापक है। संसार के विभिन्न प्रदेशों में फैल रहे इन्सान की परेशानियां उनकी संवेदना के धरातल को छूती है, अपनी सूक्ष्म, सशक्त भाषा में वे उसको अभिव्यक्ति देती है।

अपने कहानी संग्रह 'इन्सानी नस्ल' की भूमिका में वे बताती है कि "इन्सान एक है, मगर उसका रूप रंग, भाषा, भावना, विचार अलग अलग होते है, जो अक्सर टकराहट का कारण बनते हैं। यह

1. पहचान तथा अन्य कहानियाँ-मोहन राकेश - पृ. 176

टकराहट अपने में एक बडा प्रश्न भी सामने रखते है कि आखिर यह युद्ध, मन-मुटाव किसलिए? थोडी-बहुत रंजिश आटे में नमक की तरह जीवन के स्वाद को बढा देती है, मगर जब यह शत्रुता का रूप धर लेती है तो भीषण परिंणाम सामने आते है, जो स्वयं मनुष्य को शर्मिम्दा करते है।"[1] इन्सान की जीने की छटपटाहट और उसके अन्दर पलनेवाली जिजीविषा नासिराजी को सृजन के धरातल पर बाँधती है और यही उसे लिखने की प्रेरणा देती है। इसी कारण से समान संवेदना के साथ वे फिलिस्तीन, इराक, युगाँडा, अफगानिस्तान, कश्मीर और भोपाल के लोगों की समस्याओं की चर्चा करती है। अतः नासिराजी की कहानियों का बुनियादी धरातल मुख्यतःमानवीय है। सारी इन्सानी समास्याएँ उन्हें कई कई स्तर पर हांट करती है।

'इब्ने मरियम' कहानी संग्रह की सारी कहानियां इन्सान के जीने की छटपटाहट को सामने रखती है। मानव के संघर्ष के कई धरातल होते है। कभी यह संघर्ष अपनों से छीने गये अधिकार को वापस पाने केलिए होते है तो कभी समाज को बेहत्तर बनाने केलिए होता है। ईरान इराक संघर्ष अधिकांश कहानियों की पृष्ठभूमि में है।

गुस्सालों की अन्तर्व्यथा की अभिव्यक्ति - पहली रात में

ईरान इराक संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी गई नासिरा शर्मा की कहानी है 'पहली रात'। कब्रिस्तान में लाशों को धोनेवाले गुस्सालों की मानसिकता को केन्द्र में रखकर नासिराजी ने प्रस्तुत कहानी रची है।

1. इन्सानी नस्ल - नासिरा शर्मा - भूमिका

इसकी कथा यों चलती है - इरान में संघर्ष ज़ोरों पर था, जनता शाहजी के खिलाफ संघटित हुए। जनता की क्रान्ति को दबाने केलिए शाही फौज मशीनगनें चला रही थी। शहर के सबसे बडे नेशनल बैंक को भी आग लगा दी गई। आन्दोलन का चेहरा इतना बुरा निकला कि लडके शाह की रंगीन तस्वीरें दूकानों से निकालकर सडक पर फेंक रहे थे। जनता का क्रोध अपनी पराकाष्ठा पर था। शाह की फौज अपने बडे बडे टैंकों के साथ सडकों पर जमी हुई थी। पूरे शहर में टैंक ही टैंक नज़रआते थे। शहर के ऊपर हैलिकाप्टर बार बार धूमकर आ जा रहा था। लोगों के मन में अब भय की कोई जगह नहीं थी। अमरिक्का के विरोध में उनकी शाप ध्वनियां सब कहीं गूँजने लगी - "खुदा तुझको भी यह दिन दिखाए".... हाय अल्लाह।"[1]

संघर्ष के दौरान हवाई फायर और गैस के गिरने के कारण डर से जनता इधर उधर भागने लगी। कई लडके गलियों में जाकर छिपने लगे, कुछ को घरों में शरण मिल गयी थी।

हाला नामक लडकी भी इस भागदौड में फँस गयी थी। डर के मारे भागने के दौरान उसपर गोली लग गई, पैरों से खून बहने लगी। फौजी बूटों की आवाज़ से डरकर वह सामनेवाले घर के एक कोने में छिप गई। मकान मालिक ने उसे देखा और फौजी सेनाओं को पता लगाया, हाला फौजी सेनाओं की गोली के शिकार भनी।

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 17

कहानी में एक ओर ईरान के संघर्ष का इशारा है तो दूसरी ओर इसमें गुस्सालों की अन्तर्व्यथा और उनके आत्मसंघर्ष पर प्रकाश डाला गया है।

युद्ध में मारे जानेवालों को गुस्सालों के पास ले जाते है। चार गुस्सालें है - अहमद, अब्दुल्ला, इस्माइल, सइद, मोहम्मद आगा। गुस्सालों में स्त्रियों को धोनेवाली स्त्रियाँ थी। आदमी केवल आदमियों की लाशों को धोते थे। उस दिन स्त्रियों को धोनेवाले गुस्साल ज़ैनब अपने बच्चे की बीमारी के कारण घर चली गयी। उसके जाने के बाद रात में गुस्सालखाना पहूँचा, जहाँ लडकियों की लाश रखी गई थी। "दो लडकियां पैंट पहनी थी, बाकी तीन स्कर्ट। दो के पैरों में जूते थे और अन्य तीनों के पैरों में तस्मेवाली सैडिलें थी। उनके मुख रोशनी में अजीब लग रहे थे। सफेद रंग.... उसपर गुलाबी होंठ और बडी बडी पलकोंवाली बंद आँखें जैसे वे अप्सराएँ हो।" अहमद की आँखें एक लडकी के लाश पर पडी। उत्तेजना से पागल होकर उसने लडकी की पिंडली को दोनों हाथों से पकड लिया। नंगे, अकडे बदन को हाथों से उठाकर टब में डाल दिया। जख्म के पास का जमा खून गरम पानी से उखडने लगा। अजीब एहसास के साथ वह लेट गया।

अगले सबेरे अहम्मद की तलाश में गए दूसरे गुस्सालों ने उन्हें कब्रों के बीच बेसुध पडा हुआ देखा। सइद उसे जगाने लगा तो

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 19

मुहम्मद अगा ने उसे मना किया- "सोने दे। महीनों बाद यह पहली रात थी यों सोया है, अभी इसको सोने दे।"[1]

नाम से लगता है कि पूरी कहानी की रचना किसी रोमांटिक वातावरण में हुई है। लेकिन इसकी पृष्ठभूमि युद्ध ओर उससे उपजी त्रासद परिस्थिति है। लोगों के आखिरी सफर का इन्तज़ाम करनेवाले आदमी है गुस्साल। कई दिनों से युद्ध के ज़ारी रहने के कारण गुस्सालखाने में लाशों के अंबार लग गए है। इस कारण गुस्साल काफी थक चुके है। "इन चार दिनों में तो लाशों के अंबार ने उन्हें दीवाना बनाकर रख दिया था।"[2] युद्ध में अनेक नौजवानों के प्राण निकल चुके थे। इनकी लाश को धोते हुए एक गुस्साल बताते है - "कल तुम थे नहीं, कोई विद्यार्थी था? क्या रंग रूप क्या बदन था? कम्बख्त के सीने पर पूरे नौ जख्म थे। मुझे तो ऐसा लग रहा था जैके हमामखाने में नहाने आया हो और एकदम से मुझसे कपेगा। बहुत मल चुके, अब मुझे उठने दो।"[3]

आज के नागरीक कल देश के शासनचक्र को चलानेवाले है। उनकी निर्मम हत्या द्वारा राजनीतिज्ञ देश के भविष्य को अंधेरे में डाल देते है। तोपों और मशीनगनों के सामने सभी नागरिक एक जैसा है। जिसे मिलता है, उनका खून बहा देता है। गुस्सालखाने में लाशों को देखकर ऐसा लगता है जैसे हमामखाने में नहाने आये हो। उतना तरुण, तेजस्वी और निर्मम थे इनके चेहरे। किसी दूसरी लाश को देखकर

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 20
2. वहीं - पृ. 13
3. वहीं - पृ. 14

गुस्साल को लगता है कि लाश का पूरा बदन बेढंगा होकर यातना की दास्तान कह रहा है।

युद्ध के अन्तहीन चले रहने के कारण गुस्सालखाने में लाशों की संख्या बढ जाती है और इन्हें धोकर गुस्साल भी काफी थक गये है। अब सैनिकों से ये करुणा भरे स्वर में प्रार्थना करते है - "ज़रा रुक रुक कर मारो, हमें समय तो दो, हम कहाँ तक काम समेटे? मशीन भी होती तो अब तक टूट चुकी होती। हम तो इन्सान है। हमारे सीने में भी कलेजा है।"[1] ये सैनिक निर्मम और निष्ठुर है, इसलिए खून और मांस से भरे इन्सानों को ये निष्ठुर ढंग से मारते है।

आखिरी सफर का इन्तज़ाम करना गुस्सालों का धन्धा है। अपनी आजीविका केलिए मन और तन की इच्छा के खिलाफ ये लाशों को धोते है। मशीनी हाथों से ये मशीन जैसा काम करते हैं। "लाशों में कुछ की आँखें अधखुली थी, जैसे नींद आ रही हो और कुछ की आँखें बन्द थी, चेहरे पर शान्ति थी, जैसे सो रहे हो..... कुछ लाशें बहुत बुरी अवस्था में थी, गठरी के रूप में बँधी थी, कुछ अस्पताल से आयी थी। वे सफेद चादरों में लिपटी थी।"[2] अपने मशीनी हाथों से गुस्साल इन सबके आखिरी सफर की तैयारी करते है। लाशों को धोते धोते इनकी मानसिकता भी एकदम पशुवत हो गई है। इनका शरीर थकान भरा है, मन एकदम तनावपूर्ण और संकुचित है। उनकी मानसिकता में ही नहीं,

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 14
2. वहीं - पृ. 18

शरीर पर भी धन्धे की क्रूरता के निशान नज़र आये। "पैरों में गज़ब की ऐंठन हो रही थी। दिन-भर हाथ पैर पानी में भीगे परने से फूल गये थे। साबुन और पानी की गर्मी के कारण हाथ, पैरों की खाल पर छाले पड गए थे। कहीं कहीं ये छाले फूटकर सफेद मरी खाल में हथेली को खुरदरी बनाए हुए थे।"[1]

कब्रिस्तान के लोगों के तनाव और बेचैनी का प्रभाव वहां के वातारण में भी नज़र आने लगा था - यहां तक की हवा भी नहीं चल रही थी। एक मुरदा खामोशी ही थी।

साम्राज्यवादी कोख से उत्पन्न युद्ध समाज सें संहार के बीज बोते है। यह युद्ध पूरे आकाश, जीव जन्तु और इन्सानी नस्ल को भी तहस-नहस करते है। युद्धोपरान्त, ज़िन्दगी बिताना भी ज़्यादा मुश्किल है। कुछ लोगों को मृत्यु से भी पतित और दर्दनाक ज़िन्दगी जीना पडता है। गुस्सालों की जिन्दगी इसका मिसाल साबित हो गया है।

पहली रात अहम्मद की पहली रात थी, जो महीनों बाद सारे थकान को भूलकर सोया है। गुज़रे हुए कई दिनों में युद्ध के कारण ये चैन से सो नहीं सकते थे। पहली रात लाशों की पहली रात है, जो गुस्सालखाने में आहम्मद के साथ बीत चुकी थी। पहली रात हाला नामक लडकी की भी पहली रात थी कि दोस्तों ने देश रक्षा हेतु कोई महत्वपूर्ण काम उसपर सौंपा गया था, जो अधूरा रह गया।

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 18

तारीखी सनद

ईरान संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी गई नासिरा शर्मा की दूसरी प्रसिद्ध कहानी है 'तारीखी सनद।'

कहानी का प्रमुख पात्र एक सिपाही है जो अपनी इच्छा के खिलाफ शाही फौज में शामिल हुए थे। सिपाही मन से विद्रोह के पक्ष में है। किन्तु सरकार के पक्ष में खडे होकर, विद्रोहियों के खिलाफ उसे लडना पडता है।

पत्नी जैनब की इच्छा से सिपाही दो वर्ष पहले शाही फौज में भर्ती हो गया। कालान्तर में शाह के आदर्शों से रुष्ट जौनब ही उसे 'शाह का खरीदा गुलाम' पुकारने लगा। किन्तु अपने कर्तव्य और शपथ से नाता तोडकर विद्रोहियों के पक्ष में आने केलिए वह तैयार न था।

शाह की सरकार ने मार्शल ला की घोषणा की। इससे बेखबर लोग विद्रोह करने आगे बढे। "मार्शल ला का ऐलान कब हुआ, उन्हें पता न पग सका। रेडियो खोलने की जिसे सुध थी, फिर कौन से खबर आमे का समय था। वे अपना मूक अक्रोश व्यक्त करने आये थे। मगर आचानक गोलियों के अंगारों ने दस मिनट के अंदर पंक्तिबद्ध बैठे निहत्थे लोगों को क्रोध से भून डाला था।"[1]

विद्रोह में मरनेवालों में अधिकतर लोग पुराने तेहरान के निचले इलाके से थे। इनमें ज़्यादा गरीब आदमी थे। विद्रोह के दौरान

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 10

सिपाही की आँखें उस शायर की तलाश में निकली, जिसे सब लोग इनकलाबी शेर पुकारता था, जो सारे दिन घर के कामों में व्यस्त अपनी माँ से हर पाँच मिनट बाद कहता था कि आज़ादी नज़दीक है, वह देखो! अब तो आज़ादी की हवा भी चलने लगी है, सूँधो! कैसी प्यारी मदमाती सुगंध भरी है, इस शरद-ऋतु की हवा में। "ड्यूटि केलिए जानेवाले सैनिक को शायर घृणा की दृष्टि से देखता था। सिपाही को इसपर बहुत अचरज लगा कि शायर घायल आदमियों के बीच में नहीं नज़र आते थे, लाशों के ढेर में भी उसे देख न पाता था। उसका इनकलाबी तराना भी वहाँ नहीं गूँज उठते थे।"[1]

सिपाही की आँखें फिर उस कहानिकार को ढूँढने लगी जो अपने घोर शब्दों के ज़रिए सरकार पर चोटें करता था। उसके शब्द किसी भी समाचार पत्र में न छपे आये थे। वे केवल अपने कागज़ों तक सिमित रहे। "बस दो कागज़ों की सीमा पर उडेला वह ज़हर को मारनेवाला विषहर जिसे पढनेवाला बडे आराम से तह करके कोट की जेब में रख सकता था। वह भी न मुरदों में था न जख्मियों में।"[2]

जुलूस के आगे एक लडकी नज़र आयी, जो जुलूस के सबसे आग नारे लगाकर बढती थी। लडकी ने आगे आकर सिपाही को एक फूल दिया और अपने नारे को दोहराने लगी "सिपाही! हम तुम्हें फूल देते है, कल हमें गोली का उपहार मत देना।"[3] लडकी की बातें

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 10
2. वहीं - पृ. 11
3. वहीं

सुनकर सिपाही का सारा शरीर कमज़ोर होने लगा। लेकिन फूल को स्वीकार करने के बाद वह फिर अपने काम में विलीन हुआ। उनकी आँखें हाज़ आगा को ढूँढने लगा, जो अपने घर की चौखटे पर बैठकर लंबे लंबे कश भरता हुआ शहर में हुई हिंसात्मक घटनाओं की चर्चा करता था। सिपाही ने जिन जिन की तलाश की, उनमें कोई भी वहाँ नहीं थे। 'वहाँ तो केवल फटे पुराने कपडों में लिपटे बेहिस जिस्म थे, जिन्हें वह नहीं पहचानता था - केवल महवश, हसन और जैनब को छोडकर।'

जैनब और कोई नहीं थी, सिपाही की पत्नी थी, महवश उनकी प्रिय बेटी थी और हसन उनका प्यारा बेटा था। युद्धमें मरनेवाले दूसरे लोगों के साथ ये भी गोली के शिकार बने। सिपाही के मन का नियंत्रण टूट गया। उसका मन एकदम चंचल हुआ। परेशानी के मारे उसने गोली स्वयं गोली मारकर आत्महत्या कर ली। वे भी इन शहीदों में शामिल हो गया।

अगले दिन के समाचार पत्र में सिपाही की मृत्यु संबन्धी जो खबर आयी, उसमें उनके नाम का कोई उल्लेख नहीं था। युद्ध-क्षेत्र में उनकी बहादुरी का वर्णन भी नहीं था। वह एक अज्ञात आदमी की आत्महत्या का संक्षिप्त वर्णन मात्र था। अखबार की सुर्खी थी - 'सरबाज की मौत, समाचार था, कल एक सरबाज की लाश मिली जिसके सिर पर गोली लगी है, लाश खराब हो चुकी है, इसलिए शक्ल पहचानना कठिन है।'

सिपाही मन से सरकार के विपक्ष में थे, शाहजी के क्रूर आदर्शों के खिलाफ थे। लेकिन आजीविका केलिए उन्हें विद्रोहियों के खिलाफ लडना पडा। सिपाही के मन को हमेशा छोटी सी लडकी की आवाज़ झुलसती रहती थी, जिसने कहा - हमने तुम्हें फूल दिए थे सिपाही, तुमने हमें गोली गे शूल दिए सिपाही।'

युद्धविरोधी आवाज़ों में प्रश्नचिह्न

युद्ध या आतंक के खिलाफ आवाज़ उठानेवालों की ईमानदारी पर लेखिका यहाँ प्रश्नचिह्न लगाती है। पत्रकार अपने पत्र के प्रचार केलिए, कहानीकार अपनी कीर्ति को बढाने केलिए और कवि सबका आकर्षण केन्द्र बनने केलिए युद्ध के खिलाफ शब्दों के ज़रिए लडते है। केवल बातों से परे इससे कोई काम नहीं चलता। इन आदमियों की करनी और कथनी के बीच बडा फासला है। दूसरों का ध्यान अपनी और खींचने के लिए ये शब्दों से जादू चलाते है। अचानक विद्रोह फूट निकले तो इनसे बच पाने का रास्ता भी इनके पास है। वे अब मंच से दूर रहते है। अब मंच पर उतरती है, गरीब, मासूम जनता जिनकी उम्मीदें, आशाएँ और सारी प्रतीक्षाएँ युद्धक्षेत्र में एकदम मिट जाती है। "घरों से आ आकर लोग रस्सियों की नाज़ुक आड के पीछे सडक और फुटपाथों पर बैठ गये थे। वे अपना मूक अक्रोश व्यक्त करने आये थे, मगर अचानक गलियों के अंगारों ने दस मिनट के अंदर पंक्तिबद्ध बैठे निहत्थे लोगों को क्रोध से भून डाला था और देखते ही देखते तडपते बदन सडक पर लोटते, दर्द से ऐंठते, दम तोडते, सिमटते हुए तले

ऊपर हो गये थे, जैसे अढपती की कोठरी में ज़मीन से लेकर छत तक, चावल की बोरियाँ एक दूसरे पर चुन दी गई हो......"

नासिराजी ने प्रस्तुत कहानी में कवियों, कहानीकारों और विप्लव के तराना गानेवालों के नकली चेहरे को उतारने की पूरी कोशिश की है। इनकी कथनी और करनी में जो अन्तर है, उसका अनुमान लगाना हमारेलिए काफी कठिन है।

ईरान संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी प्रस्तुत कहानी में युद्ध का वातावरण पूर्णरूपेण छाया हुआ है। पूरी कहानी में बच्चों की चीखें और खून से लथपथ औरतों की कराहट गूँज उठती है।

सरकार पक्ष के सिपाही जनता के विद्रोह को हर कीमत पर दबाने की कोशिश करते है। "सरकार के साथ गद्दारी और बगावत करने की एक ही सजा थी, वह थी मौत। नन्हे से शब्द फायर की गूँज के साथ, मशीनगनों के दहाने आग का दरिया उगलने लगे थे और तब काली चादरों में लिपटे औरतों के बदन से टपकते खून से धर्ती पर उभरते बेल बूटे, बच्चों की चीखों से खून के आँसु रोता, आस्माँ, मर्दों की आह व म्रुका से फरियाद करती चहार सू...."[2]

पाठकों के मन में युद्धविरोधी चेतना जगाने और युद्ध के शिकार लोगों से हमदर्दी जगाने में लेखिका पूरी तरह सफल हुई है।

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 10
2. वहीं - पृ. 9

पुल-ए-सरात

युद्ध मानव मानव के आपसी संबन्धों में काली परछाइयाँ डालता है, यह मानव जीवन को एक विशेष स्थिति तक पहूँचाता है, जहां पहूँचकर वह अपने अस्तित्व को भी भूल जाता है।

नासिराजी का 'पुल-ए-सरात' ईरान-ईराक संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी कहानी है। लैला इस कहानी का मुख्य पात्र है, जिसके जीवन में युद्ध के कारण ज़्यादा परिवर्तन हुआ। लैला के पिता राजदूत थे, राजदूतावास में वह और उसकी माँ यश-आराम की ज़िन्दगी जीती थी। किन्तु पिता की अचानक मृत्यू और जल्दी फूटे युद्ध ने उनकी ज़िन्दगी को अंधेरे में धकेल दिया। लैला अब अपनी आजीविका केलिए कभी हाउस-कीपर का काम करती है, कभी वह दूकान में सेल्सगेल बन जाती है।

बचपन के दोस्त हसन के प्रति लैला के मन में विशेष लगाव है। लेकिन उनका प्रेम फूल जाने के पहले ही सूख जाते है। युद्ध के दौरान हसन को ईरानी सेनाएँ बन्दी बना देती है। लैला हसन से अलग हो जाती है।

युद्ध से प्रेम संबन्धों में जिस तरह दरारें पड जाती है उसका मिसाल है लैला का जीवन। ईरान से लैला के नाम पर नेदा की चिट्ठी आती है, जिससे पता चलता है कि हसन को ईरान ने युद्धबन्दी बनाया है। हसन के मन में लैला के प्रति जो विशेष लगाव छिपा हुआ है, सब इससे बेखबर है।

कहानी के हर पात्र युद्ध की त्रासदी के प्रत्यक्ष या परोक्ष भोक्ता है। बस स्टाप में एक स्त्री से लैला की मुलाकात होती है, जिसके दो लडके और दामाद साल पहले युद्ध में शहीद हुए थे। तब उसने दो साल तक काला कपडा पहना था। लैला रोज़ काले कपडे पहनती थी, इसलिए स्त्री पूछती है कि उसके घर में कौन शहीद हुआ है? लैला को उनका सवाल अच्छा न लगती है। क्योंकि वह उसके पापा के गम में काला कपडा पहनती है। वह कहती है - "पन्द्रह साल से बाबा के गम में काला कपडा पहन रही हूँ। शायद हमेशा पहनूँगी, क्योकि वही मेरी ज़िन्दगी के वाहिद मर्द थे, जिन्होंने मुझे पहचाना था।"[1]

लैला अपना सब कुछ छोडकर हसन के साथ जाने केलिए तैयार न थी। इराक उसकी अपनी मातृभूमि है। औरत का वतन मर्द होता है, हसन की इस सोच को मानने केलिए वह तैयार न थी। अपनी ज़मीन से उसका जो रिश्ता है वह बीस साल पुराना है। इतना पुराना रिश्ता तोडकर वह हसन के साथ जा न सकती थी। "मेरा वतन, मेरा एहसास, मेरा खानदान, मेरी ज़िन्दगी, जिसे बाबा ने सँवारते हुए मुझसे बहुत सी ऐसी बातें कही थी,जो मेरे खून में बहने लगी थी। मेरी माँसपेशियों में रक्त धमनियों की तरह उग आयी थी। जिनमें बहता खून इस धरती से उगे अनाज से बना था, जिसे मेरे बाप-दादा ने सींचा था। मेरा वजूद छह महीनेके बने इस नए रिश्ते की वजह के अपना पुराना सब कुछ एकएक कैसे नकार सकता था? मैं कच्चे रंग की पुडिया नहीं

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 110

थी और न ही हसन मूसलाधान गिरता आबशार, जो अपनी मर्दानगी की दीवानगी में मुझे बहा ले जाता। मैं इन्सान थी, कोई सियासी नारा नही कोई सियासी बँटवारा नही।"[1]

रात का सन्नाटा भी बम के तेज़ धमाके से टूट जाते है। अर्थात युद्ध का सिलसिला दिन-रात ज़ारी है। 'जवान तेज़ी से काम आ रहे हैं। हज़ारों की तादाद में हर महीने जगहें खाली हो रही है। डेढ लाख तो केवल हिन्दुस्तानी है। मिस्री तो शायद उससे भी दुगने और अब कोरिया और फिलिपाइन से भी मज़दूर आने शुरु हो गए है। इस ईरान युद्ध ने सबके चेहरों को नंगा कर दिया।'

इराक पर गिरा हर ईरानी बम सीधे लैला के दिल में पहूँचकर चोट करता है। हसन का लैला की ज़िन्दगी में पूरी तरह से दाखिल होने के पहले ही इरान-इराक की लडाई शुरु हुई। लडाई से लोगों को परेशानी होती है ज़रूर। किन्तु ईराकी को लडाई से पहले की घुटन, कुछ होनेवाला जैसा आभास हमेशा परेशान कर रहे थे। "फिर दस लाख इराकी अपने हमवतन एकाएक ईरान भेज दिए गए। क्योंकि उनके नस्ली रेशे उस धरती में से उगे थे। उनकी माँसपेशियों में ईरानी खून बह रहा था। सुन्नी शिया की दीवार अपने-आप मज़बूत होने लगी। इस नई सामाजिक तब्दीली में हसन और मैं कुछ न कर सके। वफा बँटने लगी और इस बँटवारे में हमारी आपसी वफादारी की बुनियाद

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 110

पडने से पहले ही हिल गयी। इराक छोडकर जानेवाले काफिले में सबसे आगे हसन था।"[1]

ईरान जाकर हज़न ईरानी इस्लामी फौज में भर्ती हो गया। अब उसके गुज़रे पाँच साल बीत गये, पर हसन लौट न आ सका।

युद्ध के ज़ारी रहते समय मंत्रालय के काम से हटाकर लैला की ड्यूटी कुछ दिनों केलिए एक पाँच सितारे होटल में 'हाउस कीपिंग में लगाइ थी। माँ को होटल की नौकरी पसन्द न थी। रात भर माँ अकेली घर में घबराती थी। इसलिए होटल की नौकरी को छोडकर बाद मे वह एक दूकान में 'सेल्सगर्ल' बन गई।

मौत से बदत्तर जीवन - आम आदमी की बदकिस्मत

लडाई के दौरान आम आदमी की ज़िन्दगी मौत से बदत्तर हो जाती है। आवश्यक सामग्रियों के अभाव में सामग्रियों की कीमत में बढोत्तरी हो जाती है।

लैला की दूकान में सामान खरीदने आये आदमी सामान न मिलने के कारण निराश होकर लौट जाते है। दूकान में एक बीमार बूढे इंजक्शन की दवा के लिए आते है। उसके लिए पूरे बीस दिनों की इंजक्शन की ज़रूरत है, लेकिन दो दिन की इंजक्शन ही मिलता है। "जंगजदा मुल्क में बीमार होना भी लानत है। सारा बाज़ार छान मारा, हर जगह यही जवाब मिला है।"[2]

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 110
2. वहीं - पृ. 12

सिरिया ने ईराक का पाइप लाइन बन्द कर दिया। इसलिए पट्रोल की कीमत में बढोत्तरी हुई। इतना ही नहीं ऊपर से पानी बन्द करने कारण देहातियों को बडी कठिनाई महसूस हुई। फसलें सूख गई, आनेक किसान प्यास के मारे मर गये। आवश्यक दवा न मिलने के कारण भी लोग मरने लगे। लैला को लगा कि उसका शहर दूसरा फिलिस्तीन बन गया है।

युद्ध आम आदमी की ज़िन्दगी की सारी सुविधाएँ छीन लेता है। दवा के अभाव में मृत्यु होती है, पानी के अभाव में फसलें सूख जाते है, बाजारों में माल की कीमत भी बढ जाती है। लेकिन समाज में ऐसे भी लोग है जिसे युद्ध से किसी भी तरह की कठिनाई न होती है। युद्ध हो या न हो, इससे उनका जीवन नहीं प्रभावित होते है। लेकिन ये युद्धकोष में ज्यादा धन खर्च करके काम कमाते है।

लैला की दूकान में रेशमी वस्त्र पहनी एक स्त्री आकर लिपस्टिक पूछती है। बाहर युद्ध से त्रस्त आम आदमी बेचैनी से इधर उधर भागते कराहते हैं। यह मार्डन स्त्री इससे बिल्कुल बेखबर है कि युद्ध में कितने लोग मारे गये और कितनों को बन्दी बना दिए। लैला के मन में एक खयाल आया कि इस औरत ने युद्धकोष में कितना सोना दिया होगा।

इन्सानियत के नाम पर, कीर्ति कमाने केलिए ये काफी धन खर्च करते है। लेकिन इनका मन वास्तव में संवेदनहीन है। इनकी हरकतें धूमिल की 'सापेक्ष्य संवेदन' कविता की याद दिलाती है, जिसमें

कवि संवेदना की सापेक्षिकता की चर्चा करते हैं। आदमी बम फटने की खबर सुनकर दुखी होता है। लेकिन उससे अधिक दुख उसे चाय के ठंडा हो जाने से होता है।[1]

बम फटने से दुख तो होता है ज़रूर
पर उतना नहीं, जितना चाय के ठंडा
हो जाने पर होता है।

मातृभूमि से विस्थापन

युद्ध के समय कई लोगों को अपनी मिट्टी छोडकर जाना पडता है। लेकिन मातृभूमि से पूर्ण रूप से जडें उखाडना इनके लिए मुश्किल है। लैला की सहेली नेदा युद्ध के दैरान शरणार्थी होकर बागदाद से तेहरान पहूँचती है। लेकिन बागदाद की मिट्टी को वह भूल न पाती है। 'दजला के बहना, शाम का झुटपुटा और एक खास खुशबू जो सिर्फ बगदाद में थी और बागदाद की उस खुशबू केलिए मैं तेहरान में तडपती रहती हूँ। मुझे यहाँ आये पूरे छह साल हो गए है। यकीन करो, सर का दर्द पीछा न छोडता है। इलाज लगातार हो रहा है, दर्द पीछा नहीं छोडता है। इलाज लगातार हो रहा है, मगर अब तक कुल मिलाकर पन्द्रह-बीस किलो वज़न कम हो गया है। यहाँ पर एक छोटी-सी नौकरी और घर मिल गया। सब लोग ठीक है। भाभी जाने किस किस तरकीब से लन्दन से पैसा भेजने में कामयाब होती है, वरना इतनी कम आमदनी में गुज़र होना बहुत मुश्किल है। इनकी माली हालत भी तो दम तोड रही है। ऊपर से खूजिस्तान से आए शरणार्थी,

अफगानिस्तान से भागे हुए मुज़ाहिद्दीन, बैठे बिठाए तीन चार लोगों को खाना, नौकरी, घर देना..... खैर यहाँ के लोग हमें मुसलमान नहीं समझते हैं। इरान.... इराक मैं ने इरान को कभी इतना प्यार नहीं किया था, जितना मुझे ईरान में आकर उससे हो गया है। वतन की दूरी क्या होती है, इसका अन्दाज़ा तो सिर्फ वही कर सकता है, जिसका दाना पानी उसकी ज़मीन से उठ गया हो।

'पुल-ए-सरात' में युद्ध और उससे संबन्धित सारी समस्याओं को नासिराजी ने स्वर दिया है। आम जनता की व्यस्तता, बेचैनी, घुटन, अमीर आदमियों की कपटता, खोखलापन, संवेदनहीनता, शरणार्थियों की बदकिस्मत आदि युद्ध से संबन्धित सारी समस्याएँ इस कहानी में हैं।

जड़ें - भारतीय मूल के उगांडा निवासियों की समस्याएँ

पहले ही बताया गया है कि नासिरा शर्मा की कहानियों की पृष्ठभूमि एक देश की सीमा में बँधी नहीं रहती। वे ईरान में रहनेवाली नेदा की कहानी लिखती हैं, इराक की लैला की कहानी भी कहती है। 'इब्ने मरियम' की भूमिका में बताया गया है - 'नासिरा शर्मा किसी भी तरह अपने दायरों में सिमटी-सिकुडती एकरसता में डूबी कहानियाँ नहीं लिखती। उनके पास वास्तव में एक जहाँनुमा आइना है, जिसमें वह दुनिया - जहान को देखती है।' इसलिए उगांडा से निकाली गई भारतीय मूल की लडकी गुलशन से नासिराजी तीव्र संवेदना प्रकट करती है। इसकी अभिव्यक्ति 'जडें' कहानी में हुई है।

अठारह वर्षीय गुलशन उगांडा में कंबाला के निवासी है। भारतीयों के खिलाफ उगांडा में आन्दोलन फुट निकला। लूट पाट में गुलशन की मम्मी डाडी और बूढी दादी को मारा गया और उसके घर को जलाकर राख बना दिया। गुलशन भारत जाना नहीं चाहती है, उनका जन्म, बचपन, पालन-पोषण सब उगांडा में ही हुआ था। अपने को इंडियन स्वीकार करने केलिए उसका मन तैयार नहीं था।

भारत जाने केलिए लोग हवाई अड्डे में जमा हो गये। गुलशन को इस बात पर बडा आश्चर्य होने लगा कि क्यों यो लोग ब्रिटन जाने के बजाय भारत लौट रहे है।

गुलशन इंग्लैंड पहूँचकर ज़िन्दगी शुरु किया, वहाँ वह सेल्स गर्ल बन गयी। ग्रेट ब्रिटन के विभिन्न शहरों में भटकती आखिर वह एडिन बर्ग पहूँचे। उसने दूकान में और होटल में तरह तरह के काम किये। इंडिया टी सेंटर में उसे छोटी सी नौकरी मिली, वहाँ गुलशन की भेंट सिद्धार्थ से हुई। सिद्धार्थ से नाता जोडकर वह अपने अतीत को भूलना चाहती थी। वह सिद्धार्थ में एक प्रेमी को नहीं चाहती थी, बल्की गृहस्थी संभालने केलिए एक आदमी को। उसकेलिए घर पहली ज़रूरत थी, प्रेम दूसरी।

सिद्धार्थ गुलशन को बहुत चाहता था, किन्तु शादी परिवारवालों की इच्छा के अनुकूल ही करना चाहता था। इसलिए लडकी की सारी कहानियाँ सुनने के बाद सिद्धार्थ उनसे दूर हो गया। जब घर से माँ की

चिट्ठी आयी कि माँ ने उसकेलिए एक लडकी पसन्द कर ली है, उसने वापसी टिकट की बुकिंग की।

सिद्धार्थ का मूल भारत में है। बंटवारे के पश्चात्न वह पाकिस्तन जाकर बसने लगा। गुलशन को लगता है कि भारत, जिसे वह ज़िन्दगी में एक बार भी देखा नही, उसके जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। क्योंकि भारतवासी होने के कारण उसे अपना स्वदेश उगांडा छोडना पडा, अपने प्यार का भी तिरस्कार उसके जीवन में इसलिए हुआ है।

ब्रिटिश सासन के समय भारत से कुछ लोगों को बंधुआ मज़दूर बनाकर युगांडा लाये गये। अपनी मेहनत से उन्होंने यहाँ सब कुछ हासिल किये और जीवन के सभी क्षेत्रों - व्यापार, स्वास्थ्य में उसका राज हो गया। कालान्तर में ये लोग भूलने लगे कि युगांडा उनका देश नहीं है। स्थानीय बाशिन्दों को सत्ता का यह खेल अच्छा न लगा, वे इनके विरोध में हथियार लेने लगे।

गुलशन युगांडा में ही पैदा हुई, वहाँ पली बढी, उसके माँ और बाप की पैदाइश बी युगंडा में ही हुआ था। लेकिन दादी का जन्म भारत में हुआ होगा। कंपाला में पिछले कई महीनों से एक ही नारा गूँज रहा था - 'इंडियन्स, गो बैक। इसी नारे के साथ भारतीय मूल के युगांडा निवासियों के घर जलने लगे। हत्या और लूटपाट का ऐसा तूफान आया कि गुलशन के मम्मी डैडी और बूढा दादी के साथ छोटे

भाई की गोली मारकर हत्या कर दी गई। लाख का घर जलकर खाक हो गया।

गुलशन को इस बात पर ताज्जुब हो रही थी कि लुट-पाट के बाद ये सारे लोग इंडिया वापस न जाकर क्यों ब्रिटन जाने लगे है। 'हवाई अड्डे पर उसे सारा कंपाला नज़र आया जिनसे वह स्कूल, सडक, दूकान, द्फ्तर, सिनेमा इत्यादि में देखती मिलती रहती थी। आज सबके चेहरे भय से पीले और फीके पड गये थे।'

गुलशन ग्रेट ब्रिटन के विभिन्न शहरों में भटकती आखिर एडिनबर्ग आकर 'हर गई। अतीत में भटकते हुए वह अब बीस साल हो चुकी थी। उसके दिल में यह भावना जड पकडने लगी कि अतीत को वर्तमान में एक तरह से बदल जायें और उनकी पुरानी यादों पर खाक डाल दे।' सिद्धार्थ की ओर से अपनी इस इच्छा की पूर्ति करने में वह असफल निकलती है।

गृहयुद्ध ने गुलशन की सारी इच्छाओं पर, आशाओं पर धूली डाल दी। अतीत को ही नहीं, भविष्य को भी युद्ध ने अंधेरे में धकेल दिया।

कश्मीरी समस्या - 'तीसरी मोर्चा' में

युगांडा से बाहर निकाली गई भारतीय मूल की लडकी गुलशन की कहानी कहते वक्त उसी संवेदना से कश्मीर के दो युवकों की कहानी नासिराजी कहती है 'तीसरी मोर्चा' में।

औरत की अस्मिता हर कहीं और हमेशा औरत की होती है। युद्धक्षेत्र भी इससे भिन्न नही। हमेशा औरतें युद्ध की त्रासदी के शिकार हो जाती हैं, ये युद्ध की विभीषिका के प्रत्यक्ष भोक्ता है। रणक्षेत्र में इनका आबरू लूटा जाता है। युद्धक्षेत्र में और उससे बाहर की उनकी बेचैनी को पहचानने में पुरुष असफल निकलते है। इस बडे सत्य की ओर इशारा करनेवाली कहानी है 'तीसरी मोर्चा।'

राहुल और रहमान बचपन के दोस्तें हैं। बेकारी के कारण दोनों बहुत ही परेशानियाँ भोग रहे हैं। साधारण हालत में नौकरी बिना जीना बहुत ही मुश्किल है। अब युद्ध और आतंक भरे वातावरण में इसकी कल्पना करना बिल्कुल मुश्किल ही है।

कश्मीर में युद्ध और आतंक ज़ोरों पर था। इस हंगामे भरे माहौल में नौकरी मिलना असंभव ही था।

रहमान और राहुल ने कश्मीर छोड चले जाने का निश्चय किया। रास्ते में वे एक औरत का बेहोश बदन देखते हैं। राहनल के परिवारवाले उसके आगे चल रहे हैं। युवति को अकेली छोडकर जाने केलिए दोनों तैयार न थे। होश आने युवति ने उन दोनों को देखकर चीख मारी।

लडकी की परेशानी समझकर युवा बोला- "मैं राहुल हुँ, यह रहमान, हम दोनों बचपन के दोस्त है........ अगर तुम हिन्दु हुई तो

हमारी बहन, अगर मुसलमान हो तो रहमान के रिश्ते के हमारी बहन ही लगी...... यदि उचित समझो ते कुछ अपने बारे में कहो ताकि.....।"[1]

युद्ध के दौरान किसी सैनिक ने उसकी मान लूट ली। उसके दो बच्चे हैं। लेकिन बच्चों के बाप को वह पहचान न सकती थी। 'पता नहीं उनका मज़हब क्या था। वर्दी में सब एक-से लगते हैं।

पहले उन्होंने मेरे शौहर का पता जानना चाहा..... मुझे खुद कहाँ पता था? ".....मेरे इंकार पर उन्होंने भूखे चूहे मेरे शलवार में डाल दिए..... मेरे दोनों बच्चों को इतना पीटा कि.... वह दम तोड गए, फिर मुझे.... मैं डर से सुन्न हो गई थी..... मेरे चारों तरफ णंधेरा था..... मेरे अन्दर भी आंधेरा छा गया और।"[2]

युवती उन दोनों के साथ जाने को तैयार न थी, क्योंकि उसे कुछ करने को बाकी है। उसके दोनों बच्चे आतंक में मारे गए। उसे अपने बच्चों को दफनाना है, और पति का इन्तज़ार करना है। इतना ही नहीं उसे जुल्म के खिलाफ लडना है। "मैं माँ हुं। मुझे बच्चों को दफनाना है....... पत्नी हूँ.... मुझे अपने शौहर का इन्तज़ार करना होगा.... औरत हुं.... इसलिए जुल्म के खिलाफ मुझे लडता रहना है..... मुझे भागना या मुँह छुपाना नहीं है......... मुझे अभी ज़िन्दा रहना है।"

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 68
2. वहीं - पृ. 69

युद्ध की त्रासदी के कारण परेशान होने पर भी युवति के मन में एक अनूठी दृढता, संवेदना और जंग के खिलाफ आवाज़ उठाने की इच्छा देखा जा सकता है। पति के गायब होने पर, बच्चों के मर जाने पर उनके मन में दुख तो होता है, किन्तु वह अधीर न हो जारी है। एक औरत होने के नाते सभी अत्याचारों के खिलाफ लडने को वह तैयार है।

फिलिस्तीन और इस्राइल के बीच का संघर्ष - ज़ैतून के साये में

फिलिस्तीन और इस्राइल के संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी गयी कहानी है 'ज़ैतून के साये।'

तौफीक फिलिस्तीन के गोरिल्ला संगठन के नेता है, उनको इस्राइली सेना हिरासत में लेती हैं। अपनी मातृभूमि की आज़ादी ही तौफीक की ज़िन्दगी का एकमात्र लक्ष्य है।

फिलिस्तीन तौफीक की मातृभुमि है, जिसे इस्राइल सैनिकों ने अपने नियंत्रण में रख लिया। इस्राइली कमाँडर ने एक शर्त पर तौफीक को मुक्त करने का वादा किया कि वे इस्राइल संगठन के सारे काम करेंगे और अपने संगठन के सारे भेद खोलकर बतायेंगे तो उनको सरहद के पार पहुँच देंगे। किन्तु तौफीक अपनी मातृभूमि को वंचित करने केलिए तैयार न था। उनके शर्त पर वे राज़ी न हुए। वे बताते है "मेरा वजूद वक्त की तपिश से पिघलकर पहले से ज़्यादा मज़बुत हो गया है, जिसकी बुनियाद फिलिस्तीन की धर्ती में गहरी धँस गयी है, जिसको उखाडना तुम इस्राइलियों के बस की बात नहीं है।"[1]

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 28

फिलिस्तीन-इस्राइल के बीच के संघर्ष में फिलिस्तीन की ही जीत करीब थी। लेकिन इस्राइल ने पल भर में सब कहीं अधिकार जमा लिया। हमले के बीच तौफीक बेहोश हो गये। "जब उसे होश आया तो अपने को बडी-सी चट्टान पर औंधा पडा पाया। उसके दोनों साथियों को सैनिकों ने मार डाला। हैलिकाप्टर में आग लग चुकी थी। उसने तेज़ी से कैप्सूल लेने केलिए हाथ जेब में डाल दिया; इसके पहले ही किसी सैनिक ने उसे मारा। कैप्सूल छिटककर दूर जा गिरी और उसका हाथ कुंदे की लगातार मार से भुर्ता बना दिया गया। वह बेहोश गिर पडा। जब होश में आ गया तो उसकी जेबों कि ज़बानें बाहर निकली हुई थी। उनका परिचय-पत्र, नन्हा-सा चाकू, कमर पर बँधी पिस्टल औल चुइंगम का पैकेट गायब था।"[1]

कैदखाने में त्रन्द तौफीक सोचता है कि यह मिट्टी ही मेरा बिछौना है। इस ज़मीन पर मैं घुटनों के बल चला हूँ और इस मिट्टी को छुप-छुपकर खाने की आदत पर माँ ने मुझे मारा है। इसी सरज़मीन को विदेशी हाथों से छुडाने केलिए मैं ने हाथ में हथियार उठाया था।

तौफीक के साथ उठे हुए उनके साथी सिपाहियों के हाथ फौज़ियों ने कटकर नीचे गिरा लिया। मातृभूमि के वतन पर कटे अंगों से बने टीले और पहाड बनाए है। "जैसे पानी की नहीं, बल्कि हाथों की बारिश हो रही है, जिससे नदी-नाले नहीं भरे......"[2]

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 32
2. वहीं - पृ. 33

कैदखाने में बन्द तौफीक के मन में अपने बचपन की स्मृतियाँ आती जाती है। एक डरावनी रात के सन्नाटे में उसका जन्म हुआ था। उसके रोने की आवाज़ से फिज़ा पर तनी दहशत की चादर फट गई थी। माँ की दर्दभरी चीखों से मुर्दा पडे गाँव में ज़िन्दगी फिर खुल से तर आँचल निचोडकर उठ खडी हुई थी। उन दिनों गाँव में मर्द नहीं रहते थे; वे मोर्चा संभालते थे, औरतें घर और बच्चों को ....मर्दों का बदला औरतों और बच्चों से चुकाने की इस रस्म में पहले गाँव के सारे नई उम्र के लडके गोली से भून दिए गए, फिर ऊपर से फेंके बमों से घन खेत-खलिहान, कुएँ, तालाब सब तबाह कर दिए गए थे। जो चंद औरतें बच गई थी, उनमें माँ और दोनों बडी बहनें भी थी। जब लौटी तो गाँव के करीब पहूँचकर अपनी आँखों के सामने गिरते गोलों और दम तोडते गाँव को देखकर माँ के बदन में ऐसी दहशत आई कि उनसे काँपते वजूद ने वहीं खुले आसमान के नीचे बिना किसी इंतज़ाम के तौफीक को जन्म दिया था। दुश्मनों के न चाहने पर भी उस दिम गाँव में एक लडके का जन्म हुआ था।

तौफीक के पिता फौज़ में काम करते थे। रणक्षेत्र से वे घर लौट आते वक्त वहाँ जोश भर जाता था। शाम ढलते घर के हाते में इकलौते ज़ैतून के पेड के नीचे बैठकर बाबा तराने गाते थे, तौफीक अपने भाई-बहन के साथ बैठकर उनके साथ कोरस में गाते थे। पूरी गरिमा और संतोष से भरी माँ सबको भोजन परोसते थे। मौत और खुशी, रोने और गाने के हर मौके पर वे इंक्लाबी गाना गाते थे।

बाप के मर जाने के बाद माँ एकदम बदल गयी, हमेशा वह घर के काम में व्यस्त दिखाई पडी। युवा तौफीक एक दिन रोटी कमाने केलिए फिलिस्तीन से इस्रायल जाने लगा तो थकावट के कारण रास्ते में पड गया। सीमा सुरक्षा अधिकारियों ने उसे हिरासत में ले लिया। रात के आधी हो जाने पर उसे मुक्त किया। जब घर पहूँचा तो रात देर हो गई थी। इस कारण से माँ ने उस रात से उसका बाहर निकलना बंद कर लिया।

उन दिनों में फिलिस्तीन की ज़मीन पर रहने पर भी वहाँ के लोगों को वोट डालने का हक नहीं था। सरकारी सम्मेलनों में बैठने और बोलने का अधिकार भी उसे नहीं था। शिक्षित युवक सरकार के खिलाफ कुछ लिखते थे, लिखने के जुर्म में उसे जेल जाना पडता था।

इस्राइलियों ने इस समय फिलिस्तीन पर पहला हमला शुरु किया। 'जब दारयासीन गाँव तबाह हुआ तो मरनेवालों में दो सौ चालीस लोग थे, जिन्हें उँगली पर गिना जा सकता था। वह पहला हमला था, इस्राइलियों का हम पर...... गाँव की तबाही देखकर खुद यहूदियों ने दाँतों तले उँगली दबा ली थी कि इस कत्लेआम और नाज़ियों द्वारा यहूदियों के कत्लेआम में कोई फर्क नहीं पड गया है। 'तारीख यदि अपने को यूँ दोहराती रहेगी तो इस तरह की तबाहियाँ कभी खत्म नहीं होगी।'

तौफीक 1948 की बातें बता रहे है, जब उनकी उम्र दस साल की थी। तब से आज तक उसने आठ-नौ जगहें और ठिकाने

फ्रदले। अनेक बार खेमों में रहे, इस्त्रायली फौजों की निगरानी में बंदियों की तरह वर्षों गुज़ारे। कैदखाने में बन्द तौफीक सोचते है - "यह हमारी नहीं फिलिस्तीन की तकदीर है। जो धर्ती अठारह बार विदेशी हुकुमतों को झेलकर भी अपनी पहचान को न खोने की कसम खा बैठ हो, उसका मुकद्दर तो बस जद्दोजहद करना रह गया है।"[1]

तौफीक का लक्ष्य अपने देश की मुक्ति है। उसके मन में इस बात पर पूरा विश्वास है। फिर भी कभी वह अपने को लक्ष्य की प्राप्ति में असमर्थ पाता है, उसे लगता है कि वह कभी भी फिलिस्तीन की सीमा तो दोबारा निर्धारित नहीं कर पाएगा..... टुकडे टुकडे हुए फिलिस्तीन को कभी नहीं जोड पाएगा.... अपने आनेवाले कल में.... जब बरसों बाद उदास बेघर नस्लें अपनी सोच में सिर्फ फिलिस्तीन को देख पाएँगी और उसके बाद की आनेवाली नस्लें सिर्फ इतिहास की किताबों में फिलिस्तीन के बारे में जान पाएँगी।

तौफीक के मुँह से भेद निकालने का सेनाओं का प्रयास असफल निकला। इस पर क्रुद्ध होकर फौज़ी अफ्सर ने उसकी लाश को सरहद पर टाँग देने की आज्ञा की। तौफीक के मन में मौत से डर नहीं था। किसी भी हालत में वह भेद खोलने को तैयार न था।

फिलिस्तीन-इस्त्राइल के संघर्ष में परेशानियाँ भोगती जनता का चित्रण नासिराजी ने बडी सफलता से किया है। युद्ध या आतंक इनके जीवन का एक हिस्सा ही बन गया है।

1. इब्ने मरियम - नासिरा शर्मा - पृ. 34

इन कहानियों के अध्ययन से हमारे मन में युद्ध के प्रति तीव्र विरोध और निन्दा की भावना जन्म लेती है। अपनी आत्मा की बेचैनी सुनकर व्यवस्था के विरोध में शोर मचानेवाले क्लाड ईथर्ली से लेकर कब्रिस्तान के गुस्सालों तक की अन्तर्व्यथा हमारी आत्मा को छूती है। अमानवीयता की पुकार को अनसुनाकर मानवीयता की ओर वापस आए वासिली हमारे मन में आशा की किरण को छोडता है। युद्ध के अन्तहीन सिलसिले को समाप्त करने केलिए ये कहानियाँ प्रेरणा देती हैं।

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में युद्धजन्य साँस्कृतिक संकट

कथा-साहित्य के अन्तर्गत युधविरोधी इन कहानियों के साथ युद्ध के खिलाफ आवाज़ उठाये कुछ उपन्यासों को भी शामिल किया गया है। हिन्दी के उपन्यास साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डाले तो हम देखते है कि युद्ध काल में रचित उपन्यासों के मूल में स्वतंत्रता की भावना सक्रिय थी। क्यों कि यह अस्वतंत्रता का भी दौर था। द्वितीय महायुद्ध के पूर्वार्ध में अवरुद्ध हुई उपन्यास रचना उत्तरार्ध में पुनः जीवित हुई। किन्तु युद्ध विरोधी प्रवृत्तियों का समावेश स्वातंत्र्योत्तर काल में लिखित उपन्यासों में पाते हैं। इस दौर के खास उपन्यास है- यशपालकृत 'अमिता', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', गिरिराज किशोर का 'असलाह' और जगदीश चन्द्र का 'टुण्डा लाट।'

अमिता - विश्वशान्ति की खोज में लेखक का प्रयास

राष्ट्र का समुचित विकास समाज और उसकी सबसे छोटी इकाई मानव के विकास पर निर्भर है। स्वयं जिओ, और जीने दो वाले

आदर्श पर युद्ध हमेशा कलंक लगाता आता है। इससे व्यक्ति और समाज का समुचित विकास अवरुद्ध होता है, राष्ट्र के नव निर्माण में बाधा होती है। इससे बचने के लिए युद्ध के विध्वंस को समाप्त कर विश्व शान्ति के पथ को अपनाना है। मानवता के इस प्रयास में लेखक हमेशा साथ देता है। हिन्दी के प्रख्यात उपन्यासकार यशपाल द्वारा विरचित 'अमिता' उपन्यास में युद्ध की निरर्थकता के बारे में बताया गया है।

1956 में विरचित 'अमिता' की कथावस्तु हमारेलिए अपरिचित नहीं। इतिहास प्रसिद्ध मगध-सम्राट अशोक की कलिंग-विजय की कहानी है। इतिहास में यशपाल ने कल्पना का कोमल, मधुरमय, सामंजस्य कर युद्ध-विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना को स्वर दिया है। विश्व शान्ति आन्दोलन की प्रेरणा से विरचित यह उपन्यास भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहू को, 'विश्वशान्ति' के लिए किए गए उनके प्रयत्नों की सराहना में समर्पित है।

उपन्यास की भूमिका में वे स्वीकार करते हैं कि - आधुनिक मानव-समाज, युद्धों की आशंका को समाप्त कर सकना अपने बस के बाहर की बात नहीं समझता। इस युग का मानव-सामाज अंतर्राष्ट्रीय शान्ति की रक्षा के लिए राष्ट्रों की शस्त्र-शक्ति को संतुलित रखने की व्यर्थता को भी समझ चुका है। मानव-समाज यह भी देख रहा है कि विध्वंस की शक्ति को बढा सकने की कोई सीमा नहीं है और कोई भी राष्ट्र उस विध्वंस से अक्षुण्ण रह सकने का अहंकार नहीं कर सकता।

युद्ध के विध्वंस के सीधा भोक्ता सारे देश, शान्ति की स्थापना के लिए हमारे देश से ज़्यादा आतुर दिखाई देते हैं। युद्धों द्वारा अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने की विफलता और व्यर्थता को इसने भली-भाँति समझा भी है। निरर्थकता और विफलता का यही विचार प्रस्तुत उपन्यास का भी मेरुदंड है।"[1]

कलिंग-विजय के पश्चात्त अशोक का मन पश्चात्ताप से भर उठा, बुद्ध धर्म स्वीकार करके उन्होंने इसके प्रचार में अपना सारा जीवन समर्पित किया। यह तो इतिहास प्रसिद्ध तथ्य है। लेकिन यशपाल ने अपने उपन्यास में छह साल की एक छोटी सी मासूम लडकी की कथनी से अशोक का मनपरिवर्तन दिखाया है।

अमिता कलिंग राज्य की उत्तराधिकारिणी है। कलिंग के राजा की मृत्यू हो चुकी है। अमिता की माता महारानी नन्दा की, युद्ध में कोई दिलचस्पी नहीं। वे बौद्धविहार में जाना चाहती है। आचार्य सुकण्ठ ने अमिता को महारानी घोषिता किया। आचार्य और महासेनापति भद्रकीर्ति द्वारा राज्यरक्षा के लिए किया गया सारा प्रयास सेठ लोगों के षड्यंत्र से विफल हो जाते है। अशोक कलिंग पर विजय करते हैं, राज प्रासाद में दाखिल होते हैं। अमिता अशोक को कुत्ते की जंजीर से बाँधना चाहती है। अमिता के संवाद सुनकर अशोक स्तब्ध हो जाते हैं। उनका मन युद्ध से विचलित होता है। वे शिलालेखों के द्वारा अपनी प्रतिज्ञा की घोषणा भी करते हैं।

1. अमिता - भूमिका

'अमिता' में युद्ध -विरोधी स्वर बहुत ही ऊँचे स्वर में गूँज उठता है। 'अमिता' पर डॉ पारसनाथ मिश्र का कथन सही लगता है कि 'अमिता में गाँधीवादी हृदय परिवर्तन जैसे मार्क्सवादी यशपाल पर पूर्णतः हावी हो गया है। अपनी समग्र सचेतना और सजगता के बावजूद यशपाल गाँधीवाद के प्रभाव से नहीं बच सकते।' इतिहास को दोहराने की अपेक्षा समकालीन वातावरण में अहिंसा और युद्ध विरोधी पक्ष को उपन्यासकार उजागर करते हैं।

कलिंग में अशोक ने घोर विध्वंस किया। लोग भयचकित थे। नगर की छत के ऊपर से राजकुमारी अमिता ने देखा - 'नगर में अनेक स्थानों पर धुएं के काले बादल और अग्नि की आकाश को छूनेवाली लपटें उठ रही थीं। नगर का आकाश, काष्ठ, वस्त्र और अन्न के जलने की चरचरी गन्धों और भयातुर चीत्कारों से भरा हुआ था। नगर के पथों और गलियों पर अनेक नर-नारी अपनी गठडी-मुठडी उठाए इधर-उधर भाग रहे थे। दूसरे लोग हाथों में भाले और खड्ग लिए भागते लोगों का पीछा कर उनकी गठडी-मुठडी छीनकर उन्हें मार कर भूमि पर गिरा रहे थे। "यह दारूण दृश्य देखकर अमिता व्याकुल हो जाती है। ये कौन और क्यों लोगों से छीन रहे हैं, और इन्हें मार रहे हैं, इस तरह के विचार से वह बेचैन हो उठी।"

तब से अमिता का बदला हुआ रूप हमें नज़र आते हैं। छोटी-सी राजकुमारी कुत्ते की जंज़ीर लिए महाराज अशोक को बाँधने

1. अमिता - यशपाल - पृ. 242

केलिए दौड जाती है। दुष्ट अशोक शिशुओं के प्रति निर्दय है, वह शिशुओं को मारता है, राजप्रासाद के लोगों की इस तरह की चेतावनी को वह अनसुना करती है। उनके मन में सिर्फ एक ही प्रश्न उठता है, दुष्ट अशोक लोगों को क्यों मारता है।

अमिता सोचती है कि अशोक एक विकराल और सर्वग्रासी राक्षस है। क्यों कि इतने निर्मम और निर्दय ढंग से वे लोगों को मारते हैं । अशोक को पहचानने पर अमिता विस्मय से उनसे पूछती है, "तुम तो बहुत सुन्दर हो। तुम प्रजा से क्यों छीनते हो? तुम प्रजा को क्यों डराते है? प्रजा को क्यों मारते हो? तुम्हें क्या चाहिए? फल चाहिए, मिष्ठान्न चाहिए या खिलौने चाहिए? जो चाहिए लो? यहाँ सब कुछ है। हम तुम्हें सब कुछ देंगे।"[1]

अमिता के सवाल सुनकर अशोक विवश, अप्रतिम और मौन होकर खडा रहा। संपूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने की प्रतिज्ञा से यात्रा शुरु किया मगध का दुर्दान्त सम्राट बालिका के प्रश्न से परास्त होकर जाने को तैयार नहीं था। उसने उत्तर दिया, 'हमें कलिंग का राजसिंहासन चाहिए।' अमिता ने कहा, तुम माँगते हो तो ले जाओ।... क्या तुम्हारे पास राजसिंहासन नहीं है?.... तुम इसे ले जाओ, हम दूसरा ले लेंगे। अशोक ने हार मानी। वह कुत्ते की जंज़ीर अपने गले पर डालकर बोला अब अशोक तुम्हारा बन्दी है। अपने को राजकुमारी की बन्दी स्वीकार कर अशोक उनसे कुछ आदेश माँगते हैं। अमिता

1. अमिता - यशपाल - पृ. 249

अशोक को अदेश देती है कि "तुम किसी से छीनो मत! किसी को डराओ मत! किसी को मारो मत!"[1]

अमिता के आदेशों को आत्मसात करते हुए सम्राट अहिंसा सिद्धान्त के प्रचार करने का निश्चय करता है। महाविजय के बाद मगध की ओर लौटता अशोक ने देखा कि सारा देश नरमुण्डों और कंकालों से ढंका हुआ है। सब ग्राम और नगर, उजडी हुई और जली हुई बस्तियों से अर्धदग्ध शवों की भाँति जान पडा। जहाँ कहीं नर-नारी दिखाई देते, वे अति त्रस्त और दुखी थे। युद्ध से खुशी केवल शवों पर मंडराते गीधड, लकडबग्धे और कौए को होती थी। अपने को मनुष्य, देव अथवा प्रेत किसी पर अजय समझनेवाले सम्राट में अब इन दृश्यों को देखने का साहस नहीं रहा। इनसे आँखें बचाने के लिए उन्होंने हाथी की सवारी छोडकर आवरणों से ढंकी शिविका में यात्रा शुरु की। सडते हुए शवों की दुर्गन्ध से उनका मस्तिष्क चकराने लगा। इस दुर्गन्ध से सम्राट को बचाने के लिए उनके आगे-पीछे अनेक दास-दासियाँ सुगन्धें लेकर चलते रहे।

अमिता के मन में जो जो शंकाएँ उठती हैं, वे हम सबके मन में हमेशा उठनेवाली है।

साम्राज्यवादी शक्तियाँ किसी तरह की आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त होकर दूसरों पर हमला नहीं करते हैं। उनके पास सब कुछ है,

1. अमिता - यशपाल - पृ. 249

पढे-लिखे स्त्री-पुरुष, विस्तृत धन-दौलत, विज्ञान और तकनीकी के सभी आधुनिक साधन आदि। किन्तु साम्राज्यव्याप्ति के लक्ष्य को हासिल करने के लिए वे सारे के सारे अन्याय करते हैं। आम जनता को परेशान करते हैं। महाप्रतापी अशोक के साम्राज्य में न फल की कमी है, न मिष्ठान्न की कमी है, न विस्तृत धन-राशि की। लेकिन आवाम की दारुणता देखने की संवेदनापूर्ण दृष्टि की कमी उनमें है। प्रजा को छीनने से, प्रजा को डराने से, प्रजा को मारने से वे कुछ भी नहीं हासिल कर सके। अपनी अमानवीय हरकतों को पहचानने के लिए उन्हें एक छोटी सी लडकी की कथनी सुननी पडी।

चाहे आवरणों से ढंकी शिविका में यात्रा कर अशोक कुछ ही क्षणों के लिए युद्ध के भयानक और दारुण दृश्यों से अपनी आँखों को बचा सकते थे। सुगन्ध भरी वस्तुओं से सडी हुई लाशों की दुर्गन्ध से मुक्ति पाते थे, फिर भी उनके मन से आतंक-भरे अमानवीय दृश्य कभी नहीं ओझल हो जाते थे। अमिता के संवाद उनके कानों में हमेशा गूँजते रहे। युद्ध की निरर्थकता पर वे सोचने लगे। मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में लौटकर दूसरों का देश और धन न छीनने, किसी को न डराने और किसी को न मारने की कसम खाई और हिंसा के प्रति अपने पश्चात्ताप की व्यापक घोषणा कर दी।

भौतिक समृद्धि के बावजूद भी आध्यात्मिक विपन्नता के कारण हम युद्ध और आतंक का पीछा करता है। महात्माओं के आदर्शों को आत्मसात करने से इसकी विफलता हम समझ सकते हैं। युद्ध

निरर्थक है, व्यर्थ है। हमारे पास सब कुछ है। कमियों की पूर्ति के लिए युद्ध को अपनाना बेवकूफी है। किसी से कुछ छीनने से, उनको मारने से और डराने से अन्तिम तौर पर हमारी आत्मीय शान्ति नष्ट होती है। 'अमिता' की ओर से इस महान आशय की अभिव्यक्ति करके यशपाल समस्त मानव को विश्व शान्ति के पथ पर अग्रसर होने को प्रेरित करते हैं।

निर्मलवर्मा की युद्धविरोधी चेतना - 'वे दिन' के परिप्रेक्ष्य में

हिन्दी साहित्य जगत में निर्मल वर्मा की ख्याति एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार, निबन्धकार, यात्रावृत्त के रचयिता आदि विभिन्न रूपों में है। भारतीय संस्कृति के प्रति निर्मलवर्मा के मन में अटूट आस्था रही है। उनका मानना है कि आज की सभ्यता के संकट और प्रदूषण उस ऐतिहासिक क्षण से शुरु हो गया था, जब मनुष्य प्रकृति से अलग छिटक गया था। मनुष्य की अमानवीय हरकतों के कारण हम आज अणुयुद्ध का सामना करते हैं। अतः सभ्यता के संकट और सांस्कृतिक प्रदूषण के लिए मानव ही उत्तरदायी है।

निर्मलवर्मा की कृतियों में इतिहास से हमारा सीधा साक्षात्कार होता है। अख़बार की सुर्खियों और सेमिनारों की वातानुकूलित बहसों के बाहर इतिहास का चेहरा जितना यातनामय, उदास, भयानक, बीभत्स और नेत्रहीन होता है, इसका पता निर्मलजी के साहित्य से प्राप्त होता है।

'वे दिन' का कथाशिल्प अत्यन्त संक्षिप्त है। इस उपन्यास का हिन्दी साहित्य में अपनी अलग पहचान है। इसकी भूमिका में बताया गया है - इतिहास निर्मल वर्मा के कथा-शिल्प में उसी तरह मौजूद

रहता है, जैसे हमारे जीवन में लगातार मौजूद, लेकिन अदृश्य। युद्ध के त्रासद परिणामों से मानव जीवन में हुए दहशत का चित्रण इस उपन्यास में है। मानव के आपसी संबन्धों में ही नहीं, उसके अन्तरंग में भी युद्ध की विभीषिका से काली परछाइयाँ छा जाती है। व्यक्ति के मानसिक ओर शारीरिक तौर पर युद्ध का नकारात्मक प्रभाव होता है। वर्तमान पीढी ही नहीं आनेवाली सभी पीढियाँ युद्ध की परेशानी से मुक्त नहीं हो पाती है। आदमी - आदमी के आपसी संबन्धों में युद्ध से दरारें पड जाती है। युद्धोत्तर विभीषिका से उपजे मानवीय संबन्धों के क्षरण को निर्मलवर्मा ने 'वे दिन' में स्वर दिया है।

प्रतिष्ठित आलोचक ज्योतिष जोशी ने ठीक ही बताया कि "वे दिन' के साथ यह सुविधा है कि वह हिन्दी में अपने तरह का अलग उपन्यास है। युद्धोत्तर विभीषिका और उससे उपजे मानवीय संबन्धों के क्षरण के कारण एक अजीब कशमकश और उसी में क्षणों की वह आनन्ददायी अनुभुति कि जिसमें जीवन की संपूर्णता का बोध हो जाय, इस कृति की उपलब्धि है। नैतिक-अनैतिक सारे प्रश्नों से अलग, सबसे प्रडा प्रश्न होता है मानवीय रागात्मकता के निर्वाह का। भावों के सहकार और उसकी एकात्मकता में कहीं नियम आडे जाते है तो यह कतई आवश्यक नहीं कि उन नियमों की बिना परवाह किसी की ज़िन्दगी को किनारे कर दिया जाय।"[1]

1. दस्तावेज़ - जूलाई-सितंबर 1999

'वे दिन' का नायक 'मैं' है जिसका कोई नाम नहीं बताया गया है, वह स्वयं वाचक भी है। उपन्यास की कथा होटल योरुपा और उसके परिवेश के आसपास चलती है। 'मैं' प्राग के रहनेवाला है। आस्ट्रिया से आनेवाले जर्मन पर्यटक को प्राग के कुछ स्थानों से परिचित कराने केलिए वाचक 'मैं' जाता है। टूरिस्ट एजेन्सी का मुखिया गाइड उन्हें सह दुभाषिया का काम सौंपता है। पर्यटकों में रायना रैमान और उसके पुत्र मीता के साथ 'मैं' का विशेष परिचय होता है। मैं के साथ रायना प्राग के कई महत्वपूर्ण स्थानों में जाता है और वे एक दूसरे के निकट आते हैं।

वाचक मैं छात्रावास में रहता है, उनके साथ तीन और मित्र भी है, बर्मी छात्र टी.टी नाम से बुलानेवाला थानथुन, फ्रांज पेटर और उसकी प्रेमिका मारिया। 'इन पात्रों के ज़रिए उपन्यासकार ने 'वे दिन' में प्रेम की संकुल भूमि और युद्धोत्तर दहशत के परिवेश की छाया दर्शायी है। छाया इस अर्थ में मानना चाहिए कि युद्ध के यहाँ दृश्यबिंब नही है, वरन, उसके बचे- खुचे प्रभाव का आतंक है।'

अपने पति जाक से रायना किसी गलतफहमी के कारण बिछुडी रहती है। बालक मीता माँ-बाप दोनों के साथ अलग अलग रह लेता है। रायना स्वभाव में अत्यन्त विनम्र औरत है, लेकिन वह अत्यन्त ययावर है। लगता है कि जाँक से रायना का संबन्ध सिर्फ इसीलिए टूटा होगा कि अक्सर रायना की यायावरी वृत्ति उसे पसन्द न आई होगी। वह कल पर कम आज पर अधिक विश्वास करती है।

जाँक की स्थिति इससे विपरीत होगी। रायना की भूमि पश्चिमी है और सोचने विचारने के मामले में वह कुछ ज़्यादा परिपक्व है। उसकी यायावरी सोत और जीवन-व्यवहार को निर्मल ने इस तरह दिखाया कि लगता है-रायना की अपनी चिन्ता एकदम दुरुस्त है।'

रायना का स्वभाव अत्यन्त विचित्र लगता है, वह ज़्यादा दिनों तक अकेले न रह सकती। जिस किसी के साथ वह रहती है, उसे तुरन्त भूल जाना भी चाहती है। जाक के साथ की ज़िन्दगी उसे 'कांनसन्ट्रेशन कैंप' में रहने के समान लगती है।

रायना और मैं एक समान है, दोनों उसी क्षण को सत्य ओर विश्वसनीय मानते है, जिसमें वे जी रहे है, उसके बाद के पल के वे भूल जाना चाहते हैं।

जर्मनवाले फ्रांस और चेक के मारिया एक दुसरे से प्रेम करते है और प्राग से बाहर जाकर रहना चाहते हैं। प्राग से बाहर जाने केलिए फ्रांज़ को अनुवंश पत्र की ज़रूरत है। शादी हो जाने पर ही मारिया फ्रांज़ के साथ जा सकती है। किन्तु फ्रांज़ एक दिन अकेला ही चल जाता है।

पाँच परिच्छेदों में विभक्त इस उपन्यास का अन्त और आरंभ एक-सा लगता है। आरंभ का संघर्ष अन्त तक रह जाता है। उपन्यास के पात्रों में बदलाव न होते हैं, स्थितियाँ भी नहीं बदलती है।

वे दिन में युद्ध के दृश्यबिंब नही, उसका सीधा साधा वर्णन भी नहीं। लेकिन उसके शेष बचे आतंक का प्रभाव इसमें है। दो

महायुद्धों ने मानव की मान्यताओं और रीति रिवाज़ों को धराशयी कर दिया। सारे मानवीय मूल्य अपनी परिभाषा खोने लगे। संसार भर के मानव मन में एक विशेष किस्म के भय, संत्रास और बेचैनी ने जन्म ली। इस बेचैनी ने व्यक्ति में एक विशेष मनस्थिती की पैदाइश की। रायना की स्वतंत्र और विशेष प्रकार की मनोवृत्ति इसी की उपज है।

अत्यन्त विनम्र और सरल स्वभाववाले होने पर भी रायना अधिक विचित्र किस्म की है। वह ययावर है, स्वतंत्रता की चाह करनेवाली है। आदत की इसी विचित्रता के कारण उसका पारिवारिक जीवन असफल रहा। "वे लोग घरेलू ज़िन्दगी में खप नहीं पाते। जाक ऐसा ही था, जब मैं उसके साथ रहती...... मुझे कभी कभी लगता था, जैसे हम दोनों अब भी किसी कॉन्सेंट्रेशन कैम्प में रह रहे है.... एक ही घर में। उसके बाहर जाक-वह जीवित नहीं था.... मैं भी नहीं। हम सिर्फ उसमें रहकर जी सकते थे.... लेकिन मैं नहीं रह सकी। एक दिन मैं बाहर आ गई - यह जानते हुए भी कि बाहर मैं किसी काबिल नहीं रह गई हूँ......"[1]

जाक उन थोडे बहुत आदमियों में था, जिन्हें कांन्सन्ट्रेशन कैंप से छोडकर फैक्टरी में लगा दिया था। जैक और रायना जब से जीना शुरु किया, तब उसने नहीं सोचा कि लडाई खतम होगी। वे दोनों साथ साथ रहने लगे, लेकिन जीवन में खुशी को वे कभी भी महसूस न कर सके। दोनों को हमेशा लगता था कि उन्होंने कोई चीज़ हमेशा

1. वे दिन - निर्मल वर्मा - पृ. 243

केलिए खो दी है..... एक अजीब-सा डर उनके मन में छाया हुआ था। रायना बताती है कि घर की शान्ति से वे हमेशा डरते थे। कोलोन में हमने कभी नहीं सोचा था कि हम जीवित रहेंगे। मरना तब बहुत पास था और आसान भी। हम शायद इसीलिए साथ रहने लगे थे।

समाज में दो प्रकार के लोगों को देखा जाता है - शन्तिकामी और युद्धकामी। युद्धकामी हमेशा शासकवर्गों में शामिल नज़र आते है। आम आदमी हमेशा शान्ति से रहना पसन्द करते है। लेकिन न चाहने पर भी उन्हें युद्ध में भाग लेना पडता है, युद्ध की विभीषिका को झेलना पडता है।

युद्धानन्तर दो तरह के लोग शेष बचे जाते है कुछ खो जाने के बाद अकेले रहनेवाले आदमी और युद्ध में घायल पंगु आदमी। दोनों को बहुत-सी परेशानियाँ भोगनी पडती है। एक की परेशानी शारीरिक है, दूसरे की मानसिक। दोनों सालों गुज़र जाने के बाद भी इन परेशानियों से मुक्त नहीं हो पाते है।

युद्ध में सैकडों-लाखों लोगों की मृत्यू होती है, धन, धरती और चीज़ों की हानि होती है। मृत्यु से बचे लोग अपनी जान को लौट मिलने में तसल्ली महसूस करते हैं। लेकिन उनका प्राण मात्र वापस मिले है। मन से वे जड सा होता है। वे हमेशा अशान्त और बेचैन रहते हैं।

वे दिन में युद्ध की त्रसदी के प्रत्यक्ष भोक्ता है, परोक्ष भोक्ता भी। इनकी परेशानियाँ शारीरिक नहीं, बिल्कुल मानसिक धरातल की है। "लडाई में बहुत लोग मरते हैं-इसमें कुछ अजीब नहीं है, लेकिन

कुछ चीज़ें है, जो लडाई के बाद मर जाती है-शान्ति के दिनों में... हम उनमें से थे।"[1] रायना का यह कहना बहुत सी गहरी सोच को हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

रायना वीयना के रहनेवाली थी। वह छुट्टियों के दिन प्राग आती है। लेकिन उनकी मानसिकता बिल्कुल अजीब दीखती है। प्राग में रहकर वह काफी देर वियना के बारे में सोचती रही। मैं के साथ बीते क्षणों में रायना को उतनी आत्मीयता महसूस होती है कि उसे कभी कभी लडाई के पहले के दिनों की याद होती है। क्योंकि लडाई के पहले ही वे जीवन में सुख, खुशी और शान्ति महसूस करती थी। लडाई के दहशत और त्रासदी ने उसके जीवन को ज़्यादा परिवर्तित कर दिया। लडाई ने उसे आयू से ज्यादा परिपक्व बनाया है। इसलिए वह अपने को आयू से ज्यादा वयस्क समझती है। अगर लडाई के साल उनकी ज़िन्दगी के बीच में से निकालेगा तो वह अपने को बहुत ही छोटी मानती है। लडाई ने उसकी मानसिकता में उतना ही परिवर्तन ला दिया है। मैं और रायना के बीच का वार्तालाप इसका सीधा प्रमाण प्रस्तुत करता है - मैं बताता है - तुम उसके बारे में नहीं सोचते जो तुम पीछे छोड आये हो। तुम उसके बारे में सोचने लगते हो, जो तुम्हारे साथ है, लेकिन अपने शहर में तुम उसके बारे में नहीं सोचते... "एक क्षण चुप रहकर उसने धीरे-से मुस्कुराकर कहा, कल शाम जब हम स्केटिंग रिंग में थे, तब मुझे बहुत पहले के दिन याद हो आये थे-लडाई के पहले के

1. वे दिन - निर्मल वर्मा - पृ. 243

दिन। उन दिनों स्केटिंग केलिए हम साल्सबुर्ग जाते थे। तब मैं बहुत छोटी थी।...... तुम अब भी बहुत छोटी लगती हो। मैं ने हँसने की कोशिश की। मैं ने सोचा था, वह उन लडकियों की तरह विरोध करेंगी जो उम्र में बडी हो जाती है, लेकिन बच्चों की तरह विरोध करती है। किन्तु उसने ऐसा कुछ नहीं किया। वह गंभीर आँखों से मुझे देखती रही। हाँ, मैं सचमुच काफी छोटी हूँ.... अगर तुम लडाई के साल बीच में से निकाल दो और वे सब साल, जो बाद में आए थे।"[1]

युद्ध की विभीषिका का भोक्ता दूसरा प्रमुख पात्र है फ्रांज़। फ्रांज़ का बचपन लडाई के दिनों में गुज़ारा था। लडाई के दहशत के प्रभाव से उपजी मानसिकता से वह अब भी मुक्त नहीं हो पाता है। हमेशा लडाई का भय और आतंक उसका पीछा करता रहता है। उनकी मानसिकता एकदम भिन्न, अजनबी और दुरुस्त जान पडती है। प्राग में रहना वह पसन्द नहीं करता है। वह बर्लिन जाने की तैयारी में है। अक्सर लोग जो घर जाते है, क्रिसमस की छुट्टियों में जाते है। लेकिन फ्रांज़ जब बर्लिन जाने को तैयार होते है, क्रिसमस के बाद जाने के बारे में सोचता है। उनको इन दोनों के बीच विशेष फर्क नहीं महसूस होता है।

खुशी भरे दिल से ही लोग क्रिसमस मना सकते हैं। युद्ध की भयावहता और आतंक से अपने को मुक्त न पानेवाला कैसे क्रिसमस की खुशी मना सकते हैं।

1. वे दिन - निर्मल वर्मा - पृ. 141

फ्रांज़ का व्यक्तित्व बिल्कुल अजनबी जान पडता है। 'उनके बाल हल्के-से सुर्ख थे। हम अक्सर उसके बालों को लेकर मज़ाक करते थे। 'यह असली एरियन रेज़ की निशानी है।' टी.टी कहा करता था। अगर वह हिटलर के समय में इतना वयस्क होता जितना आज है, तब अपने को कैसे निभा पाता।' फ्रांज़ अपने पिता के बारे में हमेशा चुप रहता था। उसकी माँ, दूसरी शादी के बाद पश्चिमी बर्लिन में बस गई। साल में एक बार क्रिसमस की छुट्टियों में वह माँ से मिलना चला जाता था। जाते वक्त वह लडाई के बारे में कुछ घटनाएँ सुनाता था। उनके कथन में ऐसी तटस्थता रही थी कि सुननेवाले को यह निश्चय नहीं हो पाता था कि वह लडाई के बारे में बता रहा है, जिसमें उसका बचपन गुज़ारा था, या अपने बचपन के बारे में जिसमें उनकी लडाई गुज़री थी।

फ्रांज़ और मारिया के प्रेम संबन्ध में जो दरारें पड गयी, उसका सीधा संबन्ध भी महायुद्धोत्तर भयावहता से जुडा हुआ है। फ्रांज़-मरिया दोनों में प्रेम था, एक दूसरे को पाने की उत्कंठा भी। 'पर क्यों फ्रॉंज़ मरिया से शादी करके अनुवेश पत्र नहीं ले लेता? आलोचक इस प्रेम संबन्ध की पराजय के पीछे चेक-जर्मन के पुराने संघर्ष को देखते है। "मुझे लगता है कि इस संबन्ध की जटिलता में चेक और जर्मन की पुरानी स्थिति कायम रही है, जिसमें दोनों देशों के बीच भयंकर तनाव रहा है। जर्मनी ने तो चेकोस्लोवाकिया के अस्तित्व को ही मिटा दिया था। वह महज जर्मनी का उपनिवेश बनकर रह गया था। मारिया को पत्नी बनाकर ले जाने में यही कठिनाई है फ्रांज़ केलिए।

उसके पास जर्मन प्रश्नों के जवाब नहीं होंगे। दोस्ताने ढंग से वह जर्मनी जा सके, यह वहाँ के अधिकारियों को मंजूर नहीं।"[1] इस प्रसंग की अभिव्यक्ति निर्मलजी ने एक प्रसंग में की है -

'वे उसे वीसा क्यों नहीं दे रहे है?' टी.टी ने पूछा।

मुझे कुछ समझ में नहीं आता। फ्रांज़ ने कहा। उसके स्वर में एक छोटा सा खिंचाव चला आया था, जो सिर्फ ज़्यादा पीने से ही आता था। लगता था, वे सुबह से पी रहे थे।

लेकिन तुम वापस आ रहे हो..... शायद अगले साल मुमकिन हो सके। मैं ने कहा।

अगले साल। 'फ्रांज़ धीरे से हँस पडा, बहुत अप्रिय ढंग से।

'मुझमें अम्र सब्र नहीं है।

वह पिछले दो साल से कोशिश कर रही है। 'उसने कहा। यह शायद वही सीमा थी, जिसके आगे कोई किसी की मदद नहीं कर सकता था। लगता था, कोई बाहर का फंदा है, जिसकी सब गाँठें, सब सिरे, दूसरे के हाथों में है....... जिन्हें हम देख नहीं सकते।

बेकारी और दुर्भिक्ष - युद्ध का पर्याय

बेकारी और दुर्भिक्ष आज युद्ध का पर्याय सा बन गया है। युद्ध के दौरान आवश्यक सामग्रियों का हमेशा अभाव होता है। भूख के कारण अक्सर लोग मरते है, कभी, ज़्यादा दिनों तक भूख से तडपना

भी पडता है। वाचक मैं युद्ध के दौरान कोलोन में था। कोलोन में इस समय सख्त सर्दी थी। युद्ध के ज़ारी रहने के कारण लकडी नहीं मिलती थी। तब वे सूखे पत्ते जलाकर रात काट लेते थे।

रायना का बचपन वीयना में गुज़रा था। लडाई के आखिरी दिनों में रायना कोलोन में रहती थी। इन दिनों में ज़िन्दगी गुज़ारने में इन्हें बहुत तकलीफ हुई। कई हफ्ते उन्हें भरपेट भोजन भी नहीं मिलता था। तमाखू और सिगरटों के बारे में सोचना भी असंभव था...... वे देखने को भी नहीं मिलती थी। उन्हीं दिनों वहाँ मेरी मुलाकात एक विचित्र आदमी से हुई थी। वह पोल था। "हम एक ही बैरक में रहते थे। मैं ने उसे कभी उदास नहीं देखा। जब कभी महीनों बाद हमें चोरी-चुपके सिगरेट मिल जाती, तब हमारे सुख की सीमा नहीं रहती थी।"[1]

बेकारी की समस्या भी लोगों को ज़्यादा जूझती थी। प्राग में अपने अस्तित्व को बनाने में फ्रांज़ असमर्थ निकलता है। इस असमर्थता के पीछे उनकी बेकारी है। अठाईस वर्ष का अपना जीवन वह एक पराजय मानता है। वह बताता है - "मैं निश्चिन्त नहीं हूँ कि मैं वापस प्राग आ सकूँगा। मैं यहाँ नहीं रह सकता। इस किंटर गार्टन में! तुम मेरी उम्र जानते हो?

युद्ध का दहशत और उसकी भीषणता हमेशा वे दिन के पात्रों का पीछा करता रहता है कि साधारण-सी घटना के समान युद्ध इनके बातचित में भी आता है -

---

1. वे दिन - निर्मल वर्मा - पृ. 266

मैं ने खिडकी से बाहर देखा। बादल उड रहे थे। हास्टल की दीवार पर बूँदें गिर रही थी। इतनी बारिश में जब मैं बाहर जाने को तैयार हुआ, टी.टी उसे रोकता है। वातावरण देखने से क्रिसमस ईव का पता भी नहीं चलता है। वह टी.टी से पूछता है - इस बार सर्दी ज्यादा नहीं पडी.... कल क्रिसमस ईव है, लेकिन पता बिल्कुल नहीं चलता। टी.टी ने कहा। हवा से खिडकी खुल गई। पर्दा फडफडा रहा। कुछ बूंदें भीतर आइ थी। टी.टी ने उठकर खिडकी बन्द कर दी!

टी.टी! मैं ने कहा, तुम कभी लडाई के बारे में सोचते हो?

आनेवाली लडाई के बारे में? उसने पूछा।

नहीं जो बीत चुकी है। "मैं ने हँसकर उसकी और देखा। फ्रांज़ जब उसके बारे में कुछ कहता है, मुझे हमेशा हैरानी होती है। रेडियो में अब एक पुराने जैजं का रिकार्ड बज रहा था, बाहर अब शान्ति थी। लगता था, दिन खुल रहा है।

तुम्हें लडाई कैसे याद आ गई? उसने मुस्कुराकर मेरी ओर देखा।

पता नहीं । सुनो यह अजीब है। कल हम हम पहाडी के ऊपर से प्रण दिख रहे थे, तब मैं ने सोचा था।

ऐसा होता है। 'टी.टी ने गंभीर स्वर में कहा। कभी ऊपर चढकर हमें ऐसी बातें खटकती है, जिन्हें हम नीचे नहीं सोचते। एक बार मैं टावर पर चढा था.... तुम जानते हो.... उस दिन मैं ने पहली

बार मरने के बारे में सोचा था। मुझे काफी हैरानी हुई थी, क्योंकि उससे पहले मैं ने कभी नहीं सोचा था कि मृत्यु भी कोई आनेवाली घटना है।

जब उपन्यास के कोई पात्र किसी समय के संबन्ध में बताते है, युद्ध के समय से तुलना करके (युद्ध के कालक्रम के पीछे या अगे, इसी प्रकार) बताते हैं। युद्ध उनके जीवन में ऐसी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

रायना से मैं पूछता है आप बुदापेस्ट गई है?

वे बताती है - बहुत पहले। लडाई से पहले के दिनों में मैं तब बहुत छोटी थी।

मैं - पहली लडाई के पहले यहाँ बहुत सी युवतियाँ आती थी। अब वे बूढी हो गई है।"[1]

युद्ध की त्रासदी और भयावहता से रायना का जीवन इतना जुडा हुआ है कि पति जाक के साथ की ज़िन्दगी रायना को हिटलर के कॉन्सन्ट्रेशन कैंप में रहने के समान लगती है।

नई पीढी में युद्ध के आतंक की भयानकता उतनी नहीं, जितनी पुरानी पीढी में है। क्यों कि आज की पीढी साहसिकता पसन्द करती है। तोप, टैंक, बुल्लट आदि उनकेलिए भय के निशान नहीं, बल्कि साहसिकता के निशान है। इसलिए जब बाज़ार में इनका छोटा

1. वे दिन - निर्मल वर्मा - पृ. 59-61

नमूना मिलता है, वे इसे खरीदने का हठ करते हैं। हर एक बच्चे के हाथ में आज गुडिया नहीं, इनके स्थान पर बन्दूकें और टैंकों के मांडलस है। उपन्यास में नई पीढी का प्रतिनिधि पात्र है रायना का बेटा मीता। खिलौनों की दुकान में नज़र आये छोटे छोटे गुड्डे रायना को पसन्द आती है। वह सोचती है, मीता इन्हें नहीं चाहता है। उसे यह बहुत अजीब लगती है। मीता को बन्दूक जैसी चीज़ें ही अच्छी लगती है। लेकिन रायना इन्हें नफरत की दृष्टि से देखती है।

युद्ध की त्रासदी से मुक्ति पाने केलिए प्राग के लोग शराबी दूकान में शरण लेते थे। उपन्यास में प्राग का चित्र निर्मल वर्मा प्रस्तुत करते है - नैशनल स्ट्रीट, वैसलेस स्कवायर, म्यूजजियम.... बर्फ में ढँकी तारें, गीली सडकों पर चमकती ट्राम की लाइनें, नाइट क्लब के आगे खडे लोग, फुटपाथ पर अकेली चलती हुई कोई स्त्री...... शराबियों की चीखें.... यह आधी रात का प्राग था। टी.टी से वाचक मैं का मिलन शहर के किसी बदनामी नाइट क्लब के सामने होती है। बेहोशी हालत में लेटे टी.टी को मैं उठाकर उसके होस्टल पहूँचाते है। यह तो वाचक केलिए एक असाधारण दृश्य नही था, क्योंकि हर रात जब मैं दूसरों को या, दूसरे मुझे ऐसी स्थिति में देखते थे, तो उठाकर होस्टल ले जाते थे।

वे दिन के सभी पात्र युद्धोत्तर भयावहता के भोक्ता है। न चाहने पर भी युद्ध हमेशा इनकी ज़िन्दगी का पीछा करता है। इसकी भयानकता से मुक्ति पाने का इनका प्रयास व्यर्थ निकल जाता है।

टुण्डा लाट - जगदीश चन्द्र का उपन्यास
देश की सीमांत पर तैनात फौजी जीवन का दस्तावेज़-

युद्ध शब्द का बोझ ज़्यादा भयानक है। उससे उत्पन्न ज़िन्दगी की त्रासदी अत्यन्त पाशवीय है। करोडों की आशा-अभिलाषाओं पर यह काली परछाइयाँ डालता है। युद्ध से संबद्ध हर व्यक्ति को टूटे हुए सपनों के साथ ज़िन्दगी बिताना पडता है।

युद्ध एक सामाजिक समस्या है, वैयक्तिक भी। शारीरिक और मानसिक रूप से यह व्यक्ति को परेशान करता है। क्षत-विक्षत तन और आहत मन से उसे अपना जीवन काटना पडता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के नामी उपन्यासकार जगदीश चन्द्र का 'टुण्डा लाट' युद्ध द्वारा ज़िन्दगी की वीरान भूमि में छोडे गए एक आदमी की अन्तर्व्यथा की कहानी है। युद्ध में भाग लेकर वह अपना दायाँ हाथ खो देता है। जीवन की सबसे बडी अभिलाषा को पूर्ण करने में इससे वह असमर्थ निकलता है। आशा के सारे किरणों का आँखों से दूर होने के कारण वे अपनी ज़िन्दगी को अन्धकार में पाते है।

उपन्यास के नायक सुनील के जीवन की सबसे बडी अभिलाषा एक वयलनिस्ट बन जाना है। वह फौज में इमर्जेंसी कमीशन में काम करनेवाला था। फौज़ से छुट्टी मिलते वक्त एक म्यूसिक स्कूल में उसकी भर्ती होती है। लेकिन बीच में आर्मी से बुलावा आता है कि देश-सेवा के लिए उसे युद्ध क्षेत्र जाना पडता है। युद्ध छिडते छिडते

उनके दायें हाथ पर गहरी चोट लगी। उसे अपना हाथ गंवाना पडा। अपने टूटे हाथ के साथ वह म्यूसिक स्कूल लौट आते हैं। वायलिन बजाना बहुत सी मुश्किल जान पडता है। वह अपने मोह को सदैव के लिए छोड देता है।

म्यूसिक स्कूल की छात्रा रोमिला को सुनिल बहुत ही प्यार करता था। रोमिला भी सुनिल को चाहती थी। लेकिन जब वह जान लेती है कि सुनिल का हाथ काटा गया है, आर्मी में उसका कोई काम नहीं, रोमिला उससे अलग हो जाती है। वह अपनेलिए अलग रास्ता ढूँढ लेती है।

आरमी से जब सुनिल को तार मिल जाता है कि तुरन्त ही वापस जाकर जाइन करना है। यह तार पाकर सुनिल बहुत ही बेचैन होने लगा। क्यों कि उसका संगीत कोर्स पूरा होने में केवल छह महीने ही रह गए थे। यह ख्याल आते ही वह निराश हो गया कि उसका ढाई साल का श्रम और साधना व्यर्थ हो जा रहे हैं।

युद्ध क्षेत्र गए सुनिल के सारे के सारे सपने टूट जाते हैं। वह मानता है कि युद्ध को आम आदमी उसके बाद भूल जाते हैं, लेकिन उनकेलिए वह ऐसा एक अनुभव नहीं, जिसे एक रात से भूल सकते हैं। क्यों कि लडाई के अनुभव वह हर रोज़ भोगता रहता है। "मैं अपने उन साथियों में शामिल हो जाता तो मुझे भी वीरगति प्राप्त हो जाती, लेकिन मैं जीवित रहकर भी जीवन से बाहर निकाल दिया गया है।"[1] सुनिल अपनी हालत और एक विधवा की हालत में ज्यादा

1. टुण्डा लाट - जगदीश चन्द्र - पृ. 199

समानताएँ महसूस करता है। वह सोचता है कि उसकी हालत परंपराओं और रूढियों में बंधी उस युवा विधवा की तरह है, जिसके पास कुन्दन सा शरीर तो है, लेकिन उसे अँधेरे में छिपाकर और जीवन के पहाड जैसे बोझ के नीचे दबाकर रखना ज़रूरी हो गया है।'

हाथ कट जाने के कारण सुनिल को आर्मी में काम करना मुश्किल हो गया है। आर्मी को अपंगु आदमी की ज़रूरत नहीं। हाथ कट जाने के कारण वह वायलिन भी नहीं बजा सकता है। वायलनिस्ट बन जाने के अपने मोह को अधूरे छोड देने के लिए वह मज़ब्रूर हो जाता है। अपने व्यक्तित्व को सुनिल अधूरा महसूस करता है। इस अधूरेपन के एहसास के साथ वह हर पल काटता है। सुनिल का विचार है, "शायद मुझे छोटी छोटी नौकरी भी मिल जाएगी। कोशिश करने पर शायद शादी भी हो जाएगी। दुनियावी अर्थों में शायद मैं एक सफल व्यक्ति बन जाऊँ, लेकिन मेरा अपना व्यक्तित्व हमेशा अधूरा रहेगा।"[1]

सुनिल अपने इस हालत के लिए ज़िन्दगी और मौत दोनों को उत्तरदायी समझता है। "मौत ने मुझे ज़िन्दगी की ओर उछाल दिया और ज़िन्दगी मुझे बेकार समझकर स्वीकार करने से इंकार कर रही है।' अब मेरेलिए न भरपूर ज़िन्दगी है, न भरपूर मौत है।"[2]

सुनिल को लगता है कि उसके अन्दर छिपा हुआ सैनिक मर गया है। वह 'साँग आफ लाइफ' कंपोज़ करके अपने मित्रों को

1. टुण्डा लाट - जगदीश चन्द्र - पृ. 242
2. वहीं - 231

समर्पित करने का फैसला करता है। अपनी नई हालत से समझौते करने में सुनिल बहुत ही कठिनाई महसूस करते हैं। "मन को हल्का करने के लिए रो देने के बावजूद वह सिहर उठता था, जैसे किसी दुस्वप्न से जूझ रहा है। मन हटाने के लिए अस्पताल के रोशनदान में बैठे कबूतरों के जोडे की गुटरंगूं को फिर सुनने की कोशिश करने लगा। लेकिन उसकी कल्पना में कबूतरों की मधुर गुटरंगूँ पर कभी टैंक के गोलों का विस्फोट, कभी उनके इंजनों की धूँ-धूँ, और कभी टैंक के गोलों का विस्फोट, और कभी नीची उडान भरते हवाई जहाज़ों का आकाश की छाती फाडनेवाला शोर छा जाता था, और उसकी उदासी और भी गहरी हो जाती थी।"[1]

युद्ध क्षेत्र से वापस आए सुनिल से रोमिला दूर रहती है। वह सुनिल से शादी करना चाहती थी। आर्मी में जाईन करते समय उसे खत भी लिखा करती थी। रोमिला सुनिल से ज़्यादा उसके ओहदे को बहुत मानती थी। उसके पत्रों से इस प्रात काठीक पता चलता है। वह सुनिल को 'कैप्टन' कहकर संबोधित करती थी, जो सुनिल को उतना अच्छा न लगता था। लौट आए सुनिल से उनका कहना है, 'मैंने तो सोचा था कि तुम एक हीरो की तरह आओगे। बहुत सी कहानियाँ अपने साथ लाओगे और.... और.... और....'। इस तरह युद्ध और उसकी त्रासदी ने प्रेमिका से भी उसे अलग कर दिया।

म्यूसिक स्कूल से युद्ध क्षेत्र पहूँचे सुनिल को वह इलाका बडे मरघट की तरह नज़र आ रहा था। जगह-जगह आग लगी हुई थी

1. टुण्डा लाट - जगदीश चन्द्र - पृ. 183

और घना धुआँ ऊपर उठ रहा था। "एक ही रात में दुश्मन और हम इतने थक गए थे कि दोबारा हमला करने का दोनों में से किसी को भी हौसला ही नहीं रहा। टैंक के निचले भाग में गोला लगा और उसका एक स्प्लिंटर उसके हाथ सुनिल के हाथ को चीरता हुआ निकल गया। सख्त जख्म और पाँव में स्प्रेन के बावजूद वह चार किलोमीटर रेंगते रहा।"[1]

लडाई के अमानवीय और दारुण दृश्य हमेशा सुनिल का पीछा कर रहा है। मिलिट्री अस्पताल में पडे सुनिल की आँखों के सामने लडाई के संहारक दृश्य घूम रहे थे। "गोले उसके कानों में फट रहे थे और आग के शोले उसे लपेटते हुए आकाश की ओर लपक रहे थे और फिर ज़मीन पर ला पटकते थे।"[1]

युद्ध के प्रति सभी लोगों का दृष्टिकोण एक सा नहीं होता। युद्ध कुछ लोगों के लिए साहस का काम है, कुछ के लिए त्रासदी है, कुछ के लिए यह अखबारों की सुर्खियों के अलावा कुछ भी नहीं। 'दुनिया में कुछ लोग युद्ध-क्षेत्र में पडकर खतरे उठाएँगे, सर्वस्व त्यागेंगे, दुख झेलेंगे ताकि बाकी लोग सुख और शान्ति से जीवन बिता सकें। यही संसार का कायदा है।' लडाई के वक्त व्यर्थ और निरर्थक चर्चाएँ करके समय व्यतीत करनेवालों की खोखली मानसिकता की ओर उपन्यासकार इशारा करते हैं। उनके लिए लडाई समाचार पत्रों के बडे

1. टुण्डा लाट - जगदीश चन्द्र - पृ. 183
2. वहीं

बडे अक्षरों और ताज़ा खबरों के अलावा कुछ भी नहीं। फिर भी काफी हाऊस में सिगरट सुलगते क्षणों में वे लडाई के बारे में गरम गरम चर्चाएँ करते हैं।

रोमिला के मन में लडाई के बारे में ज़्यादा तनाव है, क्योंकि लडाई से ज़्यादा उसकी चिन्ताएँ सुनिल पर केन्द्रित है। लडाई के बारे में ताज़ा से ताज़ा खबर जानने के लिए वह हरेक अखबार पढती है, स्पेशल न्यूस बुलटिन सुनती है, फिर भी तसल्ली नहीं मिलने के कारण वह रोज़ मित्रों के साथ काफी हाउस जाती है। काफी हाउस में अजीब वातावरण है। "ब्लाक आउट के बावजूद काफी हाउस खचाखच भरा रहता है। सैकडों की संख्या में सुलगते सिगरेट देखकर ऐसा एहसास होता है कि पत्थर और चूने के जंगल में जुगनू टिमटिमा रहे हैं। दम घुटता है जैसे युद्ध में उडनेवाला सारा धुआँ वहाँ इकट्ठा हो गया हो। कॉफी के खाली प्यालों और गिलासों में व्हिस्की डालकर उसे सिप करते हुए लोग लडाई के बारे में इस तरह बातें करते हैं, जैसे युद्ध का संचालन उन्हीं के जिस्मे हो।"[1]

शहर के लोग लडाई शुरू होने के बाद कुछ नए कामों में व्यस्त दिखाई दिए। अफवाहें गढने, फैलाने और फिर उनपर विश्वास करने के अलावा दुश्मनों के जासूसों और एजेंटों की पकड धकड का काम भी बहुत ज़ोरों से हो रहा है। इन मामलों में जनता में इतना जोश है कि इस शहर में रहनेवाले हर तीसरे आदमी को जासूस समझकर

1. टुण्डा लाट - जगदीश चन्द्र - पृ. 187

पकडवा सकते हैं। यह बुखार इस हद तक बढ गया है कि छोटे छोटे ब्चच्चे भी हाथों में पतली पतली लाठियाँ लिए गलियों और सडकों पर पहरा देते नज़र आते हैं।

लोगों के बीच लडाई के बारे में एक अनमना सा भाव है। शत्रू का सीधा आक्रमण उनपर नहीं होगा, इस विश्वास के साथ वे गरम गरम चर्चाएँ करता है, सिगरट सुलगाकर अपने तनाव को दूर करने का प्रयास करता है।

युद्धरत दुनिया में कई प्रकार के लोगों को देखे जा सकते है, युद्ध में भागी दोनों देशों के शासक लोग, अपने घर से दूर किसी अजनबी वातावरण में, जीवन को भी खतरे में डालकर लडनेवाले सैनिक, युद्ध से पीडित स्त्रियाँ, बच्चे, बूढे.... आदि, युद्ध क्षेत्र से काफी दूर इस पर गरम गरम चर्चाएँ करनेवाले लोग, जिनके मन में युद्ध से बिल्कुल निस्संग भाव रहते हैं।

घरवालों की मानसिकता

अपने साये से दूर देश रक्षा केलिए प्राणों की बाजी लगाने वाले वीर सैनिकों के घरवालों को तनाव-भरे मन से हरेक दिन काटना पडता है। इनकी मानसिकता पर उपन्यासकार बखूबी ढंग से प्रकाश डालते हैं।

सुनिल जब घर वापस आता है, परिवारवाले खुशी-भरे मन से उनका स्वागत सत्कार करते हैं। कुछ ही देर बाद पिता समझ लेते

है कि सुनिल का हाथ कट गया है। कटे हाथ को देखकर वह उदास हो गए। हे, भगवान, जैसी तेरी मर्जी! तूने मेरे बच्चे का वह हाथ ले लिया जिसपर किस्मत की लकीरें खिंची रहती है। माँ से यह बात बताने का 'निर्मम' काम सुनिल पिताजी को सौंपता है। लडाई की बातें सुनकर माँ एकाएक चौंक गई और फिर रोने लगी। पिता उसे समझाते हुए बोले, "हज़ारों देवियों के सुहाग उजड गए। हज़ारों के बुढापे के सहारे छिन गए। तुम उन लोगों की तरफ देखो और धीरज रखो।"[1]

सुनिल के पिताजी के दोस्त का एक बेटा था, वह फौज में काम करता था, लडाई में वह मर गए। उसका व्याह पिछले साल में ही हुआ था। उसके केवल चार महीने का एक छोटा बच्चा है। सुनिल के माँ-बाप उनके घर गए थे। वे दोनों यह सोचकर बहुत ही तसल्ली महसूस करते हैं कि उनके बेटे के प्राण तो बच गए है। भगवान ने ऐसी बदकिस्मत उनसे न दिखाई है।

सुनिल को देखने केलिए पडोसी लोग आए। सहानुभूति प्रकट करके वे चले गए। सुनिल के भाई और बहन ने उनकी इस स्थिति को सहज भाव से स्वीकार किया। माँ के मन का दुःख अभी बना हुआ था। सुनिल को बायें हाथ से खाना खाते देखकर उसकी आँखों में अनचाहे ही, और रोकने की स्पष्ट कोशिशों के बावजूद भी, आँसू झलकने लगते थे। "सुनिल जब दो-चार बार इसी कारण बीच में ही खाना छोडकर उठ गया तो माँ ने विवश हो दूसरा ढंग अपना

1. टुण्डा लाट - जगदीश चन्द्र - पृ. 209

लिया। वह सुनिल के लिए खाना परोसकर दूसरे कमरे में चली जाती और वहीं से बैठी-बैठी पूछ लेती कि उसे कुछ और तो नहीं चाहिए।"[1]

वक्त गुज़रने के साथ सुनिल के पिता का रवैया भी बदल गया। "वह आँगन में खडे ऊँची आवाज़ में कभी सरकार को गालियाँ देते कि अपने झूठे गौरव के प्रदर्शन के लिए वह लडाइयाँ लडती है और लोगों के घर उजाडती है; कभी युद्ध की निन्दा करते और कभी अपनी किस्मत को कोसते।"[2]

जगदीशचन्द्र के प्रस्तुत उपन्यास में इस तरह युद्ध के खिलाफ तीव्र आलोचना की अभिव्यक्ति हुई है। यह तो एक सैनिक का आत्मालाप है, उनके बिगडे सपनों और टूटी हुई आशाओं का दस्तावेज़ है। उनकी संगीतयात्रा में रुकावट डाली गई लडाई उनकी ज़िन्दगी को भी बरबाद करती है। टूटे हाथ और घायल मन से वह अपनी ज़िन्दगी गुज़ारता है।

असलाह - साम्राज्यवाद का सख्त विरोध करनेवाला उपन्यास

युद्ध आधुनिक युग की एक संस्कृति बन गया है। हथियार-संचय करके साम्राज्यवादी शक्तियाँ युद्ध को बढावा देता है। युद्ध को बनाए रखने के पीछे साम्राज्यवादी राजनीति का बडा हाथ है। राजनीति अपना वर्चस्व हर जगह बनाई रखती है। साम्राज्यवादी राजनीति का स्वरूप आजकल अत्यन्त विकृत बनता नज़र आ रहा है कि इसके सामने मानव या मानव मूल्यों का कोई स्थान नहीं रह गया है।

1. टुण्डा लाट - जगदीश चन्द्र - पृ. 212
2. वहीं - पृ. 213

गिरिराज किशोर के 'असलाह' उपन्यास में हथियारों के प्रति अन्धे मोह के कारण अमानवीय रास्ते की ओर चले अमरी की कथा कही गई है। "इन्सानों में सर्वोच्च इन्सान और शक्तिशालियों में अभूतपूर्व शक्तिशाली बनने के लिए वह अपनी इन्सानियत को सूखा देता है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह हथियारों को पाला-पोसता है। उनका लक्ष्य विचित्र हथियार के ज़रिए धर्ती को जल में और जल को पत्थर में बदल देना है।"[1]

अमर उर्फ अमरी के मन में हथियारों के प्रति अदम्य शौक बचपन से ही हुआ है। उसके पिता एक दारोगा था। जबसे अमरी ने होश संभाला तब से उसने पिता को बगल में पिस्तौल लटकाए ही देखा था। एक दिन पिता की अनुपस्थिति में तोशदान से वह पिस्तौल हाथ में ले लिया। इस पर पिता ने उसे पेटी से खूब मारा। उस मार ने बेटे से ज़्यादा हथियार को महत्वपूर्ण बनाया। दूसरे दिन पिता से पटाखेबाज पिस्तौल प्राप्त करने पर भी वह खूश न हुआ। क्यों कि उन्हें नकली हथियार नहीं चाहिए। बालक अमरी असली हथियारों से प्रेम करने वाला है।

असलाह घर के रखवाले के बेटे के साथ अमरी की दोस्ती होती है। उसी के द्वारा हथियारों का अनोखा संसार उनके सामने खुल जाता है। उनकी किस्मत एकदम बदल जाती है। 'असलाहघर में जाने के बाद वह गूँगा हो गया। आँखों में चमक और जबान बन्द। उसे देखने

1. असलाह - गिरिराज किशोर - पृ. 71

से लगता था कि वह ज़मीन से एक बालिश्त ऊपर उठकर चल रहा है। बिजली की लहर की तरह कोई दैवी संस्पर्श उसके शरीर में पैवस्त हो गया था। कहाँ पहूँचेगा यह उसे खुद मालूम नहीं था।'

इंचार्ज का तबादला होने पर हथियारों की देखरेख केलिए नया अधिकारी आते हैं। उनके पास आकर अमरी हथियारों को देखने की इच्छा प्रकट करता है। इसपर सहमत न होकर अधिकारी उसे सीधे मार्ग की और जाने की प्रेरणा देते हैं। 'हथियार दुश्मन को या सिपाही को दिखाते है, तुमको नहीं।'

हथियारों के प्रति यही शौक उसे चानमारी मैदान पहूँचाता है। इस मैदान में हर इतवार फौज़ियों की करामत होती थी। वहाँ हथियारों की गर्जन-भरी घोर आवाज़ में उन्हें अलौकिक संगीत की आवाज़ महसूस होने लगा। उनके मुकाबले वास्तविक संगीत उसे अजीब और बेसुरा लगता था।

चानमारी मैदान में चन्दा नामक एक लडकी से उसका प्रेम संबन्ध होता है। हथियारों में अमरी का मन अधिक रम जाने के कारण पढाई की बहुत सी बातों के लिए वह प्रेमिका पर निर्भर रहता था। उसकी उपस्थिति में भी अमरी हथियारों के संसार में अपने आपको डुबोता रहता था। इस कारण से प्रेम संबन्ध टूट जाता है, चन्दा उसे छोडकर चल जाती है।

अमरी के जीवन का दूसरा दौर शुरू होता है, जब पिता उसकी शादी जबर्दस्ती से करवा देते हैं। लडकी पढी-लिखी थी। लेकिन अमरी ऐसा आदमी है जो आदमियों को कम, हथियारों को ज़्यादा प्यार करता है। आदमी को प्यार करने के लिए वह तैयार है, लेकिन हथियार मानकर ही यह हो सकता है। अपनी प्रथम रात्री में ही वह पत्नी से बताता है, "देखो, मुझे हथियार चाहिए-मैं उन्हें खरीदूँगा, बनाऊँगा, चोरी करूँगा, जैसे भी मिलेंगे..... मोहय्या करने की कोशिश करूँगा। तुम मुझे हथियारों के चलानेवाले बच्चे दोगी!"[1]

पत्नी को वह अत्यधिक खतरनाक और असामान्य आदमी लग रहा था। पति की अजीब बातें सुनकर पत्नी रोने लगी तो वह सोचता है, हथियारों के प्यार के प्रति क्या सभी लडकियों का रूख मुँह बिगाडकर रोनेवाला होता है। पहले चानमारी के मैदान में चन्दा इस तरह का बर्ताव करती थी, अब उसकी नवविवाहिता पत्नी भी। अमरी को यह बात बहुत परेशान करने लगी। हथियारों के व्यवसायी से अमरी का संबन्ध स्थापित हुआ। ज़मीन बेचकर कमाए पैसे की एवज़ में उसने कुछ हथियार खरीदे।

अमरी पिता हो गया। हथियारों के बढत के साथ-साथ उनके बच्चे भी बढे। अपने हर बच्चे के नाम पर उसने हथियारों का नामकरण किया, जैसे, ध्रुव-एक, ध्रुव-दो, दूसरा बच्चा फिरोज़-एक....।

1. असलाह - गिरिराज किशोर - पृ. 44

अमरी की पत्नी को हमेशा डर था कि बच्चे भी पिता के समान ढेढे, फौलादी और बेदिल हो जाएँ। उसका यह डर सच निकला। छोटे बच्चे के सिवा सारे बच्चे पिता के दिखाए राह की ओर से चले। माँ के विरोध को उन्होंने अनदेखा किया। बच्चे दिन रात परेड में खोए रहते थे। आधे से आधे वक्त वे हथियारों के साथ गुज़रते थे। अमरी तो मौके-बेमौके उस्तादों को बुलाकर उन्हें तालीम दिलाता था। उनके हाथों, कपडों, बिस्तरों में गन पाउडर की सी गन्ध रम गई थी।

माँ के लिए अगर यह दुनिया ज़िन्दा है तो वह छोटे बच्चे के माध्यम से था। इसको भी अमरी अपने हाथों से छीनकर ले जाएगा, ऐसी चिन्ता उसे अशान्त करने लगी।

अमरी ने अपना नया हथियार छोटे बच्चे को सौंपने का निश्चय किया। लेकिन वह हथियार को हथियार के रूप में इस्तेमाल करने के पक्ष में था। इससे किसी भी प्रकार का प्रेम संबन्ध स्थापित करने के लिए वह तैयार नहीं हुआ। छोटे बच्चे माँ की आवाज़ को ज़्यादा महत्व देकर अमरी से विद्रोह करने को उद्यत हुआ।

प्रतीक विधान

उपन्यास में एक व्यक्ति की अजीब मानसिकता के ज़रिए गिरिराज किशोर ने साम्राज्यवादी मानसिकता का वर्णन किया है। अमरी हथियार प्रेमी व्यक्ति का प्रतीक है। उसका हथियार-प्रेम साम्राज्यवादी ताकतों का हथियार प्रेम है। अमरी का कहना है, अगर संवेदनशीन होना है तो हथियारों के प्रति हो.... प्यार करना है तो हथियारों के प्रति

हो.... प्यार करना है तो हथियारों से प्यार करो... जीना है तो हथियारों के लिए जिओ। हथियार ही तुम्हें वास्तविक स्वतंत्रता दिला सकते है। वे मानते हैं कि इन्सानों, जानवरों, पेड-पौधों से हज़ारों साल से हम प्यार करते हैं... प्यार की इस लंबी श्रृंखला में हथियारों का प्यार एक नए युग की शुरुआत करता है। यही आधुनिकता और विज्ञान को प्यार करना है.... संस्कृति का एक नया आयाम।

इन्सान और उसके प्रेम के सबसे बडे दुश्मन हथियारों के पीछे पागल होने के कारण अमरी अपने प्रेमिका को खो देता है। क्यों कि चानमारी के मैदान में वह प्रेमिका से मिलने केलिए न आया करता था। 'वह तो वहाँ उस बदबू के लिए आता था, जो मौत की गंध से भरी रहती थी। उस ठूँ-ठाँ के लिए आता था, जो कानों का बहरा कर देने पर आमादा रहती हैं।'

पेशे के रूप में मास्टरी मिलने पर भी अमरी का मन उसमें नहीं लगता है। वह हथियारों की विचित्र दुनिया में भटकता है। अमरी का प्रेम सिर्फ हथियारों से हैं। हथियार-प्रेम को बनाए रखने के लिए वह अपने पुत्रों से प्यार करते हैं। पत्नी के प्रति उनके मन में तिरस्कार की भावना है, क्यों कि वह उसके मार्ग पर बाधा पहूँचाना चाहती हैं। अपने वर्चस्व को समाप्त कर देना चाहती है। उसके ही घर में उसका ही शत्रू पैदा करके वह बदला ले रही है। पत्नी की समझ हमेशा पति की समझ से मेल न खाती थी। वह छोटे बच्चे को अपने साये से अलग करना नहीं चाहती है। जब्र वह बच्चे माँ के दिखाए रास्ते पर चलकर पिता से

विद्रोह करने लगता है तो अमरी सोचता है कि "शायद यह लडका उसका अपना नहीं हैं। उसके मन में लगातार यह शंका बनी रहती है। उसकी माँ ने उसको अपनी योनिबद्ध मानसिकता के साथ लिंगमय पुरुष बनाकर छोड दिया।"[1]

अमरी के दिखाए राह पर चलनेवाले बडे लडके अमरी के समान हथियारों से दीवाना हो गए। अब हथियारों के बिना वे अपने को अस्तित्वहीन मानते हैं। "हमारी जान ले लो पर हमारे हथियार वापिस कर दो - हम बिना हथियारों के नहीं रह सकते। हमने सब रिस्ते मिटा दिए..... बहन-भाई का.... भाई-भाई का.... माँ और बेटा बेटी का.... एक ही रिस्ता माना, हथियारों का।"[1]

हथियार और युद्ध की अमानवीयता को भोगनेवाली औरतों का प्रतीक है अमरी की पत्नी। बच्चों की हरकतें देखकर वह सोचती है कि उसकी कोख हथियार डालनेवाली एक भट्टी मात्र है। उसके शरीर में प्राण तो बचा हुआ है, लेकिन 'माँ की हत्या होती रहती हैं।' पति तो उसे हमेशा उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे। उसकेलिए हथियार का सान्निध्य पत्नी से ज़्यादा महत्वपूर्ण था। जब बच्चे हुए तो उसने उसके मन में मानव-प्रेम और हथियार-विरोधी राग भरने की कोशिश की। इस कारण पति का क्रोध और भर्त्सना का भाव और भी बढ गया।

1. असलाह - गिरिराज किशोर - पृ. 100
2. वहीं - पृ. 107

अमरी के विरोध में लोग विद्रोह करने लगे तो पत्नी अकेला इसे सहती है। पति के हथियारों की तपिश से झुलसनेवाले लोगों की आहें वह रोज़ सुना करती थी। क्रोध के मारे आदमी अमरी के घर पर पत्थर फेंका करते थे। माँ तब चिल्लाती थी कि 'यहाँ न कोई हथियार है। न हथियारवाले।'

सभी संघर्षों और तनावों को झेलने के बावजूद भी उसका मातृत्व सफल निकलता है। छोटे बच्चे पिता के हथियार-प्रेम के विरोध में विद्रोह करने लगते तो उसकी सारी आशा-आकाँक्षाएँ सार्थक निकलती है। क्यों कि अपने एक बच्चे को इन्सानियत की राह पर खडा करने में वह सफल निकलती है। उसकी यह जीत संपूर्ण मानवता की जीत है।

गिरिराजकिशोर के हथियार-विरोधी और युद्ध-विरोधी चेतना का सीधा साक्षात्कार अमरी की पत्नी और उसके छोटे बच्चे में मिलता है। पत्नी पति से विद्रोह करती है, पुत्र पिता से भी। अमरी की पत्नी अपने बच्चों को मानवप्रेम की राह दिखाती है। उसके नस-नस में युद्धविरोधी चेतना भरी हुई है, इसी भावना का समावेश वह अपने छोटे बच्चे के मन में कर लेती है। माँ-बाप के पक्ष-विपक्ष के बीच में पडकर, जब दूसरे बेटे अमरी के दिखाए मार्ग पर चलते हैं, छोटे बालक मानव प्रेम और शान्ति का रास्ता अपनाने में कामयाब हो जाता है। 'यह प्रसंग यहाँ पर उपन्यासकार की अपनी कामना को द्योतित करता है, क्योंकि उत्तरोत्तर तबाही की और बढती साम्राज्यवादी राजनीति

की धुन के बीचोंबीच भी उम्मीद की रोशनी की बारीक रेशा तलाशनेवाले उपन्यासकार की यह मानवीय दृष्टि भी है। वे निराशा के गर्त में अपने आपको अनुभव करना नहीं चाहते। उस गर्त में मुक्ति की कामना से वे आत्मीयता की तलाश करते हैं।'

उपन्यासकार अमरी को एक व्यक्ति नहीं संस्था के रूप में परिलक्षित करता है। उसके सपनों में एक ऐसे हथियार की परिकल्पना है, 'जो आस्मान को गर्द-गुब्बार मात्र बना दे। दरख्तों को कोयले में बदल दे। फल जहर हो जाएं, धान और गैहूँ की बालों से खुसियानी के बीज झरने लगें।'

उपन्यास के माध्यम से लेखक चेतावनी देते हैं कि हमें रक्षा के पथ को अपनाना है, क्यों कि अब हम हथियार के अधीन हो चुके हैं, साम्राज्यवादी शक्तियों के काबू में है। अब हम मानवता की विपुल संपत्ति, मानव संसाधन और मेधा का प्रयोग पूरी तरह से हथियारों के संचलन के लिए कर रहे है। युद्ध के समय सब हथियार-संचय को रोकने की बातें बताते हैं। लेकिन युद्ध के बाद इसको इजाफा होता है। हथियारों की विनाशकारी शक्ति और तबाही से हम अनभिज्ञ नहीं, फिर भी उनकी रफ्तार कम होने के बजाय तेज़ होती जा रही है। इसे रोकना है, नहीं तो अमरी की ज़िन्दगी की तरह हमारी ज़िन्दगी का भी सौरभ नष्ट हो जाएगा। यहाँ एक असहिष्णु और विद्रोही परंपरा का जन्म होगा। हथियार निर्माण के लिए जो धन खर्च करता है, उसे मानवता के विकास में लगाना चाहिए। इससे हथियारों की होड से आतंकित मानवता को साम्राज्यवादी चाल से मुक्ति दिला सकते हैं।

युद्ध की तपिश में इन्सान के भूत, भविष्य और वर्तमान तहस - नहस होते हैं। युद्धक्षेत्र की भयानकता से ज़्यादा त्रासद है युद्धोपरान्त विदीर्ण मानव की हालत। युद्ध की सारी परेशानियों को जीवन-भर भोगने के लिए वह विवश हो जाता है। युद्ध ने उसके जीवन से सब कुछ छीना है। साम्राज्यवादी दमन-चक्र में फँसे आधुनिक मानव सही रास्ते से भटक कर लक्ष्यहीन होकर जा रहे हैं। यदि इस तरह आगे बढेगा तो दुनिया में इन्सान का अस्तित्व न रह जाएगा। युग की इस जलती समस्या को सशक्त भाषा में अभिव्यक्त करके उपन्यासकारों ने मानवीय चेतना को आलोकमय बनाने की सफल कोशिश की है। उसके सही मिसाल है - अमिता, वे दिन, टुण्टा लाट और असलाह। इन उपन्यासों की रचना का मक्सद एक बेहत्तर इन्सान, बेहत्तर समाज और बेहत्तर व्यवस्था की स्थापना है।

चौथा अध्याय

आधुनिक हिन्दी नाटक में अभिव्यक्त युद्धविरोधी चेतना

साहित्य की दूसरी विधाओं की अपेक्षा नाटक का समाज-जीवन से अत्यधिक प्रत्यक्ष संबन्ध है, क्योंकि यह दृश्यकाव्य है। नाटक में काव्यत्व और दृश्यत्व का सुन्दर समन्वय है। निरक्षर जनता भी नाटक का भाव ग्रहण कर सकती हैं। अतः साधारण आदमी अन्य विधाओं की अपेक्षा इससे ज़्यादा लाभान्वित होते हैं।

हिन्दी नाटक का आधुनिक युग भारतेन्दु के आगमन से शुरु होता है। भारतेन्दुकालीन नाटकों में राष्ट्रीय चेतना की भरमार थी। स्वयं भारतेन्दु ने परतंत्र भारत की तत्कालीन परिस्थिति को प्रतीकों के माध्यम से अपने नाटकों में अभिव्यक्त किया। 'भारत-दुर्दशा' में उन्होंने मदिरा, आलस्य, रोग, अन्धकार आदि को पात्र बनाया और अंग्रेज़ों को भारत-दुर्देव के रूप में चित्रित किया।

भारतेन्दु के पश्चात्त आए जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट आस्था दृष्टिगत है। उन्होंने स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि नाटकों के ज़रिए राजनीति की अमानवीयता और शासकों के अधिकार मोह, उनकी निरंकुशता आदि का पर्दाफाश किया। प्रसादयुगीन नाटककारों में हरिकृष्णप्रेमी ने रक्षाबन्धन, शिवसाधना, आहुति आदि

नाटकों के ज़रिए हिन्दु मुस्लिम एकता का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने देश के लिए मर मिटनेवाले वीरपुरुषों का बखान कर तत्कालीन जनता में आवेग भरने का सराहनीय कार्य किया। लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'अशोक' नाटक अशोक के अहिंसा सिद्धान्त पर आधारित है।

प्रियदर्शी सम्राट अशोक और उनके भाई सुमन की वाग्दत्ता पत्नी शीला के आत्मबलिदान की कथा का बखान चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के 'अशोक' में हुआ है। यह सीधा-सादा नाटक, समकालीन परिस्थितियों में भी जबकि सभी राष्ट्र अपनी संहारक शक्ति को बढाने में लगे है, अत्यन्त समीचीन है।

इन सभी नाटकों में बीच बीच में साम्राज्यवाद और युद्ध के विरोध में तीव्र प्रतिक्रिया के स्वर उभर आए हैं। लेकिन नाटककारों का मुख्य उद्देश्य भारत के महान व्यक्तित्वों की याद दिलाकर भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट श्रद्धा उत्पन्न करना, और इसके ज़रिए अस्वतंत्रता से भारत की मुक्ति के लिए जनता को प्रेरणा देना था।

द्विवेदी युगीन मैथिली शरण गुप्त के 'पृथ्वीपुत्र' में युद्धविरोध की भावना उभर आती है। गुप्तजी की राय में समाज में मौजूद मानवविरोधी तत्वों में सबसे प्रमुख है युद्ध। उनका मानना है कि युद्धोन्मुखी रोगी का उपचार युद्ध से नहीं, वरन् शान्ति और अहिंसा के संदेशों से करना है।

ज्ञानदेव अग्निहोत्री का राजनैतिक नाटक 'नेफा की एक शाम' की पृष्ठभूमि भारत-चीन संघर्ष है। नेफा की सिक्यंग नदी के तट

पर झोंपडियों में बसी आदिवासियों की चीनी आक्रमण के समय अपने वतन की रक्षा के लिए किए गए शौर्य, बलिदान, गुरिल्ला लडाईयों का चित्र इसमें है।

राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत ज्ञानदेव अग्निहोत्री का दूसरा नाटक है 'वतन की आबरू।' पाकिस्तान आक्रमण के परिप्रेक्ष्य में लिखे प्रस्तुत नाटक में जासूसों की कार्यकुशलता और बलिदान की अभिव्यक्ति है। महबूब नामक जासूस युद्ध के समय सीमाप्रान्त के निकट आकर देशभक्त इलाही बक्श और पशनीना जैसी औरतों को फुसलाता है। रहस्योद्‌घाटन होने पर वह अपनी जान दे देता है।

उपर्युक्त सभी नाट्यकृतियों में युद्ध का बखान है, युद्ध विरोधी-स्वर भी है। लेकिन युद्ध की नृशंसता, उससे उपजे साँस्कृतिक संकट, युद्धजन्य अवसाद आदि का चित्रण कम ही नज़र आते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि तत्कालीन जनता में स्वतंत्रता के प्रति तीव्र मोह उत्पन्न करना तत्कालीन नाटककारों का मक्सद था। स्वातंत्योत्रर काल में लेखकों ने युद्ध के सभी पहलूओं पर प्रकाश डालने का कार्य ज़ोर से शुरु किया। इस काल की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं - धर्मवीर भारती का 'अन्धायुग', दुष्यन्तकुमार का 'एक कंठ विषपायी', अज्ञेय का गीतिनाट्य 'उत्तर-प्रियदर्शी', ब्रृजमोहन शाह का 'युद्धमन' और गिरिराज किशोर का 'असलाह।' 'अन्धायुग' में युद्धजन्य विभीषिका का चित्रण महाभारत कथा का आश्रय लेकर कहा गया है। 'एक कंठ विषपायी' की कथाभूमि सतीदाह की कथा है। भारत-चीन युद्ध के समय इसकी रचना हुई है।

अज्ञेय ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि को अपनाकर युद्ध की समस्या पर प्रकाश डाला है। बृजमोहन शाह के 'युद्ध मन' में युद्ध से संबन्धित सभी समस्याओं का चित्रण है। हथियार-व्यापार के खिलाफ गिरिराजकिशोर की प्रतिक्रिया 'काठ की तोप' में हुई है।

अन्धायुग - अनास्था से आस्था की ओर प्रयाण करती नाट्यरचना

आस्था और अनास्था के बीच भटकनेवाले युगीन मानव की त्रासदी को स्वर देने में तत्कालीन समय के सभी साहित्यकारों ने उत्साह के साथ काम किया है। अन्धायुग की रचना से डॉ. धर्मवीर भारती ने इस कार्य को सफलता की पराकाष्ठा में पहूँचाया है। युगीन आवश्यकताओं के साथ कवि ने पूरी ईमानदारी दिखाई है।

अन्धायुग का रचनाकाल 1954 है। इतिहास का अच्छा ज्ञाता कभी इस कालखण्ड को नहीं भूल पाते हैं। क्योंकि जैसे कृति के नाम से सूचित होता है, यह अन्धकारपूर्ण और त्रासद समय था। दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति 1945 में हुई थी और इसी वर्ष संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना भी हुई। लेकिन विश्वयुद्ध की त्रसद स्थिति संसार में शेष थी, और सब कहीं तीसरे विश्वयुद्ध की विभीषिका व्याप्त हो रही थी। मलबों में परिणत संसार में पडे कंकाल बने मनुष्य के हाल की अभिव्यक्ति के लिए भारती ने पुराण के सबसे अन्धकारमय प्रसंग को चुना है। पुराण को माध्यम बनाकर भविष्य के अन्धकारपूर्ण समय के प्रति वे हमें चेतावनी देते हैं।

कवि ने कृति के आरंभ में ही युद्धोत्तरकालीन परिस्थितियों का वर्णन किया है-

युद्धोपरान्त
यह अन्धायुग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत है।[1]

आज के विसंगतिपूर्ण जीवन के परिप्रेक्ष्य में समाज एवं मानव मन में व्याप्त युद्धोत्तरकालीन कुंठा, प्रतिशोध, निराशा, बर्बरता, त्रास, द्वन्द्व, मानव आत्मा की शोषित भावनाएँ आदि का सफल एवं सटीक अंकन अन्धायुग में है। युद्ध, समाज की एकता को त्रस्त कर सामाजिक और वैयक्तिक सीमाओं का हनन करता है और नैतिकमूल्यों को जर्जर कर देता है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात्त जो अन्धायुग अवतरित हुआ, वह महाभारतकालीन अमर्यादा और अनैतिकता से किसी भी स्तर पर कम नहीं था। आज दुनिया रक्तपात, कुठा, बर्बरता, कुरूपता, भयंकरता, अन्धापन आदि से बुरी तरह आक्रान्त है। युद्ध के परिणाम मौत और भयंकर विनाश हुआ है, जिसने भविष्य के लिए और अधिक झगडे के बीज बो दिए है। इनके अतिरिक्त हिंसक क्रान्तियाँ सैनिकवाद और राष्ट्रवाद का भी जन्म हुआ। युद्ध से समस्या का हल भी नहीं हुआ। शासन-व्यवस्था में गडबडी हुई, साथ ही साथ आर्थिक स्थिति भी बदली।

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 2

डॉ. ब्रजमोहन शर्मा ने अन्धायुग पर टिप्पणी करते हुए कहा - भारती नई कविता के मूर्धन्य कवि है। इसलिए उनकी कविता ने समस्त मानव की विविध भावभूमियों में संक्रमण करती चेतना को संस्पर्श किया है। अतीत और आगत दोनों दिशाओं में दृष्टिक्षेपण करते हुए भी उनकी कला में समकालीन जीवन के प्रति गहरी आस्था व्यंजित हुई है।

साहित्यकार के समाजिक एवं परिवेशगत दायित्व की सही जानकारी भारती को है। 'बाणभट्ट' नामक कविता में उन्होंने बुद्धिजीवियों की बुरी मानसिकता पर व्यंग्य किया है। साथ ही साथ अपने सामाजिक दायित्व के प्रति साहित्यकारों को सचेत करने का कार्य भी किया है। स्वर्ग के महलों से अग्नि छीनकर मानव जाति को देने का जो साहस प्रमथ्यू ने दिखाया है, उसका वर्णन कवि की 'प्रमथ्यू गाथा' कविता में है। ठीक वही साहस भारतीजी में भी देखा जा सकता है। युग के फैले अन्धकार ने, अनास्था ने और जीवन की मूल्यहीनता ने कवि मन को झकझोरा और इन सभी असंगतियों से युग की रक्षा करने के लिए कवि को प्ररित किया। इसी की परिणति है 'अन्धा युग।'

महाभारत का पुनरान्वेषण - अन्धायुग में

अन्धायुग की कथावस्तु महाभारत के कथानक के आधार पर गढी हुई है। महाभारत के अठारहवें दिन की सन्ध्या के इसकी कथा प्रारंभ होती है और प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यू तक कथा चलती रहती है।

प्रस्तुत काव्यनाटक के पाँच अंक हैं-कौरव नगरी, पशु का उदय, अश्वत्थामा का अर्धसत्य, गाँधारी का शाप, विजय एक क्रमिक आत्महत्या।

पराजित कौरव नगरी का चित्रण प्रथम अंक में है। दो प्रहरियों के वार्तालाप जीवन की निरर्थकता की ओर संकेत करते हैं -

जिसने अब हमको थका डाला है
मेहनत हमारी निरर्थक थी,
आख्या - का
साहस का
श्रम का
अस्तित्व का हमारे
कुछ अर्थ नहीं था।[1]

अश्वत्थामा की पाशविक मनोवृत्ति का चित्रण दूसरे अंक में है। पिता के छल-बल से मृत्यू के उपरान्त अश्वत्थामा के मन में प्रतिशोध की भावना जाग उठती है। युधिष्ठिर के मर्यादाहीन आचरण से वह क्रुद्ध है क्योंकि धर्मराज होकर भी वे झूठ बोले।

मानव को पशु से
उन्होंने पृथक नहीं किया
उस दिन से मैं हूँ।
पशू मात्र अन्ध बर्बर पशु[2]

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 5
2. वहीं - पृ. 2

अश्वत्थामा के विवेकहीन मन की व्याकुलता का चित्रण तीसरे अंक में है। चतुर्थ अंक में गाँधारी का शाप है। अपने पुत्रों की मृत्यू पर व्यथित गाँधारी कृष्ण को शाप देती है। उसकी दृष्टि में प्रभु मर्यादारक्षक नहीं, मर्यादाभंजक है।

धृतराष्ट्र और गाँधारी के पश्चात्ताप तथा दावाग्नि में सबके भस्म हो जाने का चित्रण अन्तिम अंक में है।

अन्धायुग में मूल कथा प्रसंगों के बीच में आधुनिक जीवनबोध उभरकर आया है। पात्र और प्रसंग सब वही है, जो महाभारत काल के हैं। मूल प्रसंगों में भारती ने समकालीन अनुभव और युगबोध को बडी संवेदनशीलता के साथ जोडा है।

हर क्षण अंधियारा गहरा होता जाता है,
सबके मन में गहरा उतर गया है युग
अंधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है,
है दासवृत्ति उन दोनों प्रहरियों की
अंधा संशय है, लज्जाजनक पराजय है।[1]

कहा जा सकता है कि अन्धायुग की कथावस्तु पौराणिक है। लेकिन कवि ने इसमें पुराण के पुनराख्यान की अपेक्षा मानवीय समस्याओं पर ज़्यादा बल दिया है। इसमें नाटककार ने महाभारत का पुनरान्वेषण किया है: यह कोई पुस्तक या महाभारत के किसी प्रसंग विशेष का नाट्य रूपान्तर मात्र नहीं है।

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 16

पात्रों की प्रतीकात्मकता

अन्धायुग में पुराण की कथा के ज़रिए वर्तमान की व्याख्या की गई है। इसके पात्र भी वर्तमानकालीन है। आज मानव जीवन में जो जो विडंबनाएँ नज़र आती है, वे सारी विडंबनाएँ ये भी झेलते हैं।

आधुनिक युगीन स्वेच्छाचारी, अन्यायी, स्वार्थी, अधिकार उन्मत्त शासक का प्रतीक है धृतराष्ट्र। धृतराष्ट्र का व्यक्तित्व जीवन-भर अंधेपन के अंधियारे में भटका रहा है।

गाँधारी, कुन्ति, द्रौपदी, आदि की नियति वर्तमान स्त्रियों की नियति से तनिक भी भिन्न नहीं। प्रहरी आम आदमी का प्रतीक है, जो जीवन-भर युद्ध की विसंगतियाँ भोगने के लिए विवश हो गए हैं। युद्ध के पश्चात्त बर्बर, आस्थाहीन, अमानवीय बने आदमी का प्रतीक अश्वत्थामा है। जिसका टूटा हुआ व्यक्तित्व वर्तमान मानव का ही व्यक्तित्व है।

ब्रह्मास्त्र अणुबम का प्रतीक है, वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग ने सारे संसार को त्रस्त कर दिया है। इसी संघर्ष के वातावरण को भारती ने यहाँ चित्रित कर दिया है।

गाँधारी, धृतराष्ट्र, संजय, विदुर, युयुत्सु, अश्वत्थामा आदि पात्रों को वर्तमान सामाजिक परिवेश में चित्रित करके भारती ने अपनी मौलिक प्रतिभ का परिचय दिया है।

डॉ. बच्चनसिंह का विचार है कि 'महाभारत के अधिकाँश पात्र असाधारण हैं। उसके साथ जो कथाएँ चलती है, वे उन्हें मिथक

बना देती है। अन्धायुग के धृतराष्ट्र,संजय, युयुत्सु, अश्वत्थामा आदि अपने नाम और काम दोनों से मिथक है। वे न आदिम मिथक है और न उपनिषद्कालीन है। इन्हें ह्रासोन्मुख भारतीय संस्कृति की फलश्रुति कहा जा सकता है। इसलिए इन्हें आज की ह्रासोन्मुख मूल्यहीन संस्कृति के सन्दर्भ में सार्थक ढंग से समर्पित किया जा सकता है।'

इसी प्रकार अन्धायुग के पात्रों की प्रतीकात्मकता की चर्चा करते हुए ज्वालाप्रसाद खेतान ने अपनी पुस्तक 'सृजन के आयाम' में लिखा - "अन्धायुग के अधिकाँश पात्र निश्चित ऐतिहासिक चरित्र होते हुए भी विशिष्य मानसिक प्रवृत्तियों, दृष्टिकोणों एवं अन्तर्ग्रन्थियों के प्रतीक है। यह प्रतीकत्व उनके चरित्र की स्वतंत्रता को नष्ट नहीं करता, वरन् उन्हें एक विराट भारतीय प्रासंगिकता प्रदान करता है, जिसके कारण महाभारत की कथा के अंश का पुनर्कथन मात्र न रहकर अन्धायुग, मानव-मन के अन्तर्जगत का महकाव्य बन गया है।"[1]

अन्धायुग के सभी पात्र अपने अन्तर्मन में वेदना और पीडा को झेल रहे हैं। जन्मान्ध होने के कारण धृतराष्ट्र व्यथित है, मूल्यों और आदर्शों के नष्टभ्रष्ट होने के कारण कृपाचार्य भी चिन्तित दिखाई देता है। इसमें युयुत्सु का द्वन्द्व अत्यन्त मार्मिक है। विपक्षी सत्य का साथ लेने के कारण वह अपनी माँ से भी तिरस्कृत हो जाता है। युयुत्सु का यह वाक्य अत्यन्त महत्वपूर्ण लगता है।

1. सृजन के आयाम - ज्वालाप्रसाद खेतान - पृ. 153

"अच्छा था यदि मैं
कर लेता समझौता असत्य से"[1]

सब की घृणा का पात्र, अकेला, अजनबी युयुत्सु आज के मूल्य संकट को प्रस्तुत करता है। आधुनिक मानव की यही नियति है कि जो भीड में अपने को अकेला महसूस करता है।

गाँधारी आधुनिक मानव की निराशा और अनास्था का प्रतीक है। 'वह केवल पत्नी और माँ नहीं हैं, बल्कि एक तेजस्विता संपन्न व्यक्तित्व है। नैतिकता, मर्यादा, आस्था, धर्म, नीति, अनासक्ति सबको अन्धी प्रवृत्तियों की पोशाकों माननेवाली गाँधारी को झूठे आडंबर से नफरत थी, इसलिए स्वेच्छा से उसने अपनी आँखों पर पट्टी चढा ली थी। उसका गरजता स्वर सारी नीति पर प्रश्नचिह्न लगाता है कि धर्म किसी और नहीं था कौरवों, पांडवों दोनों की ओर नहीं था, यहाँ तक कि प्रभु तक कि प्रभु कृष्ण ने भी मर्यादा को सदैव अपने ही हित में प्रदल लिया।'

भारती की चरित्र सृष्टि में प्रहरी और वृद्धवाचक का प्रडा महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी उक्तियाँ इस काव्यनाटक को समकालीन मानवीय विडंबना से जोडती है। अन्धायुग में घटना व्यापार की अपेक्षा भावविस्तार को प्रमुखता दी गई है। डॉ नगेन्द्र के शप्रद्रों में "अन्धायुग में पहली बार घटना प्रसंगों को आधार बनाकर जीवन और जगत् के

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 44

विभिन्न व्यापारों एवं गंभीर समस्याओं की दार्शनिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की गई है।"[1]

अश्वत्थामा - युद्ध की पाशवीयता से बर्बर बना आधुनिक मानव का प्रतीक

युद्ध की नृशंसता और संत्रास ने इन्सानियत का हनन करके उसके अन्तर्मन में पशुता को भर दिया है। परिस्थितियों ने मानव को बर्बर बना दिया है। संपूर्ण समाज विक्षिप्तावस्था में जीने के लिए विवश हो गया। अंधायुग का अश्वत्थामा पशुता से परिपूर्ण आधुनिक मानव का प्रतीक है। युद्ध की विभीषिका और पिता की छलयुक्त क्रूरहत्या से अश्वत्थामा का विवेक खो जाता है। उसके लिए कोई नीति और नियम स्थिर नहीं हो गया और उसकी मानसिक अवस्था अत्यधिक जर्जर हो जाती है। वह ऐसी अवस्था में पहूँच जाता है कि :

वध मेरेलिए नहीं रही नीति
वह है अब मेरे लिए मनोग्रन्थि
जिसको पा जाऊँ।[2]

हत्या करना नीति या अनीति की बात है, इस पर वह विचार नहीं करता है। वह नहीं मानता है कि वध करना अनीति है। क्योंकि वध उनकी नीति सी बना हुआ है। युद्ध के अन्याय और

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : प्रवृत्ति और विश्लेषण - नगेन्द्र 43
2. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 29

अमानवीयता देखकर उसका व्यक्तित्व एकदम खराब हो जाता है। उसके नस-नस में प्रतिशोध और अन्याय का भाव समा हुआ है।

पांडवों को हम अक्सर न्याय के समर्थक घोषित करते हैं। यह सच है कि उनके पक्ष में न्याय था। लेकिन इस न्याय की स्थापना के लिए उन्होंने अनेक अन्याय किये। सत्यवादी युधिष्ठिर की एकमात्र झूठ से द्रोण का वध हुआ। परिणाम इसका अत्यन्त भीषण था। युधिष्ठिर के इसी झूठ के कारण अश्वत्थामा के मन की सारी कोमल भावनाएँ नष्ट हो गई। यदि उसने रात के सन्नाटे में पशुवत् होकर पांडवकुल की हत्या न की जाय तो, वह आश्चर्य की बात होगी। इस संदर्भ में उसके ये वाक्य अत्यन्त मार्मिक हो गए हैं:

उस दिन से
मेरे अन्दर भी जो शुभ था, कोमलतम था
उसकी भ्रूण हत्या
युधिष्ठिर के
अर्धसत्य ने कर दी।"[1]

अश्वत्थामा के ये वाक्य पाठकों को उनके पक्ष में सोचने को विवश बना देते हैं। इस संदर्भ में दिनकरजी की ये पंक्तियां बिल्कुल सही लगती है।

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 25

पापी कौन ?
न्याय चुरानेवाला ?
या कि न्याय खोजते विघ्न का
शीश उठानेवाला ?[1]

अश्वत्थामा बर्बरता की सीमा का उल्लंघन करता है। साथ ही साथ वे ऐसी दुविधाग्रस्त स्थिति में पहूँचता है कि उसने क्या किया और क्या नहीं किया इसका पता भी उसे नहीं है।

पता नहीं मैं ने क्या किया
मातुल मैं ने क्या किया
क्या मैं ने कुछ किया।[2]

युद्ध से इन्सान का व्यक्तित्व टूटा जाता है। हमेशा वह अपने अस्तित्व की अनिश्चितता से जूझता रहता है। भविष्य भी उसके सामने अस्थिर हो जाता है।

अश्वत्थामा अन्धा युग का सबसे सशक्त पात्र है। उसे नाज़ीवादी भावना का प्रतीक माना जा सकता है। इसके चरित्र निर्माण के बारे में भारती ने अपने निबन्ध संकलन 'पश्यन्ती' में लिखा - 'अश्त्थामा का चरित्र खुद मेरेलिए एक पहेली हो गया था। उसके आन्तरिक विकास क्रम में इतना प्रबल आवेग था कि मैं लिख डालता था और फिर काफी रात गए छत पर टहल-टहल कर सोचा करता था कि अब ? अश्वत्थामा

---

1. कुरुक्षेत्र - दिनकर - पृ. 25
2. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 29

की घृणा, कटुता, आवेग, विक्षोभ-इन सबसे मैं आविष्ट था। कहीं कहीं आक्रन्त भी। मैं बहुधा सोचता रहता था कि इतना ध्वंसात्मक, इतना पीडादायक पात्र मेरी चेतना में कहाँ अवस्थित था और क्यों?'

पितृहत्या से उभरे प्रतिशोध ने अश्वत्थामा को पागल बना दिया। सारे पांडवकुल की हत्या करने पर भी उसका मन शान्त न हुआ। पांडवकुल का भविष्य अभिमन्युपुत्र का नाश करने केलिए वह उद्यत हो उठता है। पुत्र उत्तरा के गर्भ में है, उसका जन्म नहीं हो चुका है।

पागल कुजर
से कुचली कमल कली की भाँति
छोड़ूँगा नहीं उत्तरा को भी
जिसमें गर्भित है
अभिमन्यु पुत्र
पांडव कुल का भविष्य।[1]

"अश्वत्थामा की शिराओं में प्रतिहिंसा और प्रतिशोध का खून बह रहा है। वह पूंजीवाद के दुष्परिणामों से आक्रान्त क्रूर हिंसक पाशविकता का भी प्रतीक है और दूसरी ओर जाँ पाल सात्र के नास्तिक अस्तित्ववाद का भी। सात्रे मनुष्य को बिल्कुल स्वतंत्र, निरपेक्ष सत्ता मानते हैं, जिसकी कोई मर्यादाएँ नहीं हैं, कोई मूल्य नहीं, कोई प्रभू नहीं, कोई पूर्ण निश्चित मानवीय स्वभाव नहीं, वह परम स्वंत्र है, काल और दिशा से भी मुक्त केवल स्वतंत्र की सत्ता। अपनी इस स्थिति

---

1. अंधायुग - धमवीर भारती - पृ. 56

में सात्रे एक तीव्र संहारकारी अनास्थामात्र है, एक विराटकाय विध्वंसकारी संशय जो सारी स्थापित मर्यादाओं को रूप के मूल्य को ही नहीं मानता।"[1]

डॉ. बच्चनसिंह के अनुसार "अश्वत्थामा एक असाधारण पात्र है। अश्वत्थामा विमंथित अन्तर्मन की विक्षुब्ध मूर्ति है। महाभारतकाल की अनैतिकता उसमें पूंजीभूत हो गई है। वह सामान्य स्थिति में न रहकर बहुत कुछ असामान्य पात्र हो गया है। भारती ने उसके घनीभूत क्षणों को काव्यत्व से सन्निविष्ट कर अभिव्यक्ति दी है।"[2]

अतीत और भविष्य को लेकर मानव-जीवन में जो स्वर्णिम कल्पनाएँ थी, युद्ध के भयंकर परिणामों ने उनकी निस्सारता प्रकट कर दी। युद्ध के पश्चात्त वह एक पागल पशु का रूप धारण कर लिया। यह पागल पशु हम सबके मन के भीतर एक अन्धा गुफा में वास करते हैं। पशुता के उदय पर चारों ओर के संसार को बरबाद करने के लिए वह उद्यत हो गया। उसके पास न भविष्य की चिन्ता रह गई। अपने भविष्य और दिन का भविष्य तब उसकी चिन्ता के परे की बात बन गई। मानवमूल्य, धर्म, नीति, आदि की बातें उनके विचार में कहीं नहीं आई। एक पागल कुत्ते के सामान वह चारों ओर के वातावरण में आतंक फैलाने लगा।

1. मानव मूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती - पृ. 128-129
2. हिन्दी नाटक - डॉ. बच्चन सिंह - पृ. 192

युद्धोन्मत्त आधुनिक मानव की पाशवीयता का सशक्त प्रतीक है अश्वत्थामा। उसकी पागल और अमानवीय मानसिकता युद्ध की नृशंसता की उपज है।

भविष्य की पीढी पर युद्ध का खतरा

अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र की शक्ति इतनी तीक्ष्ण थी कि उत्तरा के गर्भ में पडे अभिमन्यु पर भी इसका प्रभाव पडता है। अपनी पितृहत्या के प्रतिशोध से अश्वत्थामा ने सारे पांडवकुल का नाश कर दिया। उत्तरा के गर्भ में पडे बच्चे को छोडने के लिए उसका मन तैयार नहीं था।

इससे भारती सूचित करते हैं कि युद्ध की विभीषिका का भोक्ता केवल उस युग में जीवित पीढी नहीं, भविष्य की पीढी भी है। हिरोशिमा और नागसाकी में हुए अणुविस्फोट का खतरा भोगनेवाली एक पीढी आज भी वहाँ है, जिसे हम 'हिबोक्किशा' के नाम से पुकारते हैं। इसमें कुछ पंगु है कुछ अन्धे और गूँगे भी बने हुए हैं।

उत्तरा के गर्भ में स्थित शिशु को मारने की शक्ति अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र में है। अमरिक्का जैसे शक्तिशाली देशों के एटम बम इसी ब्रह्मास्त्र के समान है। ये सूरज के ताप से भी बडा तापवाहक है, धरती इसकी शक्ति से बंजर हो जाएगी। सूर्य इनकी शक्ति से बुझ जाएगा। ब्रह्मास्त्र की शक्ति के संबन्ध में भारती जी चेतावनी देते हैं-

ज्ञात तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का
यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नर-पशु

तो आगे आनेवाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी।
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुंठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जाएगी
जो कुछ भी ज्ञात संचित किया है मनुष्य ने
सतयुग में, त्रेता में, द्वापर में
सदा सदा केलिए होगा विलीन वह
गेहूँ की बालों में सर्प फुफकारेंके
नदियों में बह बहकर आएगी पिघली आग।[1]

एटम बम की शक्ति इतनी खतरनाक सिद्ध होगी कि हमारे ऋषियों ने पीढियों से हमें जो ज्ञान हस्तान्तरित किए है, उनका अस्तित्व भी न रह जाएगा। युग युगों से मानव द्वारा संचित सारा ज्ञान एक ही एटम बम के प्रयोग से नष्ट हो जाएगा। ज्ञान का नष्ट होने का मतलब किसी पुस्तक का जला जाना नहीं, जिसमें ज्ञान सुरक्षित रखा गया है। इसका तात्पर्य है मानव का पशुवत हो जाना। युद्धरत दुनिया में मूल्यों का प्रक्षेपण असंभव होगा। तब मनुष्य का जन्म ही युद्धक्षेत्र में होगा। यहाँ आपसी विद्वेष, वैर, क्रोध, असत्य, अन्याय आदि राज करेगा।

विजयी मन की वितृष्णा

भारती का मानना है कि आज के शासन चक्र में प्रजा और राजा दोनों सुखी नहीं है। शासक के अन्याय से, कुशासन से प्रजा दुखी है तो शासक भी अनेक समस्याओं से उलझे रहते हैं। पराजय में राजा

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 75

लोग दुखी हो जाते हैं। लेकिन विजय से उसका मन पूर्णतः तृप्त नहीं होता। उसकी खुशी क्षण भर की रह जाती है। इस खुशी के बाद मन में एक अजीब किस्म की वितृष्णा जन्म लेती है। विजयी युधिष्ठिर अचिन्त्य वेदना से तडप रहते हैं-

ऐसे भयानक, महायुद्ध को
अर्धसत्य रक्तपात हिंसा से जीतकर
अपने को बिल्कुल हारा हुआ अनुभव करना
यह भी यातना ही है....
......सिंहासन प्राप्त हुआ है जो
यह माना कि उसके पीछे अन्धेपन की अटल परंपरा है।[1]

जो आत्मा युद्ध के पीछे कार्यरत है, कुछ समय के बाद वह अपनी गलतियों पर पश्चात्ताप करती है। डायनामिट के आविष्कर्ता आलफ्रड नाबल के प्रायश्चित्त के परिणामस्वरूप नोबेल पुरस्कार का जन्म हुआ था। हिरोशिमा और नागसाकी में एटम बम की वर्षा करनेवाले अमरिक्का के विमान चालक क्लॉड इथर्ली बाद में पागल हो गए।

रक्तपात और हिंसा के बाद युद्ध को जीतने के बाद पाँडवकुल अपने को बिल्कुल हारा हुआ अनुभव करते हैं। शरीर और मन से वे अपने को अधिक थके हुए महसूस करते हैं।

इस तरह पांडव राज्य हुआ आरंभ पुण्यहत
थे भीम बुद्धि से मन्द प्रकृति से अभिमानी

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 104

अर्जुन थे असमय वृद्ध नकुल थे अज्ञानी
सहदेव अर्ध विकसित थे शैशव से अपने
थे एक युधिष्ठिर
जिनके चिन्तित माथे पर
लदे हुए भावी विकृत युग के सपने।[1]

युद्ध में जो मर जाते है, केवल उसके शरीर का नाश होता है। लेकिन मरनेवालों की आत्मा एकदम विनष्ट हो जाती है। युद्ध की नृशंसता एवं पापाचरण से उसका विवेक खो जाता है। आज शासनचक्र अन्धेरे में उलट रहा है। शासक अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए सभी प्रकार के अन्याय करते रहते हैं। व्यवस्था में शासक सुखी है, न प्रजा। इस बुरी व्यवस्था से काल और देश को बडी खतरा हो जाएगी।

प्राचीनकाल में क्रूर और स्वार्थी शासक यहाँ राज करते थे। कंस, रावण, धृतराष्ट्र आदि शासकों के अमानवीय व्यवहार से तत्कालीन समाज और जनता अंधेरे में उलझ रहे थे। आज इसमें कोई बुनियादी बदलाव नहीं आया है। अपने पोशाक और रूप बदलकर ये शासक आज भी यहाँ जीवित है। इनके अन्यायी और बुरे व्यवहार से दुनिया में एक पाशविक संस्कृति जन्म लेगी। कौरवमाता गाँधारी का शापवचन तभी सच निकलेगा।

सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक दूसरे को परस्पर फाड खाएगा

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 37

तुम खुद उनका विनाश करते कई वर्षों बाद
किसी घने जंगल में
साधारण व्याघ के हाथों मारे जाओगे।[1]

गाँधारी यहाँ कृष्ण को ही नहीं, संपूर्ण मानवराशी को कोसती है। कवि ने संकेत किया कि युद्ध केवल बाहर ही नहीं भीतर भी चलता है। मनुष्य के मन में जो युद्ध चल रहा है, वह बाहरी युद्ध से सौ गुना त्रासद है। बाह्ययुद्ध भीतरी युद्ध की अभिव्यक्ति मात्र है। युद्ध के उद्देश्य चाहे वह जितना महान हो, मनुष्य को पशू बनने केलिए विवश कर देते हैं। मन का स्वार्थ ही इस अभिशाप का कारण है।

हमेशा हमें यह स्मरण रखना है कि मानवता की रक्षा के लिए, उसके हित केलिए कभी भी युद्ध नहीं लडा जाता। युद्ध का परिणाम केवल इतना होता है-मानवता की हार और दानवता की जीत।

मानवमूल्यों के हनन पर कवि ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'टूटा पहिया' में भी आकांक्षा व्यक्त किया था। टूटे पहिए का प्रतीकात्मक चित्रण करके कवि ने संकेत किया कि आज संसार में सब कहीं मानवमूल्यों का अभाव है। रथ का टूटा हुआ पहिया उन मानवमूल्यों का प्रतीक है जो जीवन के संघर्ष में अक्सर बली चढा किया जाता है। पतन की धाई की ओर जानेवाले मानव समाज को एक दिन मानवमूल्यों का सहारा लेना पडेगा। मानवमूल्यों की रक्षा से एक मंगलकारी समाज

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 81

का निर्माण संभव हो जाता है। उस समाज की सुन्दर और सुवर्ण कल्पना कवि मन में है। इस क्ल्पना के साकार हो जाने पर अन्धायुग नहीं रह जाएगा, आकाश में गिद्धों के सिवा बादल उमडेगा, सब कहीं अंधेरे के बदले प्रकाश फैल जाएगा।

साहित्य संबन्धी अपनी विचारधारा को अभिव्यक्त करते हुए डॉ भारती ने 'मानवमूल्य और साहित्य' में लिखा - "साहित्य की महत्ता और सामाजिक उपयोगिता इसी में है कि वह हमारी चेतना मैं बहुत गहरे उतरकर हमारी वृत्तियों का संस्कार करता है।"[1]

अन्धायुग के सृजन से भारतीजी ने साहित्यकार के इसी दायित्व को पूर्णतया निभाया है।

युद्ध की अनिवार्यता पर एक बहस : एक कंठ विषपायी

हिन्दी साहित्य जगत में दुष्यन्तकुमार के साहित्यक व्यक्तित्व के अनेक आयाम है। वे हिन्दी के सफल नाटककार, उपन्यासकार और कवि है। उनके साहित्य का मूलस्वर यथार्थ और मानवीय चेतना है। भोगे हुए यथार्थ और आम आदमी की व्यथा का आकलन उनके साहित्य में नज़र आते हैं। दुष्यन्तजी की रचनाएँ समष्टि के प्रति समर्पित है।

स्वतंत्रता के पश्चात्त कवि का काव्यजीवन शुरू होता है। युगीन परिस्थितियों का निरूपण उनके काव्य में काफी मात्रा में हुआ

1. मानवमूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती - पृ. 152-153

है। अपने काव्य संकलन 'जलते हुए वन का वसन्त' की भूमिका में उन्होंने लिखा - "मैं एक साधारण आदमी हूँ। इतिहास और सामाजिक स्थितियों के सन्दर्भ में, साधारण आदमी की पीडा, उत्तेजना, दबाव, अभाव और उसके संबन्धों के उलझावों को जीता और व्यक्त करता हूँ।"[1]

समाज से प्रतिबद्ध होने के कारण कवि अपने समय की राजनैतिक घटनाओं से काफी प्रभावित हुए। 1965 के भारत-पाक् युद्ध ने कवि मन पर चोट लगा दी। इसके पश्चात्त उनहोंने 'युद्ध और युद्धविराम के बीच' नामक कविता का प्रणयन किया। युद्ध में भारत की जीत हुई। लेकिन युद्ध-विराम से और ताश्कंद की समझौते से सारी खुशी समाप्त हुई। युद्धविराम और ताश्कंद की समझौते का कवि ने विरोध किया है। अपने ऊपर बम वर्षा हो रही है, लेकिन हम गाँधी और गौतम के नामों की याद करते हैं। अपने अभावों को भुलाकर भी राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए हम कटिबद्ध हो जाते हैं। सारी दुनिया में शक्तिपूजा होती है और हम युद्ध विराम के मुद्दे को शान्ति का पैगम्बर मानकर उसे उठाकर चलते हैं। यह सब क्या है? कवि को यह विरोधाभास-सा लगता है। कवि के शब्दों में:-

लोग कहते हैं कि अमक बुरा है या भला है
लोग ये भी कहते हैं कि आत्मवंचना में
जीवन जीना कला है
हम कुछ भी नहीं कहते

1. जलते हुए वन का वसन्त - दुष्यन्त कुमार - भूमिका

बार बार शान्त के धोखे में विवेक पी जाते हैं
संवेदनहीन शब्दों को
सदियों से
आत्मा पर बने हुए खाब दिखलाते हैं।[1]

हमारे युग की सबसे बडी आवश्यकता है अहिंसामय विश्वशान्ति की स्थापना। लेकिन इसकी संभावना आज भी बहुत दूर की लगती है। युद्ध और अहिंसा संबन्धी दुष्यन्तकुमार के विचार 'एक कंठ विषपायी' में मिलते हैं। साथ ही साथ आधुनिक जीवन की कई तरह की समस्याओं का संकेत भी इस रचना में मिलता है। व्यक्ति और समाज, युद्ध और अहिंसा, रूढि और रूढी भंजन जैसी परस्पर विरोधी बातों को यहाँ एक ही कथावस्तु के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी काव्य नाटक में दुष्यन्तजी का 'एक कंठ विषपायी' एक महत्वपूर्ण रचना है। कल्पना पत्रिका के संपादक बद्री विशाल पित्ती के सहयोगी संपादक इसे अन्धायुग के बाद हिन्दी की सशक्त काव्यकृति मानते हैं। लेखक ने इसमें शिवपुराण के सतीदाह की कथा का आश्रय लिया है। लेकिन उनका उद्देश्य पुराण का पुनराख्यान नही, बल्कि पुराण के माध्यम से समसामयिक समस्याओं की अभिव्यक्ति है।

प्रस्तुत रचना के भावपक्ष को स्पष्ट करते हुए दुष्यन्त कुमार ने जो पत्र लिखा वह सारिका के मई 1976 के अंक में छपा है। उन्होंने लिखा एक कंठ विषपायी पौराणिक आख्यान में आधारित होते हुए

1. जलते हुए वन का वसन्त - दुष्यन्त कुमार - पृ. 18

भी अपनी एप्रोच में आधुनिक है। उसमें कई प्रश्न एक साथ उठाए गए है। आधुनिक प्रजाताँत्रिक पद्धति की शिथिलता, शासन या सत्ता का व्यक्तिगत सनक या लिप्सा के कारण युद्ध..... युद्ध का औचित्य और उससे घुटना टूटता सामान्य आदमी, जिसका प्रतीक सर्वहत है, लेकिन उसकी मूल संवेदना यह है कि परंपरा से जुडा हुआ व्यक्ति या समाज...... उस परंपरा के टूटने को या जोडे जाने को सहज स्वीकार नहीं करता वह या तो विक्षुब्ध और कुपित हो उठता है या स्वयं टूटता है। जो महान व्यक्तित्व होते है, वे परंपरा से कटकर, नये मूल्यों को अंगीकार कर लेते है। शंकर ने जिस प्रकार थोडे ही समय में नई स्थितियों को स्वीकार किया.. इसलिए उसे एक कंठ विषपायी कहा गया है। पहले भी सिन्धु मन्थन के समय, शंकर ने विष पिया था, फिर परंपरा के टूटने का विष भी उन्हें पीना पडा। यही तो शंकर ने दूसरे अंक में कहा है,

हर परंपरा के मरने का विष मुझे मिला....
हर सूत्रपात का श्रेय....[1]

नाटक की कथा यों चलती है: दक्ष की पुत्री सती अपनी इच्छा के अनुसार महादेव शिवशंकर का वरण कर लेती है। दक्ष इससे कुपित हो उठता है। अपनी पुत्री द्वारा की गई अवहेलना में सति से अधिक शंकर को वे दोषी मानते हैं। शंकर का अपमान करके वे अपने क्रोध को शान्त करने का निश्चय करते हैं। इसकेलिए वे एक यज्ञ का आयोजन करते हैं और उसमें शंकर को निमंत्रण नहीं देता है। यज्ञ में

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ.

शिवजी को न बुलाने की दुरभिसन्धी से दक्ष पत्नी वीरिणी असहमत है, लेकिन इस असहमति को मानने के लिए दक्ष तैयार नहीं होते।

यज्ञ के शुरु होने पर सति शिवगणों और नन्दी के साथ यज्ञ स्थल पर पहूँचती है, अपने पति को न बुलाने के कारण वह पिता को दुर्वचन सुनाती है। पति पर हुए अपमान को असह्य मानकर वे आत्मदाह कर लेती है। सती के आत्मदहन को देखकर नन्दी और शिवगण कुपित हो जाते हैं। सभी अतिथियों को नन्दी भर्त्सना भी करते हैं। नन्दी और शिवगण के क्रोध से समूची दक्षनगरी में भीषण संहार होता है। पत्नी वियोग की खबर शिवजी के पास पहूँच जाती है, इसपर अत्यन्त व्यथित और क्रुद्ध शिवजी पत्नी के शव को कन्धे पर उठ लेते हैं और गणसेना और डाकिनियाँ, शाकिनियाँ तथा प्रेतों के दल को लेकर देवलोक पर आक्रमण करने केलिए आते हैं, क्यों कि वे मानते हैं कि प्रिया के आतम्दाह के लिए यज्ञ में उपस्थित देवगणों की अकर्मण्यता कारण है। शंकर को रोकने केलिए, इन्द्र ब्रह्मा से युद्ध की अनुमति माँगता है। नागरिकों को भी यही धारणा होती है कि बिना युद्ध के शंकर को अवरुद्ध करना असंभव है। इतना होने पर भी ब्रह्म युद्ध की अनुमति नहीं देते। उसी समय भगवान विष्णु आकर प्रणाम बाण छोडते हैं और सती के शव छिन्न भिन्न हो जाते हैं। अन्त में एक घोषणा सुनाई पडती है कि महादेव शंकर की सेनाएँ लौट गई है और युद्ध की संभावना समाप्त हो गई है।

नाटक की रचना के तीन धरातल हैं। एक तो पौराणिक धरातल है। पुराण की कथा को यहाँ दोहराया गया हैं। दूसरा इसका मानवीय धरातल है। पुराण की पुनराख्यान की अपेक्षा मानव की समस्याओं को उभारने की कोशिश लेखक ने की है। तीसरा किसी भी युग में चलनेवाली घटनाओं की ओर लेखक हमारा ध्यान खींच लेता है। वर्तमान में खडे होकर वे अतीत को एक दर्पण बनाते हैं, और इस दर्पण से वे भविष्य की ओर देखते हैं।

युद्ध एक चिरन्तन सत्य है, किसी भी समय समाज में घटित होने की संभावना है। मनुष्य जहाँ जहाँ है, और उसके मन में जब तक पाशवीय वृत्ति छिपी रहती है, तब तक सब कहीं युद्ध चलता रहेगा। इस सत्य की ओर लेखक हमारा ध्यान खींच लेते हैं।

समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव - 'एक कंठ विषपायी' में

कवि अपने समय का सच्चा प्रतिनिधि होता है, समाज के सक्रिय सदस्य होने के नाते समसामयिक परिस्थितियों से वह प्रभावित होता है। उन्हें रचनात्मक संगति देने का कार्य भी वह करता है। दुष्यन्तकुमार के समय राष्ट्र और समाज की कर्णधार युवापीढी भ्रष्टाचार, युद्ध आदि से त्रस्त यंत्रवत् जीवन जी रहे थे। सन् 1962 में चीनी आक्रमण और 1964 में पाकिस्तान के आक्रमण ने देश को बुरी तरह से प्रभावित किया था। एक ओर इन आक्रमणों ने देश को विकास के मार्ग से भटका दिया तो दूसरी ओर अनेक राजनैतिक विवाद भी उत्पन्न कर दिए। स्वतंत्रता के पश्चात्त राष्ट्र अपनी आन्तरिक समस्याओं

के सूत्र ढूँढने में व्यस्त था कि हिन्दी चीनी भाई-भाई का नारा लगानेवाले चीन ने सन् 1962 में भारत पर एक एक आक्रमण कर लिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय ब्रिटिश सरकार ने भारत-चीन की विभाजक रेखा के रूप में माक्मोहन रेखा निर्धारित की थी। लेकिन इसे मानने के लिए चीन तैयार नहीं हुआ। युद्ध का सामना करने की तैयारी भारत के पास नहीं थी कि अकस्मात रूप से 1962 में चीन अपनी सेना के साथ भारत आए। युद्ध के परिणामस्वरूप अधिकाँश क्षति भारत को हुई। इस आक्रमण ने भारत की शान्ति और अहिंसा के आदर्शों पर प्रश्नचिह्न लगाया और प्रजातंत्र के आदर्शों पर भी इसने हानि पहूँचाई। इस आक्रमण में राष्ट्र की असफलता के परिणामस्वरूप चारों और घृणा और निराशा का वातावरण निर्मित हुआ। चीनी आक्रमण ने समाजवादी समाज के संकल्प में हस्तक्षेप कर देश को विकास के मार्ग से भटका दिया। इन सभी का अंकन प्रतीकात्मक ढंग से दुष्यंतकुमार ने प्रस्तुत नाटक में किया है।

नाटक में ब्रह्म राष्ट्रनेता का और सर्वहत आम आदमी का नुमाइंदा है। परंपरा के पोषक के रूप में दक्ष का चित्रण किया गया है तो परंपरा को तोडनेवाले मूल्यान्वेषी के रूप में शिव का चित्र उभरता है। वे युवा पीढी का प्रतीक है। कुबेर, संपन्नताजन्य चारित्रिक विकृतियों का और दक्ष-पत्नी वीरिणी स्त्रियों की पारंपरिक असहायता का, विष्णु विवेक का, इन्द्र पदलिप्सा का प्रतीक जान पडता है।

दक्ष-भृत्य सर्वहत नाटक का सर्वाधिक संवेदनशील और कवि की कल्पना और आधुनिक भावबोध को व्यक्त करनेवाला पात्र है। विष्णु के मत में वह

'युद्धोपरान्त उग आई
संस्कृति के ह्रासमान मूल्यों का
एक स्तूप है - भग्नप्राय।[1]

तन और मन से वह अत्यन्त पीडित है। शरीर तो उसका घायल है, वह युद्ध में क्षत-विक्षत है। लेकिन उनका मन उससे अधिक घायल है। सर्वहत का संवाद नाटक की जान है। ये संवाद जीवन की जटिल समस्याओं की अभिव्यक्ति करते हैं। इन सवादों में जन सामान्य की घुटन है, और निराशापूर्ण जीवन की कहानी है। वह राज्य लिप्सा और युद्ध मनोवृत्ति से मारा हुआ पात्र है। उसकी समस्त प्रतिक्रयाएँ नए भावबोध को वाणी देती है।

युद्ध के पश्चात्त मानव के सामने भूख की कराल समस्या उपस्थित होती है। अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग से मानव की मृत्यू एकदम हो जाती है, किन्तु भूख से मानव तडपकर मर जाते हैं। खाने पीने के लिए उनके पास कूछ भी नहीं रह जाते हैं।

सर्वहत अपनी और सब लोगों की भूख की चर्चा करता है। कलश-कंगूरों को खाकर (पूंजीपतियों को मिटाकर) ही अपनी और सबकी भूख मिटाने को वह -

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 42

आतुर दिखता है।
देखो ये महल है,
कंगूरे है
कलश है
अतिथि भवन है
राजमार्ग है
इन सबको खा लो
इन सबसे भूख मिट जाती है
इन कलश-कंगूरों को खाकर ही
मेरी
और तुम्हारी
और हम सबकी क्षुधा शान्त होगी।[1]

भूख की समस्या केवल भोजन तक सीमित नहीं। लेखक के शब्दों में दुनिया में सब भूखे होते हैं। शासक यश, अधिकार और आदर्शों के भूखे है तो आम आदमी भोजन के भूखे होते हैं। अधिकार, लिप्सा, प्रतिष्ठा और आदर्शों की रक्षा के लिए शासक उद्वेलित हो उठता है तो आम आदमी गरीबी से तडपते चिल्लाते रहते हैं। अकाल, गरीबी, भूख ये आजकल युद्ध का पर्याय-सा बन गया है, जो मानवता के सबसे बडे अभिशाप भी है।

यश का भूखा राजा अपनी जनता की अपेक्षा हमेशा अपने यश के बारे में सोचता है। शत्रू के समक्ष शस्त्र से उत्तर देने में अक्षम

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 43

हो जाएगा तो वह स्वयं अपयश का भागी हो जाएगा। इस डर से प्रजा को अनदेखा करके ही शासक युद्ध में भाग लेते हैं। बाहरी तौर पर सब यह सोचते हैं कि प्रजा की सुरक्षा करने केलिए ही युद्ध हुआ है। लेकिन यह तो शासक की साजिश मात्र है। इस पर दुष्यन्त कुमार प्रश्नचिह्न लगाते हैं :-

और प्रजा की रक्षा करे युद्ध के द्वारा
और प्रजा का रक्त बहाए
क्षण में सब चिन्मय सौन्दर्य रुधिरमय कर दे
गायन-गुंजित नगर चीत्कारों से भर दे
जन-विवेक को।[1]

युद्ध के बाद मानव अस्तित्वहीन रह जाता है। अपने अस्तित्व को पहचानने में वे असमर्थ हो जाते हैं। वह कौन है? कहाँ है? इसे पहचानने तक की क्षमता उसमें नहीं रह जाती। एक प्रकार की अनिश्चित स्थिति में मन पहूँच जाता है। नाटक में सर्वहत इन शब्दों से अपना परिचय देते हैं:-

शायद मैं राजा हूँ
शायद मैं शासन का प्रतिनिधि हूँ
या मैं इस राज्य की प्रजा हूँ
और सब कुछ हूँ।[1]

युद्ध की भीषणता और उसके बाद की दर्दनाक स्थिति का वर्णन सर्वहत के शब्दों में सुनिए:-

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 46

सारे नगर में ताजा
जमा हुआ रक्त है
और सडी हुई लाशें है
मुडी हुई हड्डियाँ है
क्षत-विक्षत तन है
और उनपर भिन्नाते हुए
चीलों और गिद्धों के झुण्ड
और मक्खियाँ है।[1]

दुष्यन्तकुमार युद्ध को आत्मसुरक्षा नहीं, आत्मघात मानते हैं। यह आत्मघात केवल वैयक्तिक नहीं, सामूहिक है। आत्मसुरक्षा केलिए शासकों को युद्ध करना पडता है तो जनता की सुरक्षा अस्थिर बन जाती है। यदि आत्मसुरक्षा सबका आत्मजात अधिकार है तो वह ज़रूर जनता का भी अधिकार है।

आत्मघात
वही भी सामूहिक
मेरे अने ज्ञानकोश में
युद्ध शब्द का यही अर्थ है।[2]

सर्वहत जैसे आम आदमी की विडंबना है कि युद्ध के कारणों से उन्हें दूर का भी संबन्ध नहीं। युद्ध की परिस्थितियों के उत्पन्न करने का कारण भी वह नहीं। लेकिन उन्हें युद्धजन्य संकट हमेशा भोगना ही पडता है।

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 45
2. वहीं - पृ. 39

क्योंकि यह विधाता के नियमों की विडंबना है।
चाहे न चाहे किन्तु
शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
प्रजा को वहन करना पडता है,
उसे गलित मूल्यों का दण्ड भरना पडता है।
और मैं मनुष्य ही नहीं हूँ
मैं प्रजा भी हूँ।[1]

किसी भी समस्या का समाधान युद्ध से ढूँढना मुश्किल की बात है। युद्ध के समय अनीति, भ्रष्टाचार आदि बढ जाते हैं। बेकारी की समस्या बढ जाती है। प्रजातंत्र इसी प्रकार खतरे में पड जाता है। शासन को कोसती हुई जनता पागल सी बन जाती है। यदि शासक युद्ध को किसी समस्या का समाधान समझे तो वह केवल भ्रम है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्त 1962 और 1964 में यहाँ जो युद्ध हुए इसके परिणामस्वरूप यहाँ प्रजातंत्र के मूल्य भी अस्त व्यस्त हो गए। प्रजातंत्र से प्रजा शब्द कहीं दूर गए। तंत्र या साजिश है सब कहीं। प्रजा को शासक अपने तंत्रों से हारते हैं। परिणामस्वरूप एक आत्महीन, स्वार्थपूर्ण, प्रेमहीन पीढी जन्म लेती है। प्रजातंत्र की पराजय का चित्र लेखक ने इसमें खींचा है -

मैं तो प्रजा हूँ
मुझे क्या हक है. . . .. ?
क्या हक है जो मैं प्रलाप करूँ?
अपना अमूल्य समय नष्ट करूँ?[1]

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 49
2. वहीं

चरित्रों की प्रतीकात्मकता

परंपरा का मूल्य समयानुकूल है, इन्हें लांघना ही चाहिए। मानव विकास के लिए परंपराओं से मुक्ति पाना पहले आवश्यक है, परंपराओं से मुक्ति दिलाने का काम प्रस्तुत नाटक में शंकरजी ने किया है। वे आरंभ में परंपराभंजक के रूप में और फिर परंपरापोषक के रूप में नज़र आते हैं। अन्त में विष्णु के प्राण से वे मुक्ति पाते हैं।

शंकर के चरित्र के द्वारा लेखक यह भी व्यक्त करते हैं कि व्यक्ति जितना भी महान हो, जब अपनी इच्छा और आकांक्षा में बाधा महसूस करने लगता है तो वह अपना नियंत्रण खोकर विभ्रामक स्थिति में पहुँच जाते हैं। कहने का तात्पर्य है हरेक व्यक्ति, चाहे वह जितना भी महान हो अन्दर ही अन्दर स्वार्थी है। स्वर्थता से वशीभूत होकर वह सर्वनाशकारी बन जाता है। देह-युक्त, देह मुक्त, भोगरागहीन शिवशंकर भी अपने पत्नी वियोग की चिन्ता से अन्धा हो जाता है। मन का संतुलन खोकर एक आम आदमी की तरह वे युद्ध के लिए उद्यत होते हैं।

यहाँ शंकर का चरित्र अन्तर्विरोधों से ग्रस्त है जो आधुनिक मानव के अन्तर्दन्द्व को व्यंजित करते हैं। एक मोहासक्त प्रेमी के रूप में, सति के शव को कन्धे पर उठाए वे घूम रहे हैं-

चलो अलकनन्दा की ओर चलें अब प्रेयसी
वहाँ तुझे मैं
स्नान कराऊँगा उस जल में
फिर चन्दन से माँग भरूँगा

वन्य प्रसूनों से मैं अपनी
प्रेयसी का श्रृंगार करूँगा।[1]

नाटक में इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि विरोधी नेताओं के प्रतीक हैं। ये लोग देश को युद्ध की आग में झोंक देना चाहते हैं। युद्ध के मूलकारणों को परखने के बजाय दुराचारी शासक आग में घी डालने का काम करते हैं। राष्ट्र नियामकों की हृदयहीनता तथा अमानवीयता इन चरित्रों के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। आज के नेता भी इन्द्र, वरुण, कुबेर की भाँति व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए षड्यंत्र रचते हैं और युद्ध पर बल देते हैं।

ब्रह्म का चरित्र युद्धविरोधी है। वे इसे सामूहिक आघात मानकर टाल देने का प्रयास करते हैं।

विष्णु संतुलित दृष्टिकोण अपनाकार शान्ति स्थापित करना चाहते हैं। सर्वहत आम जनता का प्रतीक हैं, जिसके माध्यम से लेखक ने भूख के विचारणीय प्रश्न को उठाया है। नगर नगर में युद्ध के समय पीने का पानी भी नहीं मिलता है। पीने के पानी के अभाव में वह शासक वर्ग से रक्त माँगता है। क्योंकि रक्त का समुन्दर बहाने में शासकगण समर्थ बन गए है।

किसी एक प्रान्त को अपने कब्जे में करने से शासक अत्यन्त खुश होते हैं। युद्ध से आक्रान्त और पीडित आम जनता के लिए वे धन,

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 82

रोटी, आदि परोसते हैं। उनकी चिल्लाहट को वे अनसुना करते हैं। अनेक लोग बेघर होते हैं। शासक, चाहे जितना भी महान हो, उनकी क्षतिपूर्ति के लिए असमर्थ होते हैं।

दुष्यन्तकुमार का युद्धसंबन्धी विचार

दुष्यन्तजी ने 'युद्ध और युद्धविराम' के बीच नामक अपनी कविता में युद्ध की समस्या और उसके दुष्परिणामों पर विचार किया था। तृतीय विश्वयुद्ध की आशंका, अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर हथियारों की होड आदि पर कवि का संवेदनशील मन हमेशा व्याकुल हो उठता है।

लोग घरों में भी तलवारों पर मचल रहे हैं,
हम
युद्धस्थल में
एक मुर्दे की शान्ति का पैगंबर समझकर
उठाए चल रहे हैं।[1]

लेखक हमेशा युद्ध के विरोधी रहे। उन्होंने अपनी युद्धसंबन्धी मान्यताओं को ब्रह्म के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। ब्रह्म देव की युद्ध संबन्धी मान्यताएँ सभी से अलग और सर्वत्र स्वतंत्र है। शिव की सेना देवलोक पर धावा बोलने आती है तो इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि ब्रह्म से युद्ध की अनुमति माँगते हैं, लेकिन वे अनुमति नहीं देते। उनके मत में युद्धारंभ करने से पहले युद्ध के परिणामों का विचार अनिवार्यतः कर लेना चाहिए। यदि कोई किसी का मान भंग करने के लिए युद्ध कर

1. जलते हुए वन का वसंत - दुष्यन्त कुमार - पृ. 19

लेता है तो पहले आक्रमणकारी का ही मान भंग हो जाता है। आत्मसुरक्षा के लिए किया जानेवाला युद्ध आत्मघात मात्र होता है। शासकों को युद्ध करने का अधिकार अवश्य है, किन्तु किसी समस्या के सामाधान के लिए नहीं, बल्कि अधिक से अधिक विशिष्ट परिस्थितियों में समाधान के संभावित कारण के रूप में। प्रजातंत्र का संभावित मतलब यह नहीं है कि जन-अविवेक के सामने शासक को झुकना चाहिए। बल्कि युद्ध की अनिवार्यता विवेक सिद्ध हो तो शासक को युद्धभूमि में सबसे पहले अपनी आहुति देनी होगी। ब्रह्म इस केलिए तैयार भी है। क्रोधान्ध होकर युद्ध का निर्णय लेना भूल है। यदि कोई आक्रामक अपने पाए हुए गलत भ्रमों को लेकर किसी दूसरे पर आक्रण कर दे तो भी युद्ध की अनिवार्यता सिद्ध नहीं होती। युद्ध की अनिवार्यता के न होते हुए भी अपनी सेना को युद्ध की आज्ञा देने से कहीं अधिक अच्छा यह होगा कि शासक अपना राज-दण्ड त्याग दे।

शिव के सेनापति वीरभद्र उनकी जडाओं से उत्पन्न सन्तान है। शिवगण उनके मनसिक तत्व है। डाकनियाँ और भूतप्रेत इनके अन्तर्विकार है। युद्ध में होनेवाली हिंसा से उक्त सभी तत्वों को समाप्त नहीं किया जा सकता, बल्कि उक्त सभी तत्वों की वृद्धि में युद्ध की हिंसा कारण बन जाएगी। रक्तपात और हत्याओं से यदि नए-नए गण, सैनिक और भूतप्रेत उत्पन्न होंगे तो देवलोक उनका मुकाबला भी नहीं कर सकता। अत: अपने प्राणों की आहुति युद्ध के लिए करने के बजाय सत्य केलिए करना है।

युद्ध को टालने का सद्‌भावनापूर्ण प्रयास किसी भी पक्ष से नहीं होता है। सती के आत्मदाह के पश्चात्त शंकर को सांत्वना देने के लिए कुबेर, वरुण आदि आते हैं और बडी ही चाटुकारिता भरी भाषा में वे उनकी स्तुति भी करते हैं। शिवजी उनसे पूछते हैं कि यदि वे उन्हें मित्र मानते है तो उन्हें यज्ञ में आमंत्रित रखने का प्रतिवाद उन्होंने दक्ष को क्यों नहीं किया? यदि ऐसा हो तो सति का आत्मदाह भी नहीं हो जाएगा।

इन्द्र, कुबेर, वरुण आदि देवता शंकर से युद्ध करने केलिए उत्सुक है कि महादेव की श्रेष्ठता सभी केलिए ईर्ष्या का विषय है। इन्द्र अपने देवराजत्व की रक्षा और कुबेर अपने धनपतित्व की रक्षा के लिए शंकर से लडना चाहते हैं और वरुण आदि देवता उनका समर्थन करते हैं। "इन्द्र और कुबेर का युद्ध के लिए उद्यत होना शंकर के प्रति सदोष पूर्वाग्रह और स्वार्थरक्षा की चिन्ता से ही प्रेरित होता है, इसलिए असमर्थनीय है। अपने राज्य की रक्षा के दायित्व का बहाना बनाकर इन्द्र लडना चाहता हैं। परन्तु वही अकेला, देवलोक का संपूर्ण दायित्व ओढ नहीं सकता। ब्रह्म पर भी तो कुछ ज़िम्मेदारी है। जब ब्रह्म युद्ध को टालने का हर संभव प्रयास करते है तो इन्द्र, कुबेरादि देवताओं का युद्ध का आग्रह उचित नहीं लगता।"

एक सत्य से कटकर दूसरे सत्य को स्वीकार करने में जो आन्तरिक अडचन होती है, उसी के कारण हम क्रुद्ध होते हैं। एक

1. दुष्यन्तकुमार - रचनाएं और रचनाकार - गणेश तुलसीदास अष्टेकर - पृ. 120

परंपरा की समाप्ति और दूसरी की शुरूआत के बीच एक शून्य की स्थिति उत्पन्न होती है। यह स्थिति अत्यन्त भयानक है। उक्त स्थिति में पहूँचकर साधारण जन सर्वहत के समान भयभीत हो जाते हैं। सर्वहत का यह कथन बिल्कुल ठीक है कि पुरानी परंपरा को स्वागत करने में लोग हिचकते हैं। क्योंकि एक और विनाश की व्यथा है, दूसरी ओर नव-निर्माण की भी। इस दोहरी व्यथा से बचने केलिए लोग अपने को व्यक्त रखने का प्रयास करते हैं। इसकेलिए वे युद्धों का बहाना रचते हैं। युद्ध और कुछ नहीं हैं, बल्कि ऐसी ही व्यस्तता का एक नाटक है। न्याय, प्रतिष्ठा की रक्षा, दायित्वों का पालन आदि युद्ध के बहाने मात्र है।

इन्द्र को लक्ष्य करके सर्वहत ये सब बताते हैं क्योंकि किसी भी मूल्य पर युद्धारंभ करने केलिए इन्द्र को आत्मिक क्लेश होता है और उन्हें आत्मचिन्तन का अवसर भी मिलता है। परिणामतः इन्द्र को अपनी भूल मालुम होती है जिससे उसका युद्धोन्माद क्षीण हो जाता है। नाटक का परिणाम शुभ होता है।, लेखक का आशावादी दृष्टिकोण यहाँ प्रतिफलित होता है।

सुने सब प्रजा
यह समाचार सुने महादेव शंकर की सेनाएँ
लौट आई. . . .।
युद्ध हो गया समाप्त
सुने सब प्रजा
यह समाचार सुने।[1]

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 125

आज आतंकवाद, संप्रदायवाद, युद्ध, विध्वंस आदि ने विश्व पर अपना वर्चस्व रख लिया है। तीसरे विश्वयुद्ध की विभीषिका विश्व भर में फैल गई है। कंस, कुबेर, रावण जैसे अत्याचारी शासक हरेक युग में जन्म ले रहे हैं। केवल नाम बदल गए है, पाशवीयता और अमानवीयता उनसे तनिक भी कम नहीं। उनका दिमाग विकसित है, लेकिन दिल एकदम खराब। इस विशेष वातावरण में 'एक कंठ विषपायी' जैसी महत्वपूर्ण कृति की प्रसंगिकता बढ गई है।

उत्तर-प्रियदर्शी -अज्ञेय

हिन्दी के प्रयोगवादी कवि अज्ञेय के गीतिनाट्य उत्तर-प्रियदर्शी अशोक के मानसिक परिवर्तन, बुद्ध धर्म की ओर आकर्षण आदि पर आधारित है। 1967 में लिखित इस गीतिनाट्य में आधुनिक मानव की युद्धलिप्सा, आधुनिक समाज में व्याप्त मूल्यहीनता, आत्मघाती प्रवृत्ति और निराशा को वाणी मिली है।

कलिंग-विजेता, बुद्ध-धर्म के उपासक अशोक, पहले अत्यन्त क्रूर और प्रचंड स्वभाव का आदमी था। उसने एक अतिक्रूर व्यक्ति को बुलाकर अपनी राज्य सीमा में एक नरक का निर्माण करवाया। राजा का आदेश था कि नरक के नियमों से स्वयं वह भी शासित होगा। इसकी परिधि में जो भी आये उन्हें पाप का दंड देना है। बाद में एक दिन अशोक उस नरक द्वार में प्रवेश करते हैं, नरकाधिपति उन्हें दंड देने को तैयार हो जाते हैं। लेकिन बुद्ध भिक्षु धर्मोपदेश देकर उन्हें मोक्ष

प्रदान करते हैं। अशोक के मनपरिवर्तन इसी मनोवैज्ञानिक क्रम पर आधारित है।

यहाँ आशोक एक ऐतिहासिक चरित्र नहीं, बल्कि एक साधारण आदमी है, जिसके मन में आधुनिक मानव का सभी अन्तर्द्वन्द्व निहित है। "आधुनिक संवेदना की जटिलताओं से उलझा हुआ मनुष्य अपने अहंकार और अन्तर में विद्यमान नरक से उसी प्रकार मुक्ति नहीं पाता जिसप्रकार सम्राट अशोक अपने अन्तर के नरक को भोगता हुआ भीतरी नरक से प्रयास करने पर भी ऊपर नहीं उठ पाता क्योंकि वह मात्र ऐतिहासिक पात्र नहीं, आधुनिक मानव का प्रतीक भी है।"[1]

कलिंग विजेता अशोक अत्यन्त दुर्दम, निर्मम, अप्रतिम शासक है। कलिंग के रणप्रांगण में उसने शोणित की निमर्याद प्लवन किया था।

उर वज्र
नेत्र अंगारक
युगल मुकुल में करते प्रतिबिंबित
कलिंग लक्ष्मी का घर्षण
रण-प्रांगण में निमर्याद प्लवन
शोणित की
स्वर-स्रोत गंगा का।[2]

अशोक के व्यक्तित्व का प्रतिफलन यहाँ के किसी भी साम्राज्यवादी शासक में नज़र आते है। अशोक के समान वे भी

1. सातवें दशक के प्रतीकात्मक नाटक रमेश गौतम - पृ. 81
2. उत्तर प्रियदर्शी - अज्ञेय - पृ. 49

साम्राज्यप्राप्ति के लिए मासूम जनता के 'शोणित की निमर्यादित प्लवन' करते हैं। उसके पश्चात्त वे किसी तरह की अन्तरूनी बेचैनी से त्रस्त रहते हैं। इसी तरह वे अपने अन्तर्मन में नरक का निर्माण करते हैं।

रणक्षेत्र में गिरकर जो आत्माएँ मुक्त हो गए हैं, वे राजा के मन को बेचैन बनाने लगे। वे उनके तन में भी एक तरह की फुरहरी जगा रहे थे। राजा उन्हें अपने नरक में पहूँचाकर कठोर सज़ा देना चाहते है।

'नरक चाहिए मुझको
इन्हें यंत्रणा दूँगा मैं, जो प्रेत-शत्रु ये मेरे तन में
एक फुरहरी जगा रहे हैं,
अपने शोणित की अशरीरी छुअन से!
उन्हें नरक![1]

रण जीतने पर भी, इतने लोगों के बेमानी मृत्यू देखने पर भी अशोक के मन में पश्चात्ताप नहीं होता है। एक तरह की बेचैनी होती है, मन आशान्त होता है। अशोक की क्रूरता की पराकाष्ठा है कि वह प्रेत आत्माओं को भी बेकार छोडने को नहीं तैयार होता है। वह सोचता है कि अपने तन में जो फुरहरी है, मन में जो अशान्ति है, इनका दायित्व इन आत्माओं का है। इसलिए इन्हें नरक में पहूँचाकर कठिन यंत्रणा देनी है।

1. उत्तर प्रियदर्शी - अज्ञेय - पृ. 49

अशोक के राज्य में संध्या की वेला में सुन्दर लालिमा नहीं नज़र आती। बदले इसके आवाम के रुधिर की शोणिमा छाई हुई है। अशोक देखता है कि चारों दिशाएँ अनुक्षण रुधिर से सिंचित होती रहती हैं और संध्या की स्निग्ध शान्ति को भंग करके तथा मंगल गायन को भंग करके असंख्य स्वरों का चीत्कार उमडा आता है। इनके कारणों के बारे में सोचकर उनका मन निरुत्तर हो जाता है। इतना ही नहीं नगर के मंदिर-कलश, पताक, देवतरु सब रुंडों की सेना के समान अपने ही सिर को रौंदकर आगे बढ जाते हैं।

अज्ञेय ने इसमें हिंसा और पाशवीयता पर अहिंसा और बुद्ध की करुणा की विजय दर्शायी है। व्यक्ति ही अपने नरक का निर्माण करनेवाला है। अपने मूल्यों, और आदर्शों को बलि चढाकर वह हमेशा अपने में नरक के निर्माण में लगे हुए हैं। धर्मवीर भारती ने 'अन्धायुग' में बताया है कि मनुष्य के अन्तर्मन में कहीं एक अन्धा गह्वर है, इस अन्धे गह्वर में कहीं न कहीं एक पशु का वास होता है। अज्ञेय के नरक और भारतीजी के अन्धा गह्वर में कोई फर्क नहीं, दोनों एक ही है।

भूमिका में अज्ञेय ने ज़ाहिर किया कि विजय-लाभ पर पहले अहंकार -फिर अहंकार के ध्वस्त होने पर नये मूल्य का बोध, नई दृष्टि का उन्मेष यही सहज मनोवैज्ञानिक क्रम है।' अशोक के मनपरिवर्तन इसी मनोवैज्ञानिक क्रम पर आधारित है।

युद्धमन - युद्ध की त्रासदी का दस्तावेज़

विश्वमानव को अमन का रास्ता दिखाने केलिए साहित्यकार हमेशा प्रयत्नशील रहते हैं। जब यह प्रयास नाटक के माध्यम से किया जाता है, वह अत्यधिक प्रभावशाली रह जाता है। बदलते हुए सामाजिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में रंगकर्म करनेवाला नाटककार है ब्रृजमोहन शाह। अपने युग और समाज के प्रति वे अत्यधिक ईमानदार और प्रतिबद्ध दिखाई पडते हैं। वर्तमान युग की मूल्यहीनता पर उनका संवेदनशील मन अत्यधिक चिन्तित रहा। इसलिए भ्रष्टाचार, युद्ध, बेरोज़गारी, अराजकता आदि युगीन समस्याओं को उन्होंने अपने नाटकों में अभिव्यक्त किया। वास्तव में उनके नाटक प्रेक्षक को जीवन के एक सही अन्दाज़ का अनुभव कराता है और मानव जीवन की समस्याओं से सही अर्थ में अवगत कराके सोचने केलिए विवश करता है।

अपने प्रसिद्ध नाटक 'त्रिशंकु' की भूमिका में शाह ने लिखा "नाटक का काम समस्या का समाधान करना नहीं, वरन् समस्या का एहसास कराना है। समाधान के लिए धार्मिक व राजनीतिक मंच है, रंगमंच नहीं। नाटक में समस्या के समाधान को समाविष्ट कर समस्या का समाधान नहीं हो जाएगा। युद्ध, हिंसा, अराजकता, भ्रष्टाचार, भुखमरी आदि वर्तमान युग की ज्वलन्त समस्याएँ है।" शाह ने इन समस्याओं को भली भाँति समझा। समाज को इन समस्याओं का एहसास कराने केलिए इन्होंने रंगकर्म का आश्रय लिया।

1. त्रिशंकु (दूसरा संस्करण) - बृजमोहन शाह - भूमिका

शाहजी के नाटक त्रिशंकु (1973) में सामाजिक विसंगतियों में घुटते हुए मनुष्य की पीडा का चित्रण है। इसमें उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी आजीविका का साधन जुडाने में असमर्थ एक युवक की कहानी है। समाज में कहीं भी वह टिक नहीं पाता है। विश्र्वविद्यालय व बेकारी के बीच उसकी स्थिति त्रिशंकु के समान हो जाती है। सामाजिक व्यवस्था के विरोध में वह क्रान्ति लाना चाहता है, लेकिन उसमें क्रान्ति केलिए आवश्यक साहस नहीं। नाटक के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों का एक प्रकार से प्रतीकात्मक रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं।

शाह के नाटक वर्तमान सामाजिक समस्याओं की उपज है। उनकी साहित्य दृष्टि हमेशा आम जनता के साथ रही।

युद्धमनः युद्ध की त्रासदी को स्वर देनेवाला नाटक

युद्ध तमाम समाज की सबसे भीषण और ज्वलन्त समस्या है। यह आज के युग का पर्याय सा बन गया है। आज के दिनों में टी.वी, रेडियो और समाचार पत्रों में युद्ध संबन्धी खबर ही प्रमुख स्थान हासिल करती है।

भूमिका में लेखक ने स्वीकार किया है, 'युद्ध से बुरा वक्त इंसान की ज़िन्दगी में दूसरा नहीं होता, अगर बात युद्ध के वक्त तक ही मर्यादित रहती तो, तसल्ली रही जा सकती थी, परन्तु युद्ध के बाद की हालत और भी भयंकर होती है। युद्ध एक ऐसी भयंकर मूर्खता, मानव हत्या का बर्बद उन्माद, पुनरावृत्ति विध्वंस है, जो मानव सभ्यता को पंगू कर नाशोन्मुख करता है।

युद्धमन पर विचार करते हुए कन्हैयालाल नन्दन ने धर्मयुग में लिखा 'युद्धमन युद्ध की भयानकता और उसकी मनोवेज्ञानिकता के संदर्भ में, उसके विश्वव्यापी परिणामों की ओर दर्शकों का ध्यान दार्शनिक तौर पर आकर्षित करता है। नाटक की ज़मीन आम नाटकों से थोडी हटकर थी, इस अर्थ में, कि शायद दिल्ली थियटर ने हल्के से भौतिक मूल्यों से हटकर विश्वव्यापी दार्शनिक मूल्यों को छुआ है, और मृत्यू के सम्मुख जीवन की व्यर्थता का चिन्तन के धरातल पर पर्दाफाश करता है........। मृत्यू के आसन्न संकट में फौज़ी ज़िन्दगी के टुकडे बडे जीवन्त लगे।

युद्धमन में कोई गढित या विस्तृत कथानक नहीं। लेखक ने पहले ही सूचित किया है "युद्धमन काल्पनिक कथासाहित्य या युद्धविशेष में रत दो मुल्कों की क्रिया-प्रतिक्रिया की मात्र अवलोकन नहीं, वरन् मानव कार्य व्यापार जनित अनुभवों का वह प्रलेख है, जो पिछले कई वर्ष से मेरे मस्तिष्क को साल रहा था।"[1]

नाटक के ग्यारह दृश्य हैं। सभी दृश्य जंग के धमाकों और घायल सैनिकों की चीख पुकार से भरे हुए है। नाटक में सैनिकों के आत्मसंघर्ष, आम जनता की प्रतिक्रिया, बुद्धिजीवियों के मुखौटेवाले व्यक्तित्व, हथियारों की बिक्री आदि का चित्रण किया गया है।

युद्ध महाशक्तियों के बीच में होता है, लेकिन उसके शिकार बन जाती है आम जनता। समाज में अचानक उत्पन्न होनेवाला युद्ध करोडों मानव के सपनों को बरबाद कर देता है।

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - भूमिका

युद्धमन में दो मुल्कों के बीच हुए घमासान युद्ध का वर्णन है। युद्ध में अनेक सैनिक मारे गए, लेकिन इस युद्ध के लिए एक ही लेफ्टिनेंट को ज़िम्मेदार घोषित करने का प्रयास हो रहा है। अदालत में उसपर बहस चल रहा है। यहाँ के वकील लेंफ्टिनेंट की 'ओटोबयोग्रफी में इन्टरस्चिड है' और इसपर एक बडिया फिल्म बनाना चाहता है। इसलिए वे लेफ्टिनेंट के लिए केस लडते हैं। defence council लेफ्टिनेंट को बेकसूर साबित करने का प्रयत्न करते हैं, वे अदालत में पूछते हैं, "क्या यह लडका खुद लेफ्टिनेंट बना? यह तो घर में लाड से पल रहा था, हमजोलियों में मस्ती से खेल कूद रहा था, गाँव के सीधे सच्चे माहौल में प्यार से जी रहा था....... जंग इसके खाबों खयाल से परे की बात थी? किसने दिए इसके हाथ में हथियार? किसने सिखाया इसको मशीनगन चलाना।"[1]

युद्ध के लिए किसी एक व्यक्ति या सैनिक मात्र ज़िम्मेदार नहीं होता है। उसके लिए सारे मुल्क और वहाँ के सबसे छोटे से बडे व्यक्ति तक ज़िम्मेदार है। महाशक्तियों की निगाहें हमेशा गिद्ध की तरह छोटे देशों पर पडी रहती है। युद्ध के लिए आवश्यक हथियार सैनिक स्वयं नहीं बनाता। हथियारों की बिक्री में लगे हुए संपन्न देश, युद्ध को अनिवार्य मानते हैं। युद्ध को सदैव बनाए रखने का प्रयास वे करते रहते हैं।

---

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 20

युद्ध क्षेत्र में निरीहों की हत्या करनेवाला सैनिक भी क्रूर या पाखण्डी नहीं होता। वे युद्ध को अपना कर्तव्य मानते हैं। कभी वे युद्ध के विध्वंस से ऊब ऊठते हैं, उनका मन मस्तिष्क एकदम खराब भी होते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं, उन्हें मरते दम तक जंग करने में बडा मज़ा होता है। कुछ लोगों को जंग के लिए अभ्यास देते हैं, ऐसे लोग युद्ध लडते है, लेकिन बीच में वे जंग से घबडा भी जाते हैं। कुछ लोगों के ऊपर जंग थोपी जाती है। वे जंग के वातावरण से सिहर भी उठते हैं, लेफ्टिनेंट इस कैटगरी में आनेवाला है, जिनकेलिए 'जंग खाबों के परे की बात' थी। उसका मन बीच में जंग से घबडा जाता है। बीच बीच में पत्नी की यादें उसे सताती रहती हैं। कुछ दिनों की छुट्‌टी वे चाहते हैं, उससे कहा गया है कि "छुट्‌टी के आवेदन के साथ एक खत भी लिख देना, क्योंकि घमासान लडाई होनेवाली है। 'अगर दुश्मन के खेरे से निकल सके तो छुट्‌टी मिल जाएगी, नहीं तो तुम्हारी जगह तुम्हारा खत शायद कभी कोई पहूँचा ही दे, तुम्हारी वाईफ के पास।"[1]

सैनिक हमेशा साहसी और खतरनाक ज़िन्दगी जीते हैं, न चाहते हुए भी उन्हें देश के लिए अपने को अर्पित करना पडता है। नाटक के मेजर जो है, उन्हें जंग लडते लडते जंग से नफरत हो गई है। लेकिन वे सोचते हैं कि जंग के हारने की हालत जंग लडने से बुरी होती है। इसलिए वह लडता ही रहता है। यह सच है कि आपसी मामलों को सुलझाने केलिए किसी भी आदमी युद्ध को अनिवार्य नहीं

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 77

मानता है, फिर भी उन्हें दर्दनाक और भीषण युद्ध लडना पडता है, लेकिन युद्ध को किसने शुरु किया? इसका सही उत्तर देने में सभी असमर्थ है। क्योंकि युद्ध के लिए अपने को ज़िम्मेदार घोषित करने केलिए कोई भी तैयार नहीं है। न अपना बल्कि दूसरे देश ने ही पहले आक्रमण शुरू किया है, यही सब कहते हैं। दूसरे देशवासी भी यही बताते है कि युद्ध हमने नहीं दुश्मन ने शुरू किया है। देश के मशहूर economist युद्धसंबन्धी लेखा-जोखा प्रस्तुत करने केलिए अदालत में उपस्थित है, वकील के पूछने पर वे युद्ध की लेखा-जोखा प्रस्तुत करते है।

वकील : तीन चौथाई सदी में पाँच महाद्वीपों में कुल कितनी जंगें लडी गई?

इकोनोमिस्ट : एक सौ बत्तीस

वकील इन 132 जंगों में कितने कीमत के हथियार इस्तेमाल में आए?

इको : ढाई मिलियन डालर्स से ज़्यादा।

वकील : हमारे मुल्क के पास जो न्यूक्लियर आर्म्स है, उनका कुछ अन्दाज़ा?

इको हिरोशिमा में काम आनेवाले बम से 615,385 गुना ज़्यादा और दूसरे ताकतवार मुल्कों को मिलाकर एक मिलियन से ज़्यादा।[1]

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 15

जंग में एक बिलियन से ज़्यादा लोगों की मृत्यू हो चुकी है। युद्ध में एक वियतनामी को मारने केलिए 3222000 डालर्स खर्च किया गया। लेकिन एशिया में गुरत से मरते हुए लोगों की रक्षा करने के लिए एक पैकट सिगरट की कीमत भी खर्च नहीं किया गया। इकोनोमिस्ट के उत्तर से पता चलता है कि आधे मिलियन माहिर वैज्ञानिक और इंजिनीयर युद्ध के लिए आवश्यक शस्त्रों के निर्माण में लगे हुए हैं।

दो महायुद्धों की विभीषिका से संसार की जनता त्रस्त हो उठी है। अब सब के मन में तीसरी जंग की आशंका है। हरेक व्यक्ति सोचता है कि शासकों की मानसिकता दुनिया को तीसरी जंग की विभीषिका तक पहूँचेगी। अगर एक तीसरी जंग होगी तो उसका परिणाम क्या होगा? इसका उत्तर देने केलिए देश के बडे वैज्ञानिक अदालत में उपस्थित है। तीसरी जंग कैसे लडी जाएगी? इसका पता उस वैज्ञानिक को नहीं, लेकिन वे बताते हैं कि "चौथी जंग पत्थरों से लडी जाएगी, अगर इन्सान बचा तो।"[1]

शक्तिशाली देश दूसरे देशों को दुश्मनी निगाहों से देखते हैं। वहाँ के बुद्धिजीवी वैज्ञानिक खतरनाक बम्बों के निर्माण में लगे हुए है। उनके दिमाग का उपयोग न तो किसी क्रियात्मक कार्य के लिए हो रहा है, ताकि दुनिया लाभान्वित हो जाए। यह युग का अत्यन्त दर्दनाक सत्य बन चुका है कि आज के चिन्तनशील मानव अपनी चिन्तन क्षमता का

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 18

प्रयोग खतरनाक कार्यों के लिए करता है। ऐसी हालत में तीसरी जंग के उपरान्त अगर इन्सान बच जाए तो वह विस्मय की बात रह जाएगी।

वैज्ञानिक का मानना है कि एक ही बटन के दबाने पर सारे जगह को नाशोन्मुख करने में सक्षम थर्मोन्यूक्लियर बम का विकास शीघ्र ही हो जाएगा। एक मेगाटण हाईड्रजन बम की कौंध से आँखें नष्ट हो जाएगी, और इसकी गर्मी से दूर दूर के आदमी भी मर जाएँगे। हरे भरे जंगल भी बमवर्षा में एकदम अप्रत्यक्ष हो जाएगा। बडे बडे मकानों और पेडों को भी यह जड से उखाड फेंकेगा। घर बाहर लाशों के ढेर पड़ जाएगा, और इसे दफनाने के लिए न कोई आदमी बचेगा और कोई जगह भी नहीं होगा। यदि कोई बचेंगे तो वे पंगु और पागल बन जाएँगे, अचानक ही उनकी मृत्यू हो जाएँगी। तीसरी जंग की परिसमाप्ति पर यहाँ बाक्टीरिया, इन्सेक्ट्स आदि का राज होगा। यहाँ मानव न बचेगा, और बम की रेडियेशन को बर्दाश्त करने की शक्ति इन छोटी सी प्राणियों में हो जाएगी। सबका नाश हो जाएगा, और जंग पत्थरों के लड जाएगी।

नेतागण हमेशा आम जनता की कमज़ोरियों का फायदा उठाते हैं। नेता जब बताते हैं कि देश की रक्षा खतरे में है - तब जनसाधारण उसे मान लेते हैं। युद्ध आने पर उनकी स्थिति अत्यधिक शोचनीय हो जाती हैं। माँ बाप के सामने बहु-बेटियों का बलात्कार हो जाता है। माँ बेटियों के सामने बाप बेटों की हत्या की जाती है। दूकानों और घरों में आधी रात में लूट मार होती है और लोग गोलियों के

शिकार हो जाते हैं, परेशान होकर उन्हें अपना मुल्क छोडना पडता है और अन्त में वे शरणार्थी बन जाते हैं।

अपनी दर्दनाक दास्तान सुनाने के बाद एक शरणार्थी इन्टर्व्यू लेने आए नामानिगार से पूछता है - "हे आपमें हौसला ऐसे माहौल में रहने का, हे आपमें हिम्मत, अपनी माँ बहनों के साथ, ये सब होते देखने की।"[1]

शरणार्थियों के लिए मुफ्त रूप में भोजन, कपडे और धन परोसते जाते हैं, और गुलाम की तरह इनसे बहुत कम वेतन पर नौकरी भी कराते हैं। इनकेलिए सरकार की ओर से जो धन खर्च किया जाता है, उनमें से आधा ही इनके पास पहूँचता है। कुछ देनेवाले, कुछ लेनेवाले, कुछ बाँटनेवाले अपने पास रख लेते हैं।

ये शरणार्थी कम वेतन पर मज़दूरी करते हैं, इससे गाँव की आमजनता काफी परेशान हो जाती हैं। नाटक के दृश्य 2 में शरणार्थियों की बुरी हालत का वर्णन है। कैंपों में शान्ति कायम करने केलिए पुलिसों की सहायता करने का आदेश शरणार्थियों को दिया जाता है। इसी बीच शरणार्थियों को कंपल बेचने आये आदमी पुलिस द्वारा पकडा जाता है। कंबल की मोहर देखने से पुलिसवाले समझते हैं कि वह किसी शरणार्थी का कंबल है। पूछने पर पता चला कि वह पास के ही गाँव में रहनेवाला है। शरणार्थी बनने के लिए कैंप में घुस गया है। वह बताता है - "रफ्यूजियों की हालत हमसे बेहतर है, साब, सभी, कुछ तो

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 26

मुहैया है इनको, वो भी फोकट में लेकिन हमें एक वक्त का खाना, शर्म ढकने केलिए कपडे नसीब हो जाए तो सौगात है।"[1]

युद्ध में घायल बने आदमी के लिए आवश्यक दवा, डाक्टर आदि उपलब्ध नहीं होता। लेकिन सेना में ऊँचे अफ्सरों के लिए दवा, डाक्टर, एक्स-रे की मशीनें भी उपलब्ध है। आम आदमी इस पर नाराज़ हो उठते है। आस्पताल में घुसकर वे शोर मचाते है - "इस अस्पताल में हमारा इलाज क्यों नहीं हो सकता है, क्या हम आदमी नहीं है ? कर्नल ने बताया - "तुम्हारा भी इलाज होगा। लेकिन कर्नल के इस उत्तर से वह और भी क्रुद्ध हो जाता है और पूछता है - कब-जब-इनकी गंदगी से उपजी बीमारियों से हम मर जाएँगे.......तब ?"[2]

वातावरण की भयानकता तब और भी तीव्र महसूस होती है जब इस आदमी की चीख पुकार को सुननेवाले कर्नल उसके जाने के बाद बताते है 'लेट अस टॉक औवर ए कप आफ टी! आम आदमी चीखते चिल्लाते रहते हैं, लेकिन उनकी कराहट को अफ्सर केवल 'बकवास' मानते हैं। इस बकवास से उन्हें नफरत है। अपनी अपनी सुविधाएँ और अपने कार्य ही उनकेलिए मुख्य है।

स्त्रियों की परेशानी

युद्ध के अवसर पर काफी परेशानी स्त्रियों को ही भोगनी पडती है। कई देशों में युद्ध के दिनों में स्त्रियाँ घर के बाहर नहीं जा

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 24
2. वहीं - पृ. 29

सकती है। स्त्रियाँ अक्सर सैनिकों के अपमान का शिकार हो जाती है। आज दुनिया के कई देशों में स्त्रियाँ युद्ध के दिनों में बाहर जाते वक्त आत्मसुरक्षा के लिए पुरुष जैसा वेश पहनती हैं।

चोरी में बढोत्तरी

युद्ध के दौरान चोरी की संख्या में बढोत्तरी होती है। शत्रु सैनिकों को बन्दी बनाकर लाते हैं और उन्हें मार भी देते हैं। इसके बाद कीमती चीज़ों को पास रख लेते हैं। अब स्वभावतः एक प्रश्न मन में उठ जाता है कि क्या दुश्मनी इन निरीह आदमियों के शरीर मात्र से है।

एक आदमी को बन्दी बनाकर सैनिक छावनी में लाते हैं। दो बन्दी थे, षेलिंग में एक मारा गया। मरनेवाले की घडी उतारकर सैनिक अपने पास रख लेते हैं। वह बताता है -"मुझे घडी पहनने का बडा शौक है सर। पर आज तक पहनी ही नहीं। पहनता कहाँ से? मिली ही नहीं। वो मर गया था। इसलिए मैं ने उतार ली नहीं तो उसके मुर्द जिस्म पर बेकार जाती।"[1]

युद्ध पर भिन्न भिन्न मानसिकता रहनेवाले लोग

युद्ध से बुरा वक्त सैनिकों के लिए दूसरा नहीं होता। छोटी उम्र में सैनिक जीवन की ग्लैमर से आकर्षित होकर आदमी सेना में भाग लेते हैं। उनके मन में अमर बनने का भ्रम रहता है। जंग के दर्दनाक परिणामों से वे अज्ञ रहते हैं। युद्ध के दौरान सेना ने एक शत्रु

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 32

सैनिक को बन्दी बना लिया, वह कैप्टिन के रैंकवाला अफ्सर था। सेना में आने से पहले वह ड्रामा का निर्दशक था। इस आशा से उन्होंने सेना में भर्ती की थी कि गाँववालों के बीच सैनिक बनकर एक दिन शान मारेगा।

इससे भिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले भी हैं। दृश्य 4 में एक परिवार के दृश्य के सहारे नाटककार युद्ध पर आमजनता और युवाजनों की प्रतिक्रिया को व्यक्त करते हैं। पिता अपने बेकार जवान बेटों से बताते हैं -'वार हो रही है! फर्स्ट क्लास चान्स था। आर्मी ज्वाईन कर लेते तो आफिसर होते, कन्ट्रि की सर्विस करते। घर की कन्डीशन सुधरती '। लेकिन फ्रोटे मानते हैं कि युद्ध में भाग लेने से बहत्तर है विष पीकर मरना। युद्ध में भाग लेकर अपने को देश के कुर्बान करना वे नहीं चाहते। देशी जनता भूख से पीडित है और गरीबी से कराहती हैं। इनकी खबरें वे अखबारों में पढते हैं। इसकी चर्चा करने के दौरान वे माँ से 'स्वीट डिश' माँगते हैं। तीनों एक ही स्वर में बताते हैं - 'हम नहीं जाएँगे वार में। हमें डर लगता है वार से। वी आर नॉट फूल्स। वी आर नाट वार मांगेर्स। वी डान्च वान्ड टु डाई। वी हेट वार। वी हेट वार।'

नाटक में दूसरी ओर, वेल्ड चम्पियन का टाइटिल प्राप्त एक घुँसेबाज का मानना है कि आर्मी में जाकर तीन सालों में किसी भी वक्त मारा जा सकता हैं, इससे बेहत्तर है तीन साल जेल में गुज़राना।

घरवालों की मानसिकता

लेखक ने सैनिकों का आत्मसंघर्ष और उनके घरवालों की दर्दभरी मानसिकता का चित्रण किया है। बूढी माँ को देखने केलिए एक सैनिक युद्धक्षेत्र से भागकर घर आता है। एक दिन सैनिक आकर बेटे को पकडकर ले जाओगे। माँ इससे डरती है। अगर ऐसा हुआ तो क्या होगा। माँ के इस प्रश्न के उत्तर में वह बताता है - तो तुम..... बिना तिमादारी के मर जाएगी, और मैं वहाँ गोली चला रहा हूँगा, किसी भी वक्त एनिमी की गोली मेरी भी लाश.... - इतने में मिलिट्री पुलिस आकर उसे पकडकर ले जाता है। सैनिक ने समझाने की कोशिश की है कि उसकी माँ मर रही है। लेकिन पुलिस ने मात्र इतना बताया 'इन्तज़ाम हो जाएगा, तुम चलो।'

युद्ध के आने पर सैनिक के सारे सपने टूट जाते हैं। युद्ध में अमर बने वीर जवानों के माँ बाप की हालत और भी दयनीय है। पत्र लेखक जवानों के घर आकर माँ बाप के तरह तरह के फोटो खींचते हैं। हँसने केलिए कहते हैं तो वे हँसते हैं और रोने केलिए कहते हैं तो रोते भी हैं। दुखी माँ बाप के चेहरे के कई भावों को उनका कैमरे खींच लेता है।

युद्ध के समय फौजियों के लिए मुफ्त रूप में सामान देने की व्यवस्था है। लेकिन फौजी आकर पूछते हैं तो वे नहीं देते। अधिक लाभ उठाकर, काले बाज़ार में दूसरे आदमियों को वे सामान देते है

और 'फ्री फार सोलजियर्स' यानी 'सैनिकों के लिए मुफ्त' चिल्लाते रहते हैं।

युद्धक्षेत्र में सैनिकों के लिए एक बोटल पानी का भी इन्तज़ाम नहीं हैं। पानी के लिए सैनिकों के बीच झगडा चलता रहता है - "मुझे शूट कर दिजिए, पर पानी पिला दीजिए, सर।"[1]

युद्ध के अवसर पर घर - बार से सैनिक का सारा संबन्ध टूटा जाता है। एक (सैनिक) लेफ्टिनेंट को बच्चा होनेवाला है। पत्नी की यादें उसे बार बार सताती रहती है। कैप्टिन जब उसके बच्चे के बारे में पूछते हैं तो वह बताता है कि एक हो गया होगा, सर। ऐसी दर्दनाक हालत में भी वे अपने को कुरबान करके देश की रक्षा करने केलिए तैयार हो जाते हैं।

नाटक में युद्धबन्दी और सैनिक के ब्रीच जो वार्तालाप हो रहा है, वह एक बडे सत्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। युद्धक्षेत्र में दोनों की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध चल रहा है, और वे बातें करते हैं युद्ध के कारणों के बारे में, हथियारों की बिक्री के बारे में और बडे-बडे ताकतवार मुल्कों के बारे में।

सैनिक : बता, वार क्यों होती है? अबे बोल!

युद्धबन्दी : मुल्क के लीडरान के हुक्म से।

सैनिक : हम लडते किससे है?

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 80

युद्धबन्दी : आपस में

सैनिक : आपस में तो ठीक है। मगर लडते किससे है?

युद्धबन्दी : आदमी, आदमी से।

सैनिक : ...... यह हथियार आते कहाँ से है?

युद्धबन्दी बडे-बडे ताकतवार मुल्कों से। अब तुम बताओ - अगर यह ताकतवार मुल्क हमें हथियार न दो तो क्या हो?

सैनिक वार न हो।

युद्धबन्दी : नहीं, उनकी माली हालत डावाँडोल हो जाएगी। अगर उनके हथियार बिकेंगे ही नहीं तो वे रहेंगे कैसे? और अगर हम उनसे हथियारों को खरीदेंगे नहीं तो वे पैसा कहाँ जाएगा।"[1]

युद्ध से कोई भी समस्या का हल नहीं होता है। नेता लोग हमेशा कोई 'महान' कार्य करके समाचार पत्रों के मुख्य पृष्ठ में स्थान पाना चाहते हैं। दुनिया के समझदार प्रेसिडेंट, प्राइम मिनिस्टर, डिफेन्स मिनिस्टर और जनरल ज़िन्दगी में ज़रूर जंग को चाहते हैं। क्योंकि वे दुनिया के इतिहास में अपना नाम अमर बनाना चाहते हैं। इसकेलिए वे युद्धविरोधी प्रस्ताव पास करते हैं, बडे-बडे सम्मेलनों का आयोजन करते हैं। लक्ष्य केवल एक ही हैं कि जनता का ध्यान अपनी और आकर्षित करना। ये केवल यश के भूखे है। बुद्धिजीवियों की सभा में

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 80

युद्धविरोधी प्रस्ताव पास करने के लिए लोग इकट्ठे हुए हैं। वे बताते हैं कि हमारी First Duty इन्सान की आत्मा को एनलैटन करने से है। लेकिन उनका प्रस्ताव केवल कागज़ों तक सीमित है। सभी में अध्यक्ष के चुनाव के संबन्ध में तर्क वितर्क चलते है। इसी बीच एक बूढा उठकर उनसे पूछते है : - "वार को कंडम करने आए है आप लोग? पहले अपनी वार को कंडम करे। हमें बुर्जुआ कहते हो, अपने को progressive। क्या मतलब होता हैं progressive..... का? गाली-गुफ्तार? हाथापाई? इसी को कहते है progressive.......?"[1]

जब एक देश दूसरे देश का अपमान करता हैं, उसकी हद में घुसता है तब दूसरा मुल्क उसपर हमला कर लेता है। एक मुल्क के लडके, मज़दूर, किसान और आदाकार दूसरे मुल्क के लडके, मज़दूर और किसानों पर हमला करना नहीं चाहता है। फिर भी उनके देशों के बीच घमासान लडाई हो रही है, क्योंकि युद्ध होने के लिए ऐसे लोग कारण हो जाते हैं, जिन्हें जंग से फायदा होता है।

युद्ध के दर्दनाक परिणाम मात्र युद्धक्षेत्र तक सीमित नहीं रह जाता है। सारा शहर या गाँव जलते हुए श्मशान-सा बन जाता है। औरतों और बच्चों की चीख पुकार सब कहीं छायी जाती है। देश के आर्थिक, सामाजिक और साँस्कृतिक वातावरण पर युद्ध का बुरा असर पड जाता है। आर्थिक ढाँचा खराब हो जाती है, बेरोज़गारों की संख्या बढ जाती है। महायुद्ध के समय व्यक्ति केवल युद्ध के विषय में सोचता है, अन्य बातें उनके चिन्तन से परे हो जाती है।

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 80

युद्धोपरान्त समाज में एक ह्रासोन्मुख संस्कृति जन्म लेती है। ऐसे दूषित वातावरण में जन्म लेनेवाले बच्चों की मानसिकता एकदम अविकसित और खराब होती है, अखबारों में युद्धसंबन्धी खबरें छापी जाती हैं। क्रिकट के खबरों को पढने में जो आवेग और उत्साह है, उसी आवेग से बच्चे इन खबरों को भी पढते हैं। पत्र-लेखक अपनी अनूठी शैली में, चमत्कारपूर्ण ढंग से इन खबरों को भी प्रस्तुत करते हैं।

दुनिया के महान नेता टेलिफोन के माध्यम से, इ-मेल के माध्यम से और तरह-तरह के सम्मेलनों का आयोजन करके युद्ध को टालने का प्रयास करते हैं। चर्चा में भाग लेनेवाले नेतागण दूसरे राज्य के नेता के लिए 'डिन्नर' आदि का आयोजन भी करते हैं। चर्चाएँ केवल यहाँ तक सीमित रहती है। आम जनता की चीख-पुकार अन्तहीन गूँज उठती है।

Worst act of reason, WAR को हम यों परिभाषित कर सकते हैं। अर्थात युक्ति का सबसे नीचतम प्रयोग। सृष्टि के आरंभिक दिनों में संस्कृति से बहुत दूर रहे मानव आज अपने विवेक और अपनी चिन्तन क्षमता से बहुत कुछ हासिल कर चुका है। किन्तु विस्मय की बात है कि ऐसे विवेकवान प्राणी होने पर भी वे आपसी समस्याओं को सुलझाने के लिए युद्ध का सहारा लेते हैं। दुनिया के छह करोड लोगों में से सबसे छोटी संख्या के ही लोग आतंकवादी बन गये हैं। लेकिन इनकी विद्रोही प्रवृत्तियाँ सारे संसार के लिए खतरनाक बन गई है।

आज संसार तो धर्म के नाम पर विभाजित है। सारा संघर्ष धर्म पर आधारित है। प्रत्येक धर्म के लोग दूसरे धर्म के तत्वों और सिद्धान्तों को हेय और अपने धर्म के सिद्धान्तों को महत्वपूर्ण मानता है। जब हम दूसरों को भी मानने के लिए तैयार हो जाते है तब संघर्ष, युद्ध आदि दूर की बात रह जाती है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने शिक्कागो भाषण में बताया : - धर्म तो एक ही लक्ष्य की ओर जानेवाली और एक ही समुद्र में मिलनेवाली बहुत-सी नदियों के समान है। उनके बीच विरोध या संघर्ष कभी नहीं होना चाहिए।

शाह के अनुसार 'युद्ध मानव संस्कृति की नृशंस हत्या है। मानव संस्कृति और सभ्यता के विरुद्ध पाशविक आचरण है।' दूसरों के मामलों में हमें हस्तक्षेप न करना है। हरेक व्यक्ति के अपने व्यक्तित्व और आदर्श होते हैं, जब दूसरे इसे मानने के लिए तैयार होते हैं, तब शान्ति का रास्ता आसानी से खुल जाता है। इस केलिए बडी-बडी चर्चाएँ और सेमिनारों की ज़रूरत नहीं, बल्कि मन को खुलकर रखना है।

"खुद जिओ, औरों को भी जीने दो
इसीसे ही ज़ीन्दगी का वास्ता
यही है अमन का रास्ता।[1]

आज के मानव इन्सानियत को खोकर, और पशुता को अपनाकर बैठे हैं। मनुष्य की युक्तिहीनता और विवेकहीनता ही युद्ध का कारण है। इसकेलिए एक दूसरे को दोषी मानना उचित नहीं। खुले हुए

1. युद्धमन - बृजमोहन शाह - पृ. 12

मन और साफ दिल से एक दूसरे को मानने के लिए जब हम तैयार हो जाते हैं, तब युद्ध कभी नहीं होता। क्योंकि युद्ध के वास्तविक कारणों को ढूँढने में सभी असमर्थ हो चुके हैं। युद्ध को बनाए रखने के लिए संसार की महान शक्तियाँ प्रयत्नरत है, क्योंकि उनका लक्ष्य हथियारों की बिक्री है। आम आदमी को महानशक्तियों की इन साजिशों से अवगत होना चाहिए। पाठकों को युद्ध के भीषणतम परिणामों और उसके कारणों का एहसास कराने का प्रयास बृजमोहन शाह ने सराहनीय ढंग से किया है। युद्धमन वास्तव में युद्ध की त्रासदी का दस्तावेज़ ही है।

काठ की तोप

युद्ध मानव का सबसे खतरनाक खेल है। चिरन्तनकाल से समाज में इसका अस्तित्व है। प्रारंभिककाल में यह आदमी की अस्तित्वगत ज़रूरत थी। अपने अस्तित्व की रक्षा केलिए उसे प्रकृति से, जानवरों से लडना पडता था। लेकिन अब उसके अस्तित्व को यह खतरे में डाल देते है।

हमेशा युद्ध के बीज समाज में कहीं न कहीं छिपे रहते है। सहसा उसे फूट जाने का मौका मिल जाते है तो मानव के सारे सपनों को झकझोरकर यह मंच पर उतरते है। शताब्दियों से चल रहे उस अभिशाप का हनन करने का प्रयास पीढी-दर-पीढी में हो रहा है। समाज में अत्यन्त सबल, सक्षम शान्तिकामी शासक हुए, महान युद्धों के बाद शान्ति के संगठन हुए (संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे), प्राचीन काल के

वैरी शासक कालसीमा में विलीन हुए, फिर भी समाचार पत्रों की सुर्खियों में 'युद्ध' एक अनिवार्य स्थान हासिल करता है।

युद्ध से आजीविका चलानेवाले अमानवीय समाज यहाँ जन्म ले गये है। दुनिया के ज़्यादा शक्तिशाली अमीर देशों में शस्त्रों का निर्माण हो रहे हैं, और शस्त्रों को बिकने केलिए वे युद्ध को अनिवार्य समझते हैं। तीसरी दुनिया के देशों को वे अपनेलिए उचित बाज़ार समझते हैं। फलस्वरूप दुनिया में युद्धानन्तर दो तरह के समाज का विकास होता है - अमीर ओर गरीब। युद्ध के दौरान सैनिक शक्ति का इस्तेमाल से प्राकृतिक विभवों का नाश होता है, आम आदमी साधारण जीवन जीने में असफल होते हैं। संधर्ष के बीज बोनेवाले काफी धनवान होते हैं तो त्रासदी के भोक्ता आम आदमी की हालत बदत्तर हो जाती है।

आज भौगोलिक शस्त्र व्यापार में 21 बिल्लियन डालर्स खर्च करते है। विश्व भर तोपों का इस्तेमाल शोषण केलिए होता है। बलात्कार, मारकाट, आदि तोपों की नोक पर चलता है। युद्ध के दौरान स्त्रियों को तोपों से डराकर बलात्कार करते हैं, गलियों में बच्चों को पुलीस तोप्पों से मारते हैं। इस तरह के हमलों के फलस्वरूप प्रत्येक मिनट में एक व्यक्ति मार जाते है, अतः प्रत्येक साल में आधा मिल्लियन पुरुष, स्त्री और बच्चे।

शस्त्र-व्यापार में सफलता पाने केलिए दुनिया के शक्तिशाली देशों ने तीसरी दुनिया के देशों को लडाने की बुरी नीति अपनायी है।

इस दृष्टि से, वे हर कीमत पर संघर्षरत मानवोंवाली दुनिया का सृजन करते हैं। अमीर देशों के इस साजिश का पर्दाफाश करते है, गिरिराज किशोर अपने नाटक 'काठ की तोप' में। नाटक की शुरु में ही बताया गया है "अमरिक्का जैसे देशों द्वारा हथियार बेचने केलिए भारत और पाकिस्तान जैसे तीसरी दुनिया के देशों को लडाने और बिचौलियों द्वारा आर्थिक शोषण कराने की अन्तार्राष्ट्रीय गोलबंदी के बारे में लिखा गया है। तीसरी दुनिया के देशों की आँखें खोलने की दृष्टी से यह नाटक महत्वपूर्ण है। वर्तमान साँस्कृतिक, भौगोलिक एवं राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में भारत और विभिन्न देशों की स्थिति इस नाटक में दर्शायी स्थिति से खरी उतरती है।"[1]

सिंधावली देश के दो नवाबों की कहानी के द्वारा सारी दुनिया को निगलनेवाली एक गंभीर समस्या की ओर नाटककार हमारा ध्यान खींचता है। दोनों राजाएँ भाई-भाई है। परंपरागत संपत्ति के रूप में उन्हें एक दरख्त मिला है। बंटवारे में यह छोटे नवाब के हाथ आ जाता है। लेकिन बडे नवाब तर्क करके इस पर अधिकार जमा लेते हैं। रात को छोटे नवाब के आदमी आकर इसे घसीटकर ले जाते है तो संघर्ष पेदा होता है। यह संघर्ष शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, किन्तू इसके पीछे छिपी हुई वास्तविक समस्याएँ तब सिर उठाने लगती है।

बंटवारे में महल का तोपखाना बडे नवाब के हिस्से में चल गया था। अब छोटे नवाब को उनका मुकाबला करने केलिए सक्षम

1. काठ की तोप - गिरिराज किशोर - भूमिका

शस्त्रों की आवश्यकता महसूस हुई। उन्हें 'ऐसे असलहे की ज़रूरत है जो किसी के पास न हो।' वे व्यापारी को महल बुलाते हैं, नये तरीके के हथियार खरीदते है। अब बडे नवाब के मुसाहीब समझाते हैं कि दुश्मन बेकाबू होता जा रहा है, हमें अपनी ताकत को बढाना होगा, हथियारों का जखीरा तैयार करना ज़रूरी है। वरन् यह दरख्त और हम सप्न खतरे में पड जाएँगे। मुसाहिप्नों की प्रेरणा से बडे नवाब भी हथियार खरीदने लगते है।

सेठ मटरूमल असलाह कंपनी से कम्मीशन पानेवाला अदमी है। वे असलाह कंपनी के सदर से दोनों राजाओं का परीचय कराते है, सदर महल पहूँचता है। उनका परिचय कराते हुए सेठ मटरूमल प्रताता है, 'दुनीया का वह इंसान जो अपनी सुरक्षा के प्रति जागरूक है सदर साहब को जानता है। इन्होंने संसार में शान्ति कायम करने का संकल्प किया है, शान्ति ही इनका पेशा है।' सदर की दोस्ती दोनों नवाबों से होती है।

मटरुमल की चालाकी से दोनों राजाएँ अज्ञ है। बडे नवाब वताते है 'मटरूमल जानते हैं हम जंग के खिलाफ है। हमने कभी फौजी करिश्मे को तरजीह नहीं दी। पडोसियों के साथ प्यार - मोहब्बत से रहना ही हमारा उसूल रहा गै। हम मज़बूर होकर आपके पास आये - हम आपने भाई को समझाने में नाकामयाब रहे - आप अगर समझा सके तो हम आपका अहसान कभी नहीं भूलेंगे।

सदर की दोस्ती दोनों राजाओं से होती है। भाई-भाई के बीच के झगडे को समाप्त करने का वादा वह देता है। दरबार की सारी सामग्रियाँ मटरूमल की सहायता से सदर के हाथ पहूँचती है। अन्त में दोनों को सोने केलिए एक पलंग मात्र बच जाता है। उनसे कहा जाता है कि दोनों पलंग पर लेटे, पर पाव नीचे भी न गिरे। उनकी समझ में आया है कि वे दोनों अब तक सांप को ही रास्ता दिखा रहे थे। दोनों पलंग को रस्सी से बांधने का निश्चय करते हैं। रस्सी के अभाव में अपने इज़ारबंद से दोनों पैरों को बांधते है। अन्त में मटरूमल आकर राजाओं से अपना कम्मीशन माँगता है।

नाटककार ने अमरिक्का जैसे विकसित देशों की कूटनीति का पोल खोलने का बहुत ही सराहनीय प्रयास किया है। हथियार उद्योग को बनाये रखने केलिए ये देश गृहयुद्धों, सेना विवादों और अन्तर्राष्ट्रीय तनावों को हवा देते है। ये वास्तव में मौत के सौदागरों की भूमिका निभाते है। असलाह कंपनी के सदर यहाँ अमरिक्का की प्रतीकात्मक भूमिका निभाता है। मटरूमल व्यापारिक साजिशों का आदमी है। उनका उद्देस्य राजाओं के बीच के संघर्ष को बढावा देना है। इसकेलिए उसे कम्मीशन भी मिलते हैं। बडे नवाब और छोटे नवाब भारत, पाक् के शासक हैं। दरख्त देश का प्रतीक है, जिसके नाम पर भाई-भाई आपस में लडते है, एक दूसरे का खून बहाते हैं।

प्रजातंत्र पर और आदमी की स्वार्थवृत्ति पर नाटककार ने व्यंग्य किया है। प्रजातंत्र की तुलना वे खतरनाक बीमारी 'एईडस' से

करते है। "यह नवाफ़्री ऐसी चीज़ है,खून में एक बार मिल जाये तो 'एईडस' की तरह काम करती हे, भले ही आप अरगजा मल मल अपना वर्ग चरीत्र बदल डालें। खैर अब आप देखिए सिंधावली के उन नूर-ए-चश्मों ने क्या क्या नहीं किया।"[1]

आज विश्व भर उपभोक्तृवादी संस्कृति का बोलबाला है। सभी मामलों को आदमी कन्स्युमरीस्ट निगाह से देखते है। भाई, भाई के खिलाफ हथियारों का जखीरा तैयार करते है, उसे अब शस्त्र की कीमत नहीं, दुश्मन दिखाई देता है। अपने ही खून को पहचानने की क्षमता उसे न रह गयी है।

सबको स्वार्थ मार रहा,
सच्चाई में 'कोई भाई रहा, न यार हा,
झूठ घूला
जो जीता था हार गया।[2]

उपभोक्तृवादी युग में हथियार भी किश्तों में मिल जाते हैं। महल में आये व्यापारी माल की सप्लाई पर आधी कीमत लेते हैं और बकाया आधी साल भर के अन्तर दो किश्तों से लेनेवाले हैं।

शस्त्र-संग्रह के इस युग में मानव की जान हमेशा खतरे में है, चाहे वह राजा हो या आम आदमी। नवाब व्यापारी से हथियार खरीदते है। इसे चलाना वह नहीं जानता। राजा की तरह वह गोली

1. काठ की तोप - गिरिराज किशोर -पृ. 8
2. वहीं - पृ. 24

चलाकर दिखाते है कि इसका इस्तेमाल कैसा किया जाय। नवाब घायल हो जाते है।

अपने ही खून से लडने के लिए दानों नवाब शस्त्र-संग्रह करते हैं। ऐसा करके अनजाने ही दोनों अस्तित्व को खतरे में डाल देते है, व्यापारी अपने माल की बिक्री मात्र चाहता है, राजा कोई भी हो। क्योंकि उनकी तरफदारी हमेशा माल और बाज़ार के साथ है। शस्त्र बिकने केलिए बाज़ार, बिक्री से मुनाफा और मटरूमल जैसे दोस्त - उन्हें केवल इतना ही चाहिए। व्यापारी मटरूमल से बताते हैं 'हमें बाज़ार चाहिए। मुनाफा चाहिए। तुम जैसा दोस्त चाहिए, जो हमारे माल को खरीददार तक पहूँचा सके। हमने छोटे नवाब से जब करार किया कि हम बडे नवाब को माल नहीं बेचेंगे।'

हथियारवाले
हम हथियारवाले
कैसे भी हथियार लो
मारो - काटो चाहे उडा दो
हथियार लो।
दुश्मन मारो
या जान बचाओ
हारो - जीतो
या मात खाओ
हथियारवाले
हथियार लो।[1]

1. काठ की तोप - गिरिराज किशोर -पृ. 28

चंद सिक्कों केलिए मानव के अमन और चैन यहाँ बेचा जाता है। यहाँ सीधे-साधे सुन्दर गाँव थे, वहाँ प्यार-भरी मासूम जनता वास करती थी। बच्चों के मन में भविष्य के सुन्दर सपने होते थे। खेतों की हरियाली, झरनों का मधुर गुंजार और शान्ति से जीनेवाले लोग - इनके बीच में मौत के सौदागर आये तो यहाँ मारक गैसों के कारखाने उग आये, झीलों में गोला और बारूद भर गये। इस ज़मीन में, यहाँ के वायू और जल से जो बडे हो गये, वे अब यहाँ की खुशियों को बिकने लगे है।

हथियारों की होड से दुनिया में आये विनाशकारी परिणामों पर नाटककार का मन व्यथित हो उठता है। इसकी तीव्र अभिव्यक्ति, नाटक में बीच बीच में आये गीतों के माध्यम से की गयी है:

अरे लोगों खिंच गये पाले
पड गये, जान के लाले, अरे लोगों
आ गये है लाल मुंहवाले
चाले हा झीलों में
गोला - बारूद, तोपें व ताले
....
बच्चे जो कभी थे
सपनों से लदे
खेत थे जो फैले हुए
जिंसों से भरे
वहां अब उग आये
मारकगैसों के कारखाने[1]

1. काठ की तोप - गिरिराज किशोर -पृ. 36-37

नाटक की शुरु में ही बताया गया है -आजमानवीय संबन्धों, संवेदनाओं, भावनाओं एवं मूल्यों का कोई अर्थ न रहा। बस कुछ बचा है तो छल, कपट, प्रपंच, शक्ति - प्रदर्शन में अपने आपको शक्तिशाली बनाने केलिए विभिन्न प्रकार के हथियारों के संग्रह की होड। इस संग्रह में प्रायः विकासशील देश विकसित संपन्न देशों द्वारा उनके इर्द - गिर्द तैयार किए गए वातावरण में ग्रसित होकर एक दूसरे से लडते हुए बदले की भावना से अपने आपको संगठित एवं शक्तिशाली बनाने केलिए विकसित देशों के साये में आकर हथियार पाने की होड में अपना सब कुछ न्योछावर कर बेठते हैं। कुछ ही क्षणों की सुख-समृद्धि केलिए तीसरी दुनिया के शासक अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व को विनाश की धाइ में धकेल देते हैं। वे यह नहीं जानते हैं कि चारों ओर छल ओर कपट के जाल बिछा गया है।

यूद्ध से मानव के आर्थिक, सामाजिक और साँस्कृतिक जीवन व्यवस्था में विनाशकारी विघटन उत्पन्न हो गया है। आज के ज़माने में औद्योगीकरण एवं युद्ध की विभीषिका ने तरह तरह के हथियारों के उत्पादन की होड शुरु कर दी है। इस दौर में यह नाटक अधिक प्रासंगिक और समीचीन लगता है। पात्रों की प्रतीकात्मकता नाटक को अधिक रोचक और विचारणीय बनाते हैं। गिरिराज किशोर की सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म एवं समग्र है।

उपर्युक्त सभी नाटकों में युद्ध की दहशत और इसके आतंक को स्वर देने में नाटककार कामयाब हुए हैं। यद्यपि युद्धविरोधी प्रवृत्ति

स्वतंत्रतापूर्व काल में ही हिन्दी साहित्य-जगत में मौजूद थी, इसे तीव्र वेग स्वातंत्र्योत्तर काल में प्राप्त हुआ। तब से लेकर युद्ध के सभी अमानवीय पहलुओं पर नाटककार प्रकाश डालने लगे। युद्ध आदमी को बेसहारा और तनहा छोडता है। आज संसार में एक ओर युद्धविरोधी स्वर बुलन्द रहे है, दूसरी ओर दर्दनाक युद्ध होता रहता है। हथियारों की बिक्री के लिए महाशक्तियाँ सदैव युद्ध को बनाए रखना चाहती है, ये निरीह जनता की कराहट को अनसुना करती हैं। मानव जीवन से मूल्यों का हनन हो रहा है। सब कहीं युद्ध, विध्वंस, आतंकवाद नज़र आते हैं। इस विशेष वातावरण में ये नाटक अत्यन्त प्रासंगिक लगते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

युद्धजन्य साँस्कृतिक संकट - यात्रासाहित्य, निबन्ध और आत्मकथा में

युद्ध और शान्ति का प्रश्न मानव अस्तित्व, उसकी सभ्यता और संस्कृति के प्रश्नों से गहरे रूप में जुडा हुआ है। युद्ध की समस्या इक्कीसवीं शताब्दी की समस्या नहीं हैं। मानव जाति का इतिहास जितना पुराना हैं, शायद उतना पुराना हैं युद्ध का इतिहास भी।

उन्नीसवीं शताब्दी तक के युद्ध सीमित युद्ध थे। महाभारत और रामायण में युद्ध के ज़रिए संहार का व्यापक रूप दिखाई पडता हैं। लेकिन ऐसे अवसर इतिहास में कम ही नज़र आते हैं। भारत में युद्ध की विभीषिका अधिक से अधिक कलिंग युद्ध तक पहूँची। प्राचीनकाल के युद्ध राजाओं और सामंतों के बीच निजी संघर्ष तक सीमित रहा। किन्तु आधुनिक विज्ञान के आविर्भाव के साथ मनुष्य की संहार-क्षमता भी बढ गयी। आधुनिक तकनीकी से भरे हथियारों के आविष्कार से सारी पृथ्वी को खतम करने में मानव सक्षम हुए बैठे हैं।

युद्ध का स्रष्टा भी मानव हैं, भोक्ता भी। हमारे वर्तमान और भविष्य पर इसका बुरा प्रभाव पडता है। अतः साहित्य में इसका प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है। क्योंकि साहित्य का मकसद ही समाज का कल्याण हैं, उसके केन्द्र में मानव है।"समाज में अनेक कारणों से आ रहे परिवर्तन को साहित्य शब्द देता है, उसे मुखर करता है, उसकी दिशा बनाता है, परिवर्तन के स्वर को दूर-दूर तक पहूँचाता है, और

आनेवाली पीढियों केलिए उस प्रयास और स्वर को जीवित रखता हैं। इसके साथ ही व्यापक परिवर्तनकामी, स्वल्प परिवर्तनकामी, यथास्थितिकामी और परिवर्तन विरोधी शक्तियों के आपसी टकराव का वह दस्तवेज़ बनता है।"

साहित्य का प्रभाव दूरगामी होता है। युद्ध के स्रष्टा मानव की हरकतों के खिलाफ समाज के सबसे संवेदनशील साहित्यकारों ने हमेशा अपनी तीव्र प्रतिक्रियाएँ अभिव्यक्त की है।

दूसरे देशों का प्राचीन साहित्य(धर्म ग्रन्थ) भी युद्ध की समस्या से संबन्धित हैं। 'जेहोवा और सर्प का संघर्ष' इंजीन की पहली पुस्तक 'बुक आफ जेनेसिस' में मनुष्य मन का संघर्ष है। नई बाइबिल में विरोधियों के संघर्ष की कथा है। गेटे के 'फाउस्टठ की कथा में इश्वर और मेथिस्टोफिसिज का संघर्ष है। स्केन्डिलेवियाई 'वोलुस्पा' की कथा ईश्वर और दैत्य का युद्ध है। यूरिपीडिज़ के 'टिपोलिट्', की कथा में आर्टमीज़ और अफ्रोडाइट का संघर्ष। राम-रावण युद्ध, कौरव-पांडव का संग्राम, देवासुर संग्राम, आर्य-अनार्य संघर्ष या एथेन्स-स्पार्टा की कथा अपने अपने समय के युद्धों का ही इतिहास है।

साहित्य केवल उपन्यास, कहानी या कविता मात्र नहीं है। इसकी अन्य विधाएँ है यात्रासाहित्य, आत्मकथा, निबंध, रेखाचित्र आदि। अतः महान साहित्यकारों का युद्धविरोधी स्वर साहित्य की इन सभी

1. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन, डां महीपसिंह - पृ. 24

विधाओं में गूँज उठा। दूसरी विधाओं से अधिक निबंध, यात्रा साहित्य, आत्मकथा आदि की खासियत यह है कि अन्य विधाओं में कृति का सौन्दर्य बढाने केलिए लेखक कल्पना के पीछे जाते हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक हो या कविता कल्पना का सहारा लेकर सृजनात्मक सौन्दर्य को बढाया जाता है। लेकिन अन्य साहित्यक विधाओं में कल्पना का तत्व हल्का होता है। अनुभूति की प्रामाणिकता इन विधाओं की सबसे बडी पहचान है।

यात्रासाहित्य

अपनी यात्राओं के दौरान लेखक जिन जिन स्थानों में जाते हैं, उनका आँखों देखा वर्णन यात्रा साहित्य में मिलता हैं, इसलिए इसमें कल्पना की गुंजाइश बहुत कम ही है। वर्णन, कथा और चिन्तन का सम्मिलित रूप यात्रा साहित्य में देखा जा सकता है। यह जीवन चरित का एक खंड है, इसलिए इसमें जो पात्र आते-जाते है, वे लेखक के जीवन से ज़्यादा निकट संपर्क पानेवाले है, इतिहास चरित-नायक भी यात्रा साहित्य में स्थान पा लेते हैं। इनकी कहानी कहने के साथ साथ लेखक यात्रानुभूति में भी प्रवेश करता है।

अज्ञेय ने यात्रा साहित्य और संस्मरण की विधाओं को मिलाकर यात्रा-संस्मरण की नई परिकल्पना दी है। यात्राएँ जितनी बाहर जाती है, उतनी ही अंदर की ओर भी। 'अरे ययावर रहेगा याद? (1953) इस कोटि की पहली रचना है। भारत के पूर्वी सीमाँत से लेकर उत्तर पश्चिम सीमाँत तक की यात्रा का वर्णन इसमें मुख्यत:

आते है। इसमें मनुष्य और प्रकृति के अन्तर-संबन्धों का लेखक बराबर विश्लेषण करता है।

विदेश-यात्रा के सुगम और सुलभ होने के साथ यात्रा संस्मरण लिखने और पढने में रुचि बढ गयी है। यात्रा संस्मरण में लेखक सिर्फ एक tourist guide का स्थान नहीं लेते है। इसमें स्थूल तौर पर भूगोल संबन्धी विवरण होता है और व्यक्ति की मानसिकता का सूक्ष्म सटीक वर्णन भी। आँखों देखी असलियत का प्रभावात्मक वर्णन यात्रा साहित्यकार करता है। कल्पना की गुंजाइश न होने के कारण निजी अनुभूति को बडी महत्ता देने के कारण, एक उपन्यासकार या कहानीकार से ज़्यादा पाठकों के मन में प्रभाव डालने में सक्षम हो जाता है एक यात्रा साहित्यकार।

चीडों पर चाँदनी

निर्मल वर्मा हिन्दी के वरिष्ठ कहानीकार, उपन्यासकार और निबन्धकार होने के साथ साथ एक महान यात्रा साहित्यकार भी है। एक लंबे अरसे तक वे यूरोप में रहे है। इस दौरान उन्होंने यूरोप के सभी प्रमुख शहरों की यात्रा की है। यूरोप के अनेक देशों की धडकन को उन्होंने बहुत नज़दीक से सुना है। दुब्चेक काल का प्राग वसन्त, सोवियत स्वप्न का मोहभंग, पेरिस के बैरिकेडों की उडानभरी इच्छाओं को इस भारतीय रचनाकार ने भीतर-बाहर से समझने का प्रयत्न किया है। युद्ध से बैचैन संस्कृतियों के घावों को देखने के बाद 'हर बारिश में' निर्मलजी ने लिखा है कि - अपने दूसरे यूरोप प्रवास के दौरान मुझे

संयोगवश कुछ ऐसे शहरों में रहना पडा, जहाँ अपनी आँखों से मुझे इतिहास को - किताबों में नहीं-गली-सडकों पर लोगों के चेहरों पर देखना पडा। यह इतिहास से मेरी पहली, नंगी भयावह मुठभेड थी। पहली बार मुझे पता चला कि अखबार की सुर्खियों और सेमिनारों की वातानुकूलित बहसों से बाहर इतिहास का चेहरा कितना यातनामय, उदास, भयानक, बीभत्स और नेत्रहीन हो सकता है। वहाँ सत्य और असत्य के लिए कोई गुजाइश नहीं - टैंकों के यथार्थ और लोगों के आँसुओं के बीच जो रेखा खींची जाती है, उसे केवल बरसों बाद वह जाना जाता है।'

अपने कसकते-दुखते-छटपटाते अनुभवों को निचोडकर निर्मल ने टाईम्स ऑफ इंडिया के लिए इन्हीं यात्राओं के बारह संस्मरण 'चीडों पर चाँदनी' नामक पुस्तक में संगृहीत किया है।

निर्मलजी मित्रों के साथ बार्लिन पहूँचते हैं, जहाँ प्रथम विश्वयुद्ध की स्मृतियाँ उनके मन को अशान्त कर देती है। उन्हें लगता है कि वहाँ की मिट्टी की गंध में भी मृत पीढि का अतीत भरा हुआ है। निर्मलजी पहली बार जर्मनी आते है, पहले लंदन और पारिस से होकर जर्मनी के बीच से वे गुज़र गये थे। लेकिन जर्मनी उतरने से वे हिचकते थे। उनके मन में हमेशा एक अज्ञात भय छा रहा था। उनके शब्दों में - 'मैं दो बार लंदन और पारिस जाते हुए जर्मनी के बीच से गुज़रा हूँ, किन्तु कभी यहाँ उतरने को मन नहीं हुआ, कोई अदृश्य सा भय एक अजीब सी झिझक सामने खडी हो जाती है। मुझे कई बार ऐसा लगता

है कि जो समय सबकेलिए, यहाँ के निवासियों केलिए बीत गया है, वह मेरेलिए अभी तक जीवित है, प्रतीक्षारत है।

युद्ध के कई वर्ष बाद निर्मलजी बर्लिन आते है, वे युद्ध का प्रत्यक्ष भोक्ता नहीं, संवेदनशील मानव होने के नाते उनके मन में एक अजीब-सा, अज्ञात डर छा जाता है। युद्ध का समय पीछे छूट गया है, लेखक को ऐसा नहीं लगता है। युद्ध की हर घडी कवि केलिए सदैव जीवित है, प्रतीक्षारत है। क्योंकि इतिहास को इतिहास मानकर उसे अतीत में धकेल देना लेखक के लिए बडी मुश्किल है। 'गडे मुर्दों को उखाडना ठीक नहीं,यह बुरी आदत ही है, लेकिन हरेक आदमी के भीतर एक गडे मुर्दे जीवित है, मध्य यूरोप से गुज़रते वक्त लेखक को उनका अच्छा स्पर्श महसूस होता है। आज की जर्मनी से गुज़रते वक्त उनके भीतर बेमानी सी बेचैनी होने लगती है। बर्लिन से गुज़रते वक्त लेखक के मन में किसी न किसी प्रकार की बेचैनी हो रही है। इस प्रकार की बैचैनी उन्हें पहले भान और काफ्का की कहानियों में महसूस होती थी। भान जर्मन लेखक है और काफ्का चेक लेखक है।

लेखक के मन में ब्रेख्त के नाटकों के प्रति पहले से ही विशेष रुचि थी। बर्लिन एन्सेब्ल में ब्रेख्त के नाटकों को देखने की तीव्र इच्छा उनमें थी। उनकेलिए बर्लिन आने का सबसे बडा आकर्षण भी ब्रेख्त था। ब्रेख्त बीसवीं सदी के सबसे महान नाटककार है। उनकी तुलना जर्मनवाले शेक्स्पियर से करते हैं। नासी सत्ता स्थापित हो जाने के बाद वे जर्मनी के बाहर चले गए। गलिलियो, मदर करेज आदि

लोकप्रिय नाटकों की रचना इस निर्वासित काल में हुई थी। 'नाटक के समस्त मान-मर्यादाओं को तोडकर उसे बीसवीं सदी के विशिष्ट प्रतीक के रूप में सर्वथा नया मोड देनेवाला यह जर्मन लेखक एक फासिस्ट विरोधी कम्यूनिस्ट भी हो सकता है। ब्रेख्त फासिस्ट विरोधी कम्यूनिस्ट है। लेकिन महान साहित्यकार के रूप में लोग उन्हें स्वीकार करते हैं। उनके 'फियर आँड मिसेरी आँफ रायट' में हिटलर की क्रूरताओं का चित्रण है।

बर्लिन के थियटर 'एनसेम्बल' की स्थापना ब्रेख्त ने अपनी पत्नी हैलेन वैगल के साथ मिलकर की है। ब्रख्त के मरणोपरान्त इसकी देखरेख हेलन कर रही थी। पूर्वी बर्लिन के एक उजडा-सा और वीरान जगह में इसकी स्थापना हुई थी।

थियटर में नाटक देखते वक्त ब्रेख्त की विधवा, जो थियटर की मुख्य निर्देशिका भी है, से निर्मलजी की भेंट हुई। ब्रेख्त के नाटक लेखक को अपना समकालीन लगा। उन्हें लगा कि फासिज़्म, बन्दी-शिविर, नर-संहार - ये महज दीवार की छायाएँ नहीं, एक विघटन-प्रक्रिया के प्रतीक है। नाटक देखते वक्त लेखक को ऐसा लगा कि थियटर की दीवारों के परे कुछ आवाज़ें भटक रही है और वहाँ दरवाज़ा खटखटा रहा है।......और हम दर्शक और अभिनेता समूचा मंच और auditorium एक अजीब दबाव तले धँसने लगता है। इनसे मुक्ति पाने का एक ही उपाय है, हम बाहर निकल आये, इन आवाज़ों के साक्षी हो सके।

ब्रेख्त के नाटकों के पात्र केवल पात्रों से परे समकालीन समाज में अपनी भूमिका निभानेवाले है। इनमें स्वेच्छाचारी शासक वर्ग है, त्रासदी के भोक्ता आम आदमी भी। इनके नाटक का जीवन्त प्रभाव लेखक पर इतना पडता है कि उन्हें ऐसा लगने लगा कि ये पात्र मंच पर उतर आकर उनके दिल को अत्यन्त बेचैन बनाने लगे हैं। यूरोप के देशों में, जीवित मुर्दों के सामान युद्ध की त्रासदी के भोक्ता आदमियाँ अब भी साँस ले रहे हैं।

जर्मनी की राजधानी बर्लिन लेखक को एक अभिशप्त शहर लगता है। बर्लिन की गलियाँ खाली और सूनी पडी हुई है। यदि लडाई को समाप्त हुए सालों बीत चुके, उसके मर-मिटे धन कहीं कहीं उभर आते थे। जली हुई ईंटों और टूटी दीवारों का मलबा गलियों में नजर आते थे। शीतयुद्ध की नंगी तस्वीर यूरोप के किसी भी शहर में दिखाई नहीं देती। किन्तु बर्लिन में युद्ध और आतंक की छाया सदैव छा रही है। विभाजन के पश्चात्त कुछ वर्षों तक कुछ लोगों को हज़ारों मील चलकर काम करने केलिए पूर्वी बर्लिन से पश्चिमी बर्लिन जाना पडता था। एक ही परिवार का आधा भाग पश्चिम में और आधा पूर्वी भाग में रहते थे। पश्चिमी बर्लिन की दूकानें, होटलें और आधुनिक वास्तुकला की इमारतें किसी का भी ध्यान अपनी और खींचनेवाली है। वर्षों पहले यहाँ लाखों लोग युद्ध और अतंक की तीव्र वेदना को भोगे थे। युद्ध के भद्दे अवशेषों को ये इमारतें अपने में छिपा लेती है। बर्लिन की पुरानी इमारतों को देखने पर लेखक के मन में वियन्ना और प्राग के पुराने मकानों की याद आयी। वियना जैसे भयावह भारी और सूनी वातावरण

उसे यहाँ भी महसूस होने लगा। वहाँ की गलियों में लडाई से पहले यहूदी परिवार रहते थे, जो अब एक स्वप्न सा लगता है, क्योंकि ये गलियाँ अब सूनी पडी हुई है।

युद्ध चन्द ही क्षणों में एक देश को, वहाँ की जनता को, उनकी संस्कृति को इस पृथ्वी से उखाड फेंकता हैं। एक दिन अचानक फूटनेवाले युद्ध या एक बम उनके साथ हज़ारों के सपनों को भी तोड देता है। बर्लिन की जीवित जनता इसका ज्वलन्त मिसाल है।

पश्चिमी बर्लिन की यात्रा पर टूरिस्ट बस में एक चतुर, वाक्पटु, विनोदप्रिय गाइड थे। सारे यात्री उनकी विनोदप्रियता से ज़्यादा प्रभावित भी हुए थे। जल्दी उनकी आवाज़ धीमी और उदास होने लगी। वह एक जागरूक युवा जर्मन नागरिक था, टूटी हुई इमारतों के खण्डहर देखने पर उसने उदास भाव से बताया - गोयबल्स की मिनिस्ट्री का एक दफ्तर था, सोवियत बमबारों ने इसपर क्षति पहूचायी है।'

युद्धकामी शासक-वर्ग के लिए केवल एक ही लक्ष्य है, हथियार लेकर किसी न किसी प्रकार अपने लक्ष्य तक पहूँचना। युवा जनता की जागरूकता को, मासूम जनता की त्रासदी को और बाल-बच्चों की कराहट को वे अनदेखा करते हैं।

यात्रा के दौरान निर्मलजी आइसलांड पहूँचे, जहाँ उन्हें मालुम हुआ कि युद्ध के पहले यहाँ वेश्यावृत्ति नहीं थी, किन्तु युद्ध के बाद औरतों को आजीविका चलाने केलिए वेश्या बनने की ज़रूरत पड गयी। स्वेच्छाचारी शासक आम आदमी की कराहट को अनसुना कर

सकते हैं। लेकिन गरीबी में अपने बाल-बच्चों के रोते रहने पर ये स्त्रियाँ अपनी अस्मिता और पवित्रता को कब तक सुरक्षित बनाके रह सकती हैं।

बर्लिन की दीवारों पर लेखक ने तीन श्ब्द देखे, fascism never again। उसे यह देखकर बहुत ही तसल्ली महसूस हुई। फिर भी बर्लिन के भविष्य उसे अस्थायी लगने लगा।

लिदित्से - चन्द क्षणों में राख में परिणत एक गाँव

यात्राओं के दौरान लिदित्से पहूँचनेवाले निर्मल को अपने बचपन की एक घटना की याद आती है। बालक निर्मल ने मार्ग में एक पोस्टर देखा, जिसपर लिखा था 'लिदित्से विल लिव।' उस दिन घर आकर उसने एटलस में इस जगह को ढूँढा। लेकिन श्रम विफल ही रहा। वर्षों पश्चात्त लेखक अब लिदित्से पहूँचते हैं। अब उस गाँव का नाम मात्र ही शेष बचा है। इस कस्बे को नासियों ने रात की चन्द घडियों में राख में बदले।

निर्मलजी के साथ फिलॅलजिक्कल फॉक्वल्टी के डीन डॉ. फ्रीड भी शामिल थे। जब कोई स्मारक या स्थान देखते है तो फ्रीड उसके ऐतिहासिक महत्व के बारे में निर्मलजी को समझा देते थे। लेकिन लिदित्से के संबन्ध में वे एक भी शब्द नहीं बोले। लेखक को उनका मौन बहुत ही सही लगा, क्योंकि उसका मौन और कुछ नहीं था, वह तो मरी हुई बस्ती के मौन का ही प्रतीक था।

प्राग से बीस-पच्चीस मील की दूरी पर स्थित एक छोटा-सा गाँव है लिदित्से। यहाँ एक बडे जर्मन अफ्सर की हत्या हुई थी। फौरन तनाव और आतंक का वातावरण दूषित हवा सा फैल गया। बहुत छानबीन के बाद भी हत्यारे के बारे में कोई ठोस सबूत नहीं मिला। लिदिंत्से में उस समय अधिकाँश संख्या में फेक्टरी-मज़दूर रहते थे। इसलिए सबने इस गाँव पर सन्देह की दृष्टि डाली कि हत्यारे लिदित्से में कहीं छिपा है। धीरे-धीरे उनका यह सन्देह पक्का हो गया। गोस्टापो पुलिस ने बच्चों से लेकर बूढों तक पूछताछ की। फिर भी किसी का पता न मिला। फासिस्ट लोगों को उनकी बात पर विश्वास न आया। जर्मन सेनाओं ने लिदित्से पर धावा बोलने का इरादा किया। हाई-कमाँड ने घोषणा की कि 'आनेवाली पीढियाँ कभी नहीं जानेंगी कि इस धर्ती पर किसी ऐसे गाँव का अस्तित्व था, जिसने जर्मन राज्य के शत्रू को आश्रय दिया था। जर्मन हाई-कमाँड के घोषणा-पत्र की ये पंक्तियाँ आज भी लिदित्से के म्यूसियम में सुरक्षित है। 10 जून 1942 को मिलिट्री ट्रकों में आये सिपाहियों ने गाँव को राख में बदल दिया। लिदित्से पहूँचकर लेखक ने सोचा कि मरे हुए इस गाँव के बीच कुछ आदमी शेष रहे हैं। लेकिन वहाँ उन्हें केवल टूटी दीवारों का मलबा, ईंटों का ढेर, सूने खामोश पत्थर मिला। यहाँ के प्राइमरी स्कूल के बच्चों को जर्मनी के विभिन्न concentration camp में भेज दिया गया। स्कूलों की इमारतों के मलबे भी वहाँ दिखाई पडे।

युद्ध के बाद लिदिंत्से में म्युसियम का निर्माण हुआ। युद्ध के उपरान्त जो जो चीज़ें यहाँ बची हुई थी, वे सब अब इस म्युसियम में

सुरक्षित है। सेनाओं ने इस उजडी वीरान बस्ती में से एक-एक घर को चुनकर नष्ट कर दिया है। म्यूसियम में बच्चों के पैराम्बुलेटर और अधजली गुडियाएँ, खिडकियों के पुराने परदे सुरक्षित है। नये साल की शुरुआत में कॉन्सन्ट्रेशन कैंपों में भेजने से पहले लिए बच्चों के हँसनेवाली तस्वीरें भी वहाँ दिखाई पडी। लेखक को लगता है कि "इन खण्डहरों के बीच समस्त मानव की आत्मा का एक अंश दबा हुआ है। मलबे के बीच में भटकते समय उन्हें अपने लिए 'आउटसाइडर' शब्द अजीब-सा लगा। क्योंकि जिस सदी में हम जीते हैं, हममें से हर एक व्यक्ति उसका गवाह है, और गवाह होने के नाते जवाबदेह भी.....।"[1]

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति और द्वितीय विश्वयुद्ध का आरंभ - इन दोनों के बीच का कालक्रम, वह छोटा समय कई दृष्टियों से आधुनिक चेक साहित्य का सुवर्णकाल है। इन बीस वर्षों ने लेखकों और कवियों की एक ऐसी नयी पीढी को जन्म दिया, जिसने चेक साहित्य को अलगाव और अकेलेपन की उपेक्षित स्थिति से मुक्त करके अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित किया।

चेकोस्लोवेकिया पहला देश था, जिसे फासिस्ट दरिन्दों ने अपना शिकार बनाया। सात वर्षों तक यह फासिस्ट जर्मनी के अधीन में रहा। अनेक चेक लेखक और कवि फासिस्टों के यातनागृहों से वापस न लौट सके। महान चेक लेखक जोसेफ चेपक की मृत्यू किसी अज्ञात कॉन्सन्ट्रेशन कैंप में हुई, व्लादिस्लॉव वाचुरा को, जो शायद चापेक के बाद सबसे महान चेक लेखक थे, गोली से उडा दिया गया। समूचा देश

1. चीडों पर चाँदनी - निर्मल वर्मा - पृ. 97

एक विराट यातनागृह बन गया था, जिसकी तंग चहारदीवारी में मुक्त रूप से साँस लेना भी असंभव सा हो गया। ऐसी कठिन परिस्थितियों में भी चेक साहित्य न केवल जीवित रहा, बल्कि कुछ अत्यन्त सुन्दर कविताओं और उपन्यासों की रचना इस काल में हुई।

नॉलबर्ट फ्रीद का उपन्यास 'ज़िन्दा प्राणियों का बक्स' और मिलान लाटीश की कहानियाँ यातना-गृहों की क्रूर कातर स्मृतियों पर आधारित है। युवा लेखक यान ओत्चेनाशेक का उपन्यास 'रोमियो जूलियट और अंधेरा' युद्ध के वर्षों बाद लिखा गया। किन्तू समूचे उपन्यास की पृष्ठभूमि में युद्ध और फासिस्म की छाया एक प्रेत की तरह मँडराती दिखाई देती है। लेखक के विचार में आज भी युद्धोत्तर चेक साहित्य अपने को इस छाया से मुक्त न कर पाया है।

"कुछ घटनाएँ होती है, जो बीत जाने पर अतीत की धूल में न दब जाती। मन के संग उसकी एक नयी अप्रत्याशित रूप से अनजानी परत खुल जाती है - एक ताज़े घाव की तरह और उसे हर पीढी उसी आतंक और नंगेपन में महसूस करती है।

चेक लोगों केलिए युद्ध ऐसी ही स्मृति है, यदि जीवित दुस्वप्न को स्मृति कहा जा सके।"[1]

देश-विदेश

हिन्दी के मशहूर साहित्यकार रामधारी सिंह दिनकर ने कविता, यात्रा-साहित्य, निबन्ध आदि भिन्न विधाओं में अपनी अनूठी

1. चीडों पर चाँदनी - निर्मल वर्मा - पृ. 172

क्षमता दिखायी है। 1942 में दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान वे युद्धप्रचार विभाग में कार्यरत थे। इसलिए उनपर युद्ध का वैयक्तिक और सामाजिक प्रभाव पडा। युद्ध की तीक्ष्ण और भयावह त्रासदी से उनका सीधा साक्षात्कार भी हुआ था।

दिनकरजी के यात्रा साहित्य में युद्ध की त्रासदी की तीक्ष्ण अभिव्यक्ति हुई है, दिनकरजी ने हमेशा युद्ध के खिलाफ अपनी तीव्र आलोचना अभिव्यक्त की है। यात्राएँ संबन्धित उनका संस्मरण 'देश-विदेश' में संकलित है।

ओसोविचिम - जर्मन अत्याचार का म्यूसियम

यूरोप में ओसोवेचिम नामक एक स्थान है जहाँ जर्मन अत्याचार का म्यूसियम है। लडाई के दिनों में जर्मनों ने यहाँ सत्तर लाख पोलों को जान से मार डाला। हत्या का यह काम ओसोवेचिम में चलता था, कुछ अन्य स्थलों पर भी। कुछ पोलिश मित्रों ने बताया कि जर्मन हत्यारे एक एक पढे लिखे गुणवानवाले को मार डालना चाहते थे। कवि पत्रकार, प्रोफसर, शासक, जनसेवी, राजनीतिज्ञ और कलाकार इनमें से वे किसी को भी जीवित छोडना नहीं चाहते थे। जीवित वे केवल उन्हें रखना चाहते थे जो जर्मनों की बेगारी और मज़दूरी कर सके।

हत्या की जो जो कहानियाँ वहाँ सुनाई गयी उन्हें याद करके आज भी लेखक के मन में उबकाई आती है। मारने का ढंग यह था कि सौ - दो सौ लोगों को डराकर माँगवा लिए जाते, उनका सिर मुँडवा लिया जाता कि केशों से जर्मन कारखानों के ब्रश बनवाए जा सके और

फिर सबको गोलियों के धार उतार दिया जाता। हत्या उन्होंने नारियों की भी की। लेखक ये सब सुनकर हैरान हुए। 'मेरे चकित होने पर मित्रों ने बताया नासी हत्यारों में उतनी भी करुणा न थी जितनी कर्मचारियों में होती है। ओसवेचिम में एक वधालय भी था, जिसमें लोग बिजली में जीवित ही भून दिए जाते थे, क्योंकि लाखों लोगों को मारने में गोलियाँ व्यर्थ बरबाद होती।'

युद्ध और आतंक को बनाए रखने के पीछे हमेशा एक व्यावसायिक दृष्टि छिपी रहती है। युद्धबन्दियों के सिर मुँडवाने के पीछे यही दृष्टि है। यहाँ आदमी की जान मूल्यहीन हो जाती है। जान को खतरा पहूँचाकर धन कमाने में इन्हें कोई हिचक नहीं। गोलियों को बरबाद करना वे नहीं चाहते। इसलिए खून और माँस से भरे आदमी को वे बिजली में भून देते हैं।

युद्ध और यातना से भरी ये कहानियाँ सुनकर लेखक का हदय दहल उठा। इसलिए ओसवेचिम जाने से उन्होंने इनकार किया। म्यूसियम तो सिर्फ ओसवेचिम में है, किन्तू जर्मनों के मृत्यू शिबिर दहाक, तेवलिका और मैदानक नामक स्थानों पर भी होते थे।

पोज़न में वे टाउन हाल देखने गए। यहाँ हाल पहले पहल 14वीं सदी में बनाया, दूसरी बार 1550 ईसवीं में और तीसरी बार 1760 ईसवीं में इसका पुनर्निर्माण हुआ, बाद में हिटलर की सेनाओं ने उसे बरबाद कर दिया।

क्रैकोव में दिनकर की भेंट एक कैथालिक कवयित्री से हुई, उनकी उम्र 63 साल की थी। उनकी शिक्षा ओक्सफोर्ड में हुई थी। वे बोली 'साहित्य तो वही उत्तम होता है, जिसे जनसाधारण समझे और उससे आनन्द उठा सके। कला को भी जीवन से संबद्ध होना चाहिए। युद्ध के पहले पॉलंड में ऊँचा साहित्य लिखा जाता था। मगर, उन दिनों में लेखकों की बातें लेखक ही समझते थे, जनता उन्हें ग्रहण न कर पाती थी, मगर आज जो नाटक लिख रहे हैं, वे जनता की समझ में आते है।'

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान हिटलर ने सत्तर लाख पोलिश आदमियों का वध करवाया, जिनमें कलाकारों, मनीषियों और बुद्धिजीवियों की संख्या काफी बडी थी।

हथियार के सामने सभी आदमी एक-सा होता है, मानव मानव के बीच का सभी भेदभाव हथियार के सामने मिट जाता है, किसी न किसी प्रकार उनकी हत्या करके साम्राज्य व्याप्ति करना चाहता हैं अधिकारी लोग।

जासूसों का अड्डा बना स्विट्सरलांड

स्विटसरलॉंड की स्थाई सेना बहुत थोडी है, लेकिन यहाँ के हर व्यक्ति के पास बन्दूक और कारतूस है, और प्रतिवर्ष उसे सैनिक शिक्षा दी जाती हैं। केवल तीन घण्टे की नोटिस पर वहाँ पच्चीस लाख की सेना खडी की जा सकती है। इस भय से लडाई के दौरान हिटलर ने स्विट्सरलॉंड की और कदम न बढाए, कदम बढाता तो लोग डरकर

उसका सामना करते। युद्ध के समय यह देश तटस्थ था और तटस्थ होने के कारण यह देश जासूसों का अड्डा बना हुआ था। प्रायः सारे के सारे षड्यंत्र यहीं सोचे और गढे जाते हैं।

युद्धक्षेत्र में युद्ध से सीधा साक्षात्कार होने के कारण दिनकर के विवरणों में मानव के कातर मन की अनूठी व्याख्या है, मानव दुख की गर्मी भी।

अपोलो का रथ

हिन्दी साहित्य में श्रीकान्त वर्मा का व्यक्तित्व कवि, कहानीकार, उपन्यासकार आदि भिन्न रूपों में है। यात्रासाहित्य में भी उन्होंने अपनी अनूठी क्षमता दिखाई है।

श्रीकाँतवर्मा का यात्रा साहित्य 'अपोलो का रथ' में संगृहीत है। लेखक के अनुसार यह मात्र एक यात्राविवरण नहीं, एक भारतीय लेखक द्वारा यूरोपीय अनुभव को पहचानने का प्रयत्न है।

यात्राओं के दौरान लेखक का सीधा साक्षात्कार इतिहास के खण्डहरों से होता है, इतिहास के इन खण्डहरों के बीच से गुज़रकर उनका मन मानवता की रक्षा केलिए आकुल होता है। इसलिए यात्रा संस्मरण के बीच बीच में आलोचना का स्वर भी गूँज उठता है। संस्कृति के सुन्दर बाहरी ढाँचे पर लेखक की दृष्टि पडती है, साथ ही उनके अन्तर्विरोधों को भी वह बारीकी और तटस्थता से विश्लेषित करने का प्रयास करता है।

जिया कामती की मूर्तिकृतियों के बाहरी सौन्दर्य पर लेखक आकृष्ट नहीं होता। मानवीय स्वतंत्रता के संघर्ष-भरे दिनों की याद उन्हें झेलता है। हज़ारों वर्षों से लेकर आज तक के मनुष्य का इतिहास गौरवपूर्ण है, साथ ही साथ अत्यन्त बर्बर और भयावह भी। जियाकोमत्ती की मूर्तियाँ केवल कला और सौन्दर्य का लेखा-जोखा नहीं है, उसपर मनुष्य के समस्त अपराध, हत्याकांड, बलात्कार, नरमेध भी दर्ज है।

संसार-भर मानवता के अधिकारों और स्वतंत्रता का हनन हो रहा है। अखबारों में दिन-ब-दिन होनेवाली क्रूर घटनाएँ हम पढते हैं, खून और माँस से भरे हुए मानव के चन्द ही क्षणों में कंकाल में परिणत होने के क्रूर दृश्य के गवाह होते है हम।

आदमी ही आदमी का पहला दुश्मन बन गया है। उसके मन में संहार की तीव्र इच्छा छिपी रहती है। श्रीकांतजी की जर्मन यात्रा के दौरान शहरों में चार्ली चाप्लिन की पुरानी फिल्म great dictator दिखाई जा रही थी। युद्ध के पश्चात्त जर्मनी में जन्मी नयी पीढी चाप्लिन की इस फिल्म को देखकर विस्मित होती है, क्योंकि जर्मनी की नयी पीढी को हिटलर जैसे व्यक्ति की कल्पना सोच के परे की बात है। 'हिटलर उनकेलिए आदिगाथा के किसी पिशाच की तरह है, इस पिशाच को भुलाना नहीं चाहिए, बल्कि पागल इन्सानों की बर्बर इच्छा के चरम उत्कर्ष के रूप में याद रखना चाहिए। आदमी ही आदमी का पहला दुश्मन बन गया है। उसका एक हाथ कभी भी दूसरों के खिलाफ उठ सकता है। इस अवसर पर हत्या को रोकने के लिए इस बर्बर और निर्दय व्यक्तित्व की तस्वीर दिखाना ज़रूरी है।'

प्लान्तजेंसी-पश्चिमी बर्लिन का कैदखाना

हिटलर की निगाह में मनुष्य और पशुओं में विशेषकर कोई अन्तर नहीं था। प्लान्तजेंसी, पश्चिमी बर्लिन के कैदखाने का एक छोटा-सा अंधेरा-सा कमरा है। इस कमरे की छत पर सूलियाँ बनी हुई है। सालों पहले यहाँ गायों और सुअरों का वध किया जाता था। 1933 में गोएरिंग के नेतृत्व में गोस्टापों की स्थापना के साथ ही हिटलर ने प्लात्जेसी के सील भरे कोठे को स्त्री, पुरुषों और बच्चों की वधशाला में परिणत कर दिया। सूलियों के अलावा दीवार के एक किनारे सिमेंट का एक चबूतरा बनाया, जिस पर लिटाकर उस्तरे से हत्या की जाती थी। यहाँ अभिनेता, अनुवादक, प्रोफेसर, बुद्धिजीवि, फौजी अफ्सर आदि से लेकर 15 साल तक के किशोर की भी हत्या की जाती थी।

प्लंतजेन्सी में सूली पर चढाए जानेवालों का लेखा-जोखा लेखक देते हैं। 4 अगस्त 1943 को प्लात्जेसी में ईवा को सूली पर चढाया गया। 23 वर्षीय मरिया मृत्यु पुस्तकें बेचनेवाली थी। वे बोगियो का साथ देते थे। मुकदमे के दौरान बागियों का साथ देने का कारण उससे पूछा गया तो उसने बताया - यदि मैं ऐसा न करती तो मैं उतनी ही गिरी हुई होती, जितना कि तुम इन्सान को बनाना चाहते हो। सूली पर चढाए जाते वक्त उसके मन के सारे द्वन्द्व समाप्त हो गए थे। उसके मन में केवल शान्ति और सुख का अनुभव हो रहा था।

आदमी की बुनियादी ज़रूरतें रोटी, पानी, कपडा आदि हैं। लेकिन कुछ आदमी ऐसे है, जो रोटी से ज़्यादा महत्व स्वतंत्रता को देते

हैं, और स्वतंत्रता से ज़्यादा वे आस्था की रक्षा करना चाहते हैं। 1934 तक हिटलर की वधशाला में आदमियों की गरदनें कुल्हाडे से उतारी जाती थी। मृत्यू दंड प्राप्त व्यक्तियों की संख्या में इतनी बढोत्तरी हो गई कि यहाँ की सूलियाँ अपर्याप्त साबित हुई। 9 सितंबर 1943 की रात को मित्र राष्ट्रों ने बम बरसाकर कैदखाने की दीवार को जला दिया। भीतर अनेक बन्दियाँ मुक्ति की प्रतीक्षा में थे। कैदखाने में नये बन्दियों के लिए स्थान का अभाव था, इसलिए पुराने बन्दियों को रातों रात ही मारने का आदेश दिया गया। केवल एक रात में 186 व्यक्तियों की गरदनें उतार दी गई। 'प्रति मिनट एक व्यक्ति की रफ्तार से दूसरे दिन, 10 सितंबर को 108 व्यक्ति वधिक के सुपुर्द किए गए। केवल एक सप्ताह में इतने व्यक्ति मारे गए कि बहुत से शवों की शिनाख्त भी न हो सकी-घड किसका है, गरदन किसकी। इस सन्दर्भ में श्रीकान्तजी को हंस ईगाँन होलशयुसन की पंक्तियाँ याद आती है:

कितनी भयानक है, मृत्यू! खौफनाक
आएँगे वे, गरदनें दबोचेंगे, हत्या करेंगे निर्विकार[1]

हिटलर की कुरीतियों के अस्वस्थ होकर पाँच बहादूर जर्मन अफ्सरों ने उनकी हत्या करने का निश्चय किया। 20 जूलाई को दोपहर 12.42 मिनट पर हिटलर के बैठक कक्ष में कर्नल काउट स्चाडफेनबर्ग द्वारा रखे रखे गए बम का विस्फोट हुआ। लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। नियति की इच्छा जर्मनी की इच्छा के विपरीत था। हिटलर को

---

1. अपोलो का रथ - श्रीकांत वर्मा - पृ. 12

मामूली चोटें आयीं और मध्य रात्रि के थोडी देर बाद देश-भक्त फौजी अफ्सरों को बेंडेलस्त्रासें उडा दिया गया। अपराधियों को अदालत ले जाकर मौत की सज़ा सुनाई गई। हिटलर की इच्छा के अनुसार उन्हें फाँसी पर चढाया गया। कुछ की हत्या और भी क्रूर तरीके से हुई। उनकी गरदनों को रस्सियों से बाँधकर उनका दम धीरे-धीरे घोंटा गया।

हिटलर की यह इच्छा थी कि इस समूचे हत्याकांड की फिल्म बनायी जाए, मगर आरंभिक कुछ हत्याओं की फिल्म लेने के प्राद कैमरामैनों ने इस भयानक दृश्य की तस्वीरें लेने से सम्मिलित रूप से इन्कार कर दिया। कैमरामैन हेर साँस्से ने बयान किया है, 'जिस इमारत में (प्लान्जेंसी) में यह हत्याकांड हुआ, उसकी हाल में मरम्मत हुई थी, क्योंकि हवाई हमलों में उसके कुछ हिस्से टूट-फूट गए थे। कमरा आठ मीटर लंबा और चार मीटर चौडा था। बीचों-बीच एक काला पर्दा था। रोशनी केलिए केवल दो सूराख थे। इन सूराखों के ठीक सामने छत से आठ कडियाँ लटक रही थीं, जिन पर उस्तरा भी था। सबसे पहले भूतपूर्व जनरल को लाया गया। उनके आजू बाजू दो वधिक थे। पडोस के कमरे में पब्लिक प्रॉसिक्यूटर बैठा हुआ था। 'मुजरिम!' जनता की अदालत ने तुम्हें मौत की सज़ा सुनाई है। वधिकों! अपना काम शुरू करो। 'अभिशप्त व्यक्ति सिर ऊँचा किए आगे बढा। वधिकों ने उससे और भी जल्दी चलने को कहा। कमरे के छोर पर पहूँचने के बाद उससे मुडने को कहा गया। उसके बाद उसके गले में फंदा डाल दिया गया। फंदे का डोरा कडी में फँसा दिया गया

और एक झटके के साथ पैरों के नीचे से पटरी खींच ली गई। फंदे ने गले को बुरी तरह कस लिया। मृत्यू तत्काल हुई होगी।

प्रत्येक मृत्यू दंड के बाद झूलते हुए शव पर काला पर्दा खींच दिया जाता था, ताकि सूली पर चढनेवाले अन्तिम व्यक्ति को पता न चले कि उसके एक के बाद एक सबको फाँसी दी गई और सभी मुजरिमों ने बेखौफ मौत का सामना किय।

मूल्यहीनता का बोलबाला -समाज और राजनीति में

मूल्यहीन समाज में युद्ध और आतंक का बोलबाला होता है। समाज की मूल्यहीनता के शिकार आम आदमी होते हैं। युद्धरत और मूल्यहीन दुनिया में अदमी की जान भी मूल्हीन है, सब कहीं उसके पीछे खतरा छिपा हुआ है। पुस्तक की इन पंक्तियों को पढने से हमारे मन में जो वितृष्णा पैदा होती है, वह हमारी संवेदनशील हृदय का ही प्रमाण है। इन कुरीतियों को करनेवाले जितने क्रूर, निर्मम, अनैतिक, अत्याचारी होगा, इस बात की कल्पना भी हम नहीं कर सकते हैं।

चुनाव-सभा में एक दिन गोएरिंग ने कहा था, मैं जो तरीके अपनाऊँगा, कानून उनमें बाधा नहीं पहूँचा सकता। मेरा काम न्याय करना नहीं, संहार करना है, बस इससे अधिक कुछ नहीं। अधिकारी संहार से ही अपनी न्यायपूर्ति को संभव मानते हैं। क्या संहार न्याय है? यह प्रश्न तो आम आदमी का है। क्रूर संहार करके ये करोडों मासूम लोगों के परिवारवालों से अन्याय करते हैं।

गोएरिंग का प्रस्ताव सही निकला। युद्ध की शुरुआत के पहले ही जर्मनी में 225000 स्त्री-पुरुषों को राजनैतिक कारणों से कुल 600,000 वर्षों की सज़ा सुनाई जा चुकी थी। 1939 में 300000 जर्मन राजनैतिक कार्यकर्ता हिटलर के कैदखानों में थे। 1933 से 1944 के बीच 13,405 आदमियों को फाँसी दी जा चुकी थी। जर्मनी के बाहर नात्सियों के यातना-शिविरों में भी क्रूर हत्याएँ हुई, जो एक संवेदनशील मन की कल्पना से परे हैं।

लेखक के अनुसार युद्धपूर्व जर्मनी में जो कुछ हो रहा था, उसके बीज हमारे समाज में भी है। वे बताते है - "युद्ध पूर्व जर्मनी केवल एक मिसाल है। फासिज़्म के बीज हर समाज में होते हैं। स्वतंत्रता की लडाई गुमराह होकर बर्बर हत्याओं और नरमेध की और चली जाती है। तानाशाह, डिक्टेटर स्वतंत्रता की रक्षा केलिए बनाए गए कानून को वध के कानून में परिणत करते हैं। वे पहले इन्सान के मन में स्वप्न बोते हैं, फिर घृणा और स्वप्न में गिरफ्तार राष्ट्र आत्महत्या करता हैं।"[1]

आज संसार-भर दिन-ब-दिन बढनेवाले आतंक और अत्याचार को देखने से लेखक की राय बहुत सही लगती है। दुनिया आज किसी स्वेच्छाचारी शासक के चंगुल में फँस गया है। वे अन्याय करते हैं, संसार-भर के लोग इसके शिकार बन जाते हैं। युगों से समाज में यह परंपरा चल रही है।

1. अपोलो का रथ - श्रीकांत वर्मा - पृ. 14

एक राष्ट्र से उसकी नियति इस तरह छीनने में और वहाँ की जनता को अँधेरे में धकेलने में वहाँ के राजनीतिज्ञों का बडा हाथ है। आतंक और अत्याचार पर विचार करने पर श्रीकाँत वर्मा को लगता हैं कि राजनैतिक पार्टियों की दायित्वहीनता सभी अन्यायों का मूल कारण है। स्वाभाविक रूप से सभी के मन में एक सवाल आएँगे - जर्मनी में इतनी नरहत्याएँ होते वक्त यहाँ के राजनितिज्ञ क्या कर रहे थे। गोली से उडाए जाने के पहले इटली के छात्र कोमो उलोवी ने लिखा - यह सब इसलिए हुआ कि तुम लोगों ने अपनी आँखें बन्द कर रखी थी।

राजनीतिज्ञों की अकर्मण्यता और नपुंसकता से जनता ऊबी हुई थी। बेरोज़गारी, साँप्रदायिकता और जाति-भेद चरम शिखर पर थे। नाट्यशालाओं और जलसाघरों में शराब और पैसे की साख थी। हिटलर - प्रजातंत्र के रचयिता जोसेफ गोएबेल्स ने जर्मन नगरिकों के मन में यह भ्रांति पैदा की कि एक अवतार हो चुका है। केवल हिटलर ही जर्मन जनता को खोया हुआ गौरव, खोयी हुई समृद्धि, खोया हुआ स्वत्व वापस ला सकता है। "लोकतांत्रिक पार्टियों की अकर्मण्यता और नपुंसकता से ऊबी हुई जनता ने हिटलर को अपना राज्यभार सौंपा, तब से मानव-विरोध का युग शुरू हो गया।"[1]

1933 यानवरी 30 को हिटलर ने जर्मनी का राज्यभार संभाला। तब से जर्मनी की महत्वपूर्ण कृतियाँ फासिज़्म के नाम से

1. अपोलो का रथ - श्रीकांत वर्मा - पृ. 16

जलायी जाने लगी, प्रमुख समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्ध लगाया और राइटर की इमारत जला दी गई। 'जब भी किताबें जलाई जाएँ, कलाकृतियाँ नष्ट की जाएँ, और मूर्तियाँ भंग दी जाएँ, यह समझ लेना चाहिए कि फासिज्म नज़दीक है। हिटलर के राज्याभिषेक के साथ भी यही हुआ।' लेखक बताते है, "इतिहास में ऐसा पहली बार नहीं हुआ था, हज़ारों साल पहले पर्सिपँलिस का पुस्तकालय जलाया गया था। इसी शताब्दी में स्तालिन ने साम्यवाद के नाम पर सैकडों बुद्धिजीवियों और कलाकारों को साइबेरिया की बर्फ के हवाले कर दिया था। लेकिन समस्त तानाशाहों और बर्बरों ने अब तक जो कुछ किया था, वह हिटलर के मुकाबले कुछ नहीं था। जर्मनी की जमता बर्बरों की प्रतीक्षा कर रही थी। बर्बर आ पहूँचे।"[1]

मनुष्य की बर्बरता अपनी सारी सीमाओं का उल्लंखन करते समय केवल मनुष्य का ह्रास न होता है, बल्कि एक देश की संस्कृति नाशोन्मुख हो जाती है। संस्कृति क्षण-भर में किसी एक देश में उग आनेवाली विशेष चीज़ नहीं। संस्कृति का परिणाम कई युगों की देन है। किसी एक देश की संस्कृति का असली पहचान वहाँ की राजधानियों में ही नज़र आते हैं। हिटलर के शासन-काल में जर्मनी में, कला और संस्कृति की राजधानी बर्लिन गोस्टापो के मुख्य कार्यालय में परिणत हो गई। हिटलर-प्रजातंत्र के रचयिता गोएरिंग की अध्यक्षता में हिटलर ने गोस्टोपो की स्थापना की।

1. अपोलो का रथ - श्रीकांत वर्मा - पृ. 16

युद्ध के स्रष्टा का नाम इतिहास के पन्नों में काले अक्षरों में लिखा जाता है। इस तरह वे अमर होते हैं। युद्ध के दौरान तबाह हुआ शहर मलबों के बीच में दब जाता है। 'पुराने बर्लिन में छह युद्ध वर्षों में उतने बम गिरे कि पुराने बर्लिन का केवल नाम ही रह गया है। बर्लिन में युद्धोपरान्त 7 करोड 50 लाख घनमीटर मलबा जमा था।'

युद्ध में 'मित्रराष्ट्रों' की जीत हुई, लेकिन इसमें इतने लोग मेरे गए कि यूरोप में जीत के बाद भी खुशी नहीं मातम था। युद्ध के पहले अकेले बर्लिन के आबादी 40 लाख थी। युद्ध के बाद यह 28 लाख रह गई। बर्लिन के यहूदों की संख्या 1 लाख 60 हज़ार से घटकर 800 हो गई। इनमें 90 हज़ार यहूदी जर्मनी से भग निकले 60 हज़ार यातना शिबिरों में मारे गए। सोवियत सना के कमाँडर ने एक बार बताया, "अपने समूचे जीवन-काल में मैं ने जर्मन सैनिकों जैसे बर्बर पशु नहीं देखे। युद्ध में जर्मनी ढह गया है। मगर इस संहार की तुलना उस संहार से करो जो कि हिटलर ने किया-कल्पनातीत है।"[1]

युद्ध जागीर का ही नहीं, इन्सानियत का भी बँटवारा करता है। युद्ध के बाद बर्लिन चार क्षेत्रों में - सोवियत, ब्रिटिश, अमरिक्की, फ्रांसीसी में विभाजित किया गया। जर्मनी का भी बँटवारा हुआ - पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी। युद्ध के पूर्व बर्लिन की जनता समृद्धि में जी रही थी। समृद्धि से उत्पन्न कला और साहित्य का अध्ययन करना वे पसन्द करते थे। आज पूर्वी बर्लिन और पश्चिमी बर्लिन के बीच का

---

1. अपोलो का रथ - श्रीकांत वर्मा - पृ. 17

अन्तर एक दीवार का ही नही, रहन-सहन, संस्कृति, संपत्ति सब चीज़ों में अन्तर है। अपने प्रिय लेखकों की कृतियों से भी वे वंचित होते हैं। पूर्वी बर्लिन की जनता को अब उन्हें सदियों से प्रिय साहित्य पढने को नहीं मिलता है। वहाँ सबसे अधिक घुटन महसूस करनेवाले लेखक और कलाकार है। रचना की स्वतंत्रता से वे वंचित होते है।

पश्चिमी बर्लिन में लेखक संघ की अध्यक्षा फाँउ डाँ इंगेबोर्त्र ड्रेविज और लेखक संघ के अनेक सदस्य पश्चिमी बर्लिन और पश्चिमी जर्मनी की सरकारों की नितियों के कटु आलोचक है।

पूर्वी बर्लिन की खिडकियाँ बन्द है। दीवार को लाँघना, कांटे के तारों से उलझना, बन्दूकधारी सैनिकों की निगाह से बच निकलना कठिन है। लेखक को यह एक जीता जागता कैदखाना लगता है।

यूरोप्य पुनर्निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक है पश्चिमी बर्लिन। अभी केवल 21 वर्ष पहले बर्लिन मलबे का ढेर था। आज वह वाणिज्य, संस्कृति और कला का केन्द्र है। जर्मनी ने 7 करोड 50 लाख घन मीटर मलबा केवल 27 वर्षों में साफ कर एक नया देश खडा कर दिया। भारत में तेरह सौ वर्षों का मलबा पडा हुआ है।

स्वीडन - एक अलग पहचान

हिटलर ने समूचे यूरोप पर हमला किया। यूरोप की सभ्यता और संस्कृति को रौंदा, मूर्तियाँ तोडी और पुस्तकालयों में आग लगायी। लेकिन स्वीडन को हिटलर ने भी बख्श दिया। यह नहीं कि हिटलर के

मन में सुन्दरता के लिए कोई आदर था। दरअसल स्वीडन हिटलर के संसार से इतना अलग था कि हिटलर की निगाह इस पर नहीं पडी। लेखक कभी भी यह मानने के लिए तैयार नहीं होता कि क्रूर शासक के मन में भी कोमल भावना छिपी रहती है। यदि स्वीडन की भंगिमा पर उनकी नज़र पडी तो वे उसे भी रौंद लेते थे।

श्रीकांत वर्मा के लिए स्वीडन समुद्र के किनारे बैठे हुए एक मछुआरे की तरह लगता है। उन्हें यह यूरोप का हिस्सा न लगता है। इसका कारण यह है कि स्वीडन एक युद्धरहित, द्वन्द्वरहित राष्ट्र है। पिछले सौ वर्षों में यह किसी भी युद्ध में भाग नहीं लिया है। स्वीडन मानवीय सभ्यता का सबसे महत्वपूर्ण यूरोप्य गवाह है। बुद्ध से लेकर गाँधीजी तक सभ्यता के पैगंबरों ने अपनी कल्पना से हिंसा को देश निकाला दिया था। लेकिन स्वीडन को छोड संसार में कोई देश नहीं जिसने कि हिंसा को सचमुच देश निकाला दिया है। बुद्ध और गाँधीजी के अहिंसा की सच्ची तस्वीर वास्तव में स्वीडन में नज़र आती है। स्वीडन के समाचार पत्रों में हत्या और बलात्कार के समाचार के लिए चारों और निगाह दौडानी पडती है। यहाँ फिल्मों में भी हिंसा के दृश्य वर्जित है।

कवि के मत में हिंसा आदमी को हैवान बनानेवाली शक्ति है। यह कभी उसकी ज़रूरत नहीं बन जाती है। स्वीडी सेंसर विभाग का एकमात्र काम हिंसा के दृश्यों पर कैंची चलाना है। हिंसा के दृश्यों की भरमार के कारण यहाँ प्रतिबन्ध लगा देते हैं। बर्बर व्यक्तियों की

निगाहें कभी स्वीडन पर नहीं पडती। केवल संवेदनशील व्यक्तियों की निगाहें स्वीडन की खूबसूरती से चौंधियाँ सकती है। जूलाई ओर अगस्त के महीनों में यहाँ सूर्य आधी रात तक चमकता रहता है। मध्यरात्री का यह सूर्य उस रात भी चमक रहा था, जिस रात हिटलर ने पोलंड, फ्राँस, चेक और आस्त्रेलिया पर हमला किया था। युद्ध की निरर्थकता को सबसे अधिक स्वीडन ने पहचाना और अपने दैनिक जीवन में मनुष्य की स्वतंत्रता को सबसे अधिक स्वीडन ने अभिव्यक्त किया।

युद्ध और यंत्रविधि ने अनेक संस्थाओं को तोडा है। सबसे बडी संस्था धर्म है। एक संस्था के टूटने पर दूसरी संस्था खडी करनी पडती है, ताकि शून्य को भरा जा सके। हिटलर और मुसोलिनी ने फासिज़्म को धर्म के विकल्प के रूप में लादना चाहा। लेखक की राय में धर्म के संहार से उत्पन्न गतिरोध को कोई भी विचारधारा पूरी तरह समाप्त नहीं कर सकी है।

श्रीकान्त वर्मा यात्रा के दौरान लूब्र में पहूँचते है। फ्राँस के प्रसिद्ध सीन नदी के किनारे स्थित संग्रहालय का नाम है लूब्र। 1793 में इसे फ्रांस के राष्ट्रीय संग्रालय में परिणत कर दिया।

लूब्र की गैलरियों में कला के विकास की परंपरा नज़र आती है। श्रीकांतवर्मा के शब्दों में लूब्र एक असाधारण नहीं, भयानक अनुभव है, लूब्र से गुज़रने से बाद आदमी वहीं नहीं रहता, जो कि वह पहले था। फ्राँस के महान कलाकारों और कवियों ने अनेक बार लूब्र

को देखा है। मूर्तिकार जियाँकामेत्ती ने अपनी ज़िन्दगी के बीस वर्ष लूब्र में बिताए।

लूब्र में ग्रीक, रोमन और मिस्री प्रतिमाएँ संगृहीत है। युद्ध, घृणा, बर्बरता, लिप्सा, जुगुप्सा, हिंसा, सौन्दर्य, विद्रूप आदि सब कुछ लूब्र में संगृहीत है। स्पेन के प्रसिद्ध चित्रकार है फ्राँसीस गोया। उनके कई चित्र लूब्र में है। गोया एक कुरूप और बीमार आदमी था। उनके चित्रों में कुरूपता और विद्रूपता की अभिव्यक्ति है। ये विद्रूपता, उनकी विद्रूपता नहीं बल्कि असहिष्णु सम्राटों के शिकार आम जनता की कुरूपता है। निर्मम राजाओं और सुल्तानों की क्रूरता को अपने चित्र में उतारने की केशिश का परिणाम है गोया की तस्वीरें। ड्राक्कुला का निर्मम संसार उन सुल्तानों और राजपुरुषों की निर्ममता का संसार है जो एक क्रूर तटस्थता के साथ नग्न स्त्री की देह को तोडा और मरोडा जाना देखते है। सम्राटों केलिए नग्न शरीर सुन्दरता का विषय है। लेकिन भोक्ता केलिए यह करुणा का विषय मात्र है।

लूब्र की गलियों से गुज़रते वक्त लेखक को ऐसा एहसास हुआ है कि सम्राट और साधारण स्त्री पुरुषों के बीच एक घोषित और अघोषित युद्ध चल रहा है और यह युद्ध सबसे अधिक और सबसे पहले पेरिस की सडकों पर लडा गया।

संग्रहालयों में लोग अक्सर सौन्दर्य और कला को ही परखते है। लूब्र में युद्ध और नरसंहार को कलाकृतियों के रूप में परिणत कर दिया गया। यह देखकर कलाकार की अनूठी क्षमता का सब यशोगान

करते हैं। इसके पीछे जिन-जिन लोगों की दर्दभरी दास्तान होती है। इनको वे अनदेखा या अनसुना करते हैं। लेखक बताते हैं "फ्राँसीसी जनतंत्र की बुनियाद में सैकडों शव है। इनमें से कुछ के चित्र और प्रतिमाएँ लूब्र में संगृहीत है। लेकिन लूब्र की इमारत पर खून के छींटे नहीं। लूब्र ने इतिहास को एक सौन्दर्यचेत्ता की दृष्टि से देखा।"[1]

यात्रा-चक्र

धर्मवीर भारती की यात्राओं का वृत्तान्त है यात्रा चक्र। पाकिस्तान से बंगला देश को छुडानेवाली मुक्तिवाहिनी सेना के सैनिक के रूप में उन्होंने काम किया था। इसके लिए उन्हें बंग्लादेश जाना पडा। इसलिए युद्ध क्षेत्र की कराहट और युद्ध की अमानवीयता से उनका सीधा साक्षात्कार हुआ है। उसकी स्मृतियाँ सदैव उनका पीछा करती है।

धर्मवीर भारती स्वीकारते हैं कि यात्राएँ हमें रोमांच की मज़ेदार चीज़ें देती है। किसी अनजानी भाषा, अनजाने लोग, अपरिचित प्रकृति, परिवेश और तरह तरह के रहन सहन से हम सुपरिचित होते हैं। इनके साथ संबन्ध स्थापित करने के साथ साथ वहाँ के इतिहास से भी हमारा सीधा साक्षात्कार होता है। यात्रा-चक्र की भूमिका में वे बताते हैं, "इन यात्राओं में आप केवल एक भौगोलिक बिन्दु से ही नहीं गुज़रते। पर इतिहास के मोड से भी गुज़रते हैं। इतिहास के एक दौर से आप गुज़र रहे होते हैं और वे सब, उनका देश उनका समाज भी

1. अपोलो का रथ - श्रीकांत वर्मा - पृ. 70-71

इतिहास के एक दौर से गुज़र रहा होता है। यात्राओं में स्थान (भूगोल) के साथ (इतिहास) का भी यह आयाम जुड जाय तो यात्रा का रोमांच और भी सार्थक हो उठता है।"[1]

धर्मवीर भारती को अपनी अनेक यात्राओं में इतिहास के किसी आकस्मिक बिन्दू से गुज़रना पडा था। इसे वे एक विचित्र संयोग ही मानते हैं। जर्मनी का भ्रमण करते वक्त वहाँ बर्लिन दीवार का संकट गहराया हुआ था, मारिशस में उसी समय स्वाधीनता मिली थी और लेबर पार्टी की पहली सरकार बनी थी और भारतवंशी चाचा सर शिवसागर राम गुलाम वहाँ के पहले प्रधानमंत्री बने थे, चीन में गैंग आँफ फोर की तथाकथित 'सांस्कृतिक क्रान्ति' कुछ ही दिन पहले निरस्त की जा चुकी थी, और भारत पर चीनी आक्रमण के 16 साल बाद पहली बार दोनों देशों का अनबोला खत्म हुआ था और भारतीय पत्रकारों का हमारा प्रतिनिधि मण्डल ही इस नये दौर का अग्रदूत बनाया गया था। बंग्लादेश की क्रान्तिकारी आन्दोलन में स्वयं सहभागी रहने और वहाँ की जनता की मुक्ति आन्दोलन में स्वयं भागीदार होने का मौका भारती को प्राप्त हुआ।

भारती युद्ध को एक माहौल मानते हैं, किसी एक मूल्य केलिए युद्ध में शामिल होने में सार्थकता महसूस करते हैं। वे मानते हैं कि युद्ध का एहसास हमें युद्धक्षेत्र से काफी दूर से होने लगते हैं। वे बताते हैं "घटनास्थल से बहुत-बहुत पहले से युद्ध को आप महसूस

1. यात्रा चक्र - धर्मवीर भारती - भूमिका

करने लगते हैं, तमाम चीज़ों में, चेहरों में, आवाज़ों में, यहाँ तक कि रास्तों के सुनसान घुमाओं में, खेतों के सन्नाटों में, टीलों के उभारों और खन्दकों के अँधेरों में। और कितना उलझा होता है यह एहसास।"[1]

युद्ध के प्रति लोगों की अनासक्ति

बंगला के कई गाँवों से होकर वे गुज़रे थे। सभी जगह के लोगों में एक विशेषता उन्हें महसूस हुआ कि लोग युद्ध को अनासक्त भाव से स्वीकारने केलिए तैयार है। भारत और बंगला की सीमा पर स्थित एक भौगोलिक क्षेत्र था, मुक्तिक्षेत्र। यहाँ धूल भरे उदास शरणार्थियों की अनटूटी कतारें है, बीच-बीच में मशीनगनें चलने की आवाज़ भी सुनाई देती थी। पाकिस्तानियों की शेलिंग में इस जगह सौ से ज़्यादा आदमी मारे गये हैं। युद्ध के तनाव से हवा भी बोझिल दिखाई पडी। लेकिन यहाँ जीवन साधारण गति से चल रहा था। औरतें पोखर में साडी निचोड रही है, पास के एक नल पर कुछ वृद्धाएँ पानी भर रही है, दो-चार ग्रामीण लुंगी-बनियान में खडे बतिया रहे हैं। एक बहँगीवाला बहँगी में सब्जी लादे पेड तले सुस्ता रहा है। मरने न मरने की प्रात ये अत्यन्त निरपेक्ष भाव से कह रहे हैं। एक ग्रामीण ने इनसे बताया - सुबह तो बहुत गोला आया था, दो तो इसी पोखर में पडा है। कोई मरा ही नहीं। इधर रोज़ गोला का दागादागी चलता है।

इनका यह अनासक्त और अनमना भाव वास्तव में युद्ध की देन हैं। हर क्षण वे जी रहे हैं, अगला क्षण क्या होगा, जीवन, या मौत

1. यात्रा चक्र - धर्मवीर भारती - पृ. 144

इसकी चिन्ता भी करनी छोड दी है। अपने गाँव के जलाए जाने के कारण वहाँ के कुछ लोग दूसरे गाँव की एक झोंपडी में बसने लगे। वे अपने आँगन में धान फैला हुआ सूख रहा है, एक कोने में कटा हुआ जूट पडा हुआ था। गाँव से भागते हुए वे धान और जूट लाए थे। उनके चेहरे पर निर्विकार भाव छाया हुआ था। केवल खाली-खाली-सा चेहरा, मानो उन्होंने स्वीकार कर लिया है कि जो हो रहा है, वह तो हो ही रहा है।

युद्ध में ज़िन्दगी के अनेक आयाम देखने को मिलते हैं- युद्ध की अमानवीयता के शिकार बने युद्धक्षेत्र में ही जान खोए असंख्य आदमी, सालों बाद भी युद्ध की भीषणता को शारीरिक और मानसिक तौर से भोगनेवाले निरीह आदमी, प्रियजनों के बिछुडन में कराहती जनता और तोपों के गर्जन के बीच में भी अनासक्त भाव से जीवन बितानेवाली मासूम जनता।

युद्ध से ये लोग कुछ भी नहीं प्राप्त कर चुके है। बल्कि युद्ध ने इनसे अपना सब कुछ छीन लिया है।

एक माँ की कराहट

धर्मवीरजी और उनके मित्र बंगाल के एक उजाड सुनसान गाँव पहूँचे। उधर एक झोंपडी राख में परिणत हो गई थी। किसी दूसरी झोंपडी से कोई उसे देखते ही छिप गया। झांककर झोंपडी की ओर देखे ते वे चौंक उठे। एक बुढिया उन्हें देखकर अस्पष्ट आवाज़ में कुछ बता रही थी। वह बहुत डरी हुई हालत में थी।

सुबेद अली उस वृद्धा के पास जाकर बातें करने लगे। कूछ देर बाद वे साधारण सी हो गई। वह बोलने लगी, पर बोलने के बीच बीच में वह चुप होने लगी। धीरे धीरे पता चला कि उसके बूढे पति को सिपाहियों ने मार डाला है, जवान बेटी को माँ-बाप के सामने तीन-चार सिपाहियों ने बेइज़्ज़त कर डाला, खेत पर काम करनेवाला जवान लडका कहीं भाग गया, उसके कोई पता तक नहीं है। किसी ने बताया कि फौज़ में उसने नाम लिखा लिया है।

बेटे के भागने के बाद माँ गाँव गाँव में उसे ढूँढने लगी। पर कोई खबर न मिली। उसने सुबेद अली से पूछा कि क्या कहीं उसने बेटे को देखा है। देखने में वह सुबेद अली जैसे लगते हैं। फिर बुढिया के होंठ काँपने लगे, ज़ोर से वह रोने लगी, 'आमार केऊ नाई अल्ला! आमार केऊ नाई! सुबेद अली उसे दिलासा देने लगा, अपने पर्स से दस रुपये का नोट लेकर उसे दिया। 'माँ, तुम यहाँ नहीं रहो। कम से कम रघुरामपुर चली जाओ। यहाँ तो जंगली जानवर आ सकते हैं। जंगल है बिल्कुल।' बुढिया जड्वत बैठ गई, दस का नोट उसके हाथ से नीचे गिर गया। सूबेद उसके पास बैठकर नोट उसके आँचल में बाँध लिया। सभी यह देखकर निस्तब्ध खडे रहे। किसी के मुँह से एक शब्द भी न निकला। वे उस गाँव से खामोश चले गए। 'अल्ला!आमार केऊ नाई। बाबा! आमार केऊ नाई!' की प्रतिध्वनियाँ उनके कानों में गूँज रही थी।

लेखक का मन ग्लानि और बेबसी से भर गया। वे सोचते हैं कि इतिहास की सबसे जीवन्त, सबसे प्रखर, सबसे गहरी क्रान्ति की समूची ट्रेजडी भाषा के इतने छोटे से शब्दों में व्यक्त हो रही है। युद्ध में बेबश, हताश निरीह जनता केलिए वास्तव में कोई भी नहीं शेष बचा है। न संयुक्त राष्ट्र संघ, न दुनिया की हर समस्या पर बोलनेवाले बडे-बडे बुद्धिजीवि, न मार्क्सवादी सरकारें, न प्रजातंत्री सरकारें, न ईरान, न अरब। सभी का अस्तित्व मिट गया है। युद्ध को टालने में युद्धोपरान्त भीकरता से उत्पन्न मानसिक और शारीरिक समस्याओं से लोगों को बचाने में ये असफल निकले हैं।

ग्राम में एक और तोपों की गर्जन और बमबारी की आवाज़ें सुनाई पडती थी, दूसरी और हताश आदमी की 'आमार केऊ नाई' की दर्दभरी चिल्लाहट गूँज उठती थी। लेखक के मन में ये दर्दभरे प्रेत स्वर की प्रतिध्वनियाँ तोपों की आवाज़ से ज़्यादा ऊँचे स्वर में गूँज रही थी।

अनिद्ध्य सौन्दर्य पर पडी हुई युद्ध की काली छवि

गाँव से छूटते हुए वे एक पोखर के किनारे आए। वहाँ पानी भरनेवाली स्त्री को देखकर लेखक को चालीस पच्चास वर्ष पूर्व 'बंगला देश अंक' में देखे एक चित्र की याद आई। पूर्व बंगाल के अनिन्द्य सौन्दर्य का प्रतीक वह सुन्दर ग्रामवधू घडा लिए पोखर में नहाती है। वही ग्रामीण भोलापन और वही अनुपम सौन्दर्य की झलक पोखरे किनारे में मिली इस युवति में भी मिली। लेकिन इस बार उसके हाथ में घडा नहीं है। आज़ादी का युद्ध ने उस पर अपनी छाप छोड दी है।

उसके हाथ में ग्रेनेड रहने का एक सैनिक डब्बा है, जिसमें तार बाँधकर उसे पानी भरने का बर्तन बना लिया गया है। वह पाकिस्तानी तोपों की गोलाबारी में बेखौफ चली जा रही थी। मुक्ति फौज के लिए पानी भरने केलिए वह पेखर में आई थी। लेखक तुरन्त ही वापस दौडकर उस बुढिया के पास पहूँचने को चाहा, जिससे कहूँ, माँ , तुम अकेली नहीं हो। देखो तुम्हारी बेटी वहाँ है, उसके हाथ में ग्रेनेड का डब्बा है, माँ तुम्हारे 60,000 बेटे हैं। मुजीब की फौज में लड रहे हैं। माँ, रे बोले तुमि अबले !...

सब कुछ सुनने पर माँ फिर उसे फटी फटी आँखों से देखती रहेगी और फिर रो पडेगी -बाब! आमार केऊ नाई !

ग्राम के अनुपम मासूम सौन्दर्य पर भी युद्ध की काली परछाइयाँ छा रही है। ग्रामवधू के हाथ में घडा नही, जो एक ज़माने में गाँव के मासूमियत का भी प्रतीक था, गाँव का सुन्दर नज़ारा था। बदले इसके ग्रेनेड भरने के सैनिक डिब्बों में पानी भरने केलिए युद्ध ने उसे विवश बना दिया है।

गाँव में उगनेवाले हरे बाँस से बांसुरी बनाते थे। इस बाँसुरी की सुन्दर सुरीली आवाज़ में सब अपने आपको भूल जाते थे। गाँव के किसान भी दिन-भर की मेहनत भुलाने केलिए नदी के किनारे बैठ कर बाँस की बाँसुरी बजाते थे। इसके नशे में हिन्दु-मुसलमान के फर्क का एहसास भी उसे न होता था।

यह बाँसुरी कृष्ण की सहेली थी। इसकी सुरीली आवाज़ में सारे बृन्दावनवासी मुग्ध हो जाते थे। चारों और के वातावरण बाँसुरी के मधुर गुंजार में आत्मीय और संगीतमय हो जाते थे।

बंगला के किसान वहाँ के खेतों में उग आनेवाले बांस से बांसुरी नहीं बनाते हैं, बल्कि वे इसके सहारे भयानक चुनौती का सामना करते हैं। किसान मूलतः योद्धा नहीं, गाँव का साधारण आदमी हैं। 'अपनी धरती, अपने खेत, अपने हल-बैल, अपनी फसलों, अपने घर -बार और अपनी वनस्पति से जुडे बिल्कुल साधारण आदमी। सेबरजटों के मुकाबले में उनके पास न रडार है, न एण्डी एयर क्राफ्ट गन। मज़बूरी में उसे सैबरजेट के मुकाबले में बाँसों का इस्तेमाल करना पडा हैं। "जब गाँव जलाए जाते हैं, गोलियाँ बरसाई जाती है, और लुटे सदन तजकर वन की ओर जानेवाली औरतों पर विदेशी सैनिक बलात्कार करते हैं, और दुनिया के तमाम नपुंसक प्रजातंत्रवादी और मार्क्सवादी पाखण्डी खामोश खडे रहते हैं, तब इन ग्रामीण क्रान्तिकारियों के सहारे के लिए इस हरे भरे बाँस के अलावा कुछ भी नहीं है।"

लेखक स्वीकारते हैं कि अगर इन्होंने युद्ध का बानक न धारण किया होता तो, इसी बाँस को काटकर ये अपनी झोंपडी की दीवारें और छप्पर का ठाठ बना रहे होते, कपडे टाँगने की अलगनी

1. यात्रा चक्र - धर्मवीर भारती - पृ. 155, 159

बना रहे होते, अनाज रखने केलिए टोकरियाँ और कुठले बना रहे होते, आने जाने केलिए नालों पर टिकाकर बाँसों के पुल बना रहे होते।

मानव के सौन्दर्य बोध को धधकती क्रान्ति-चेतना में बदलनेवाली मन की रहस्यमयी प्रक्रिया पर लेखक आश्चर्यचकित होते हैं। इस शक्ति की सही पहचान वे नहीं कर पाते हैं।

यह सचमुच अपने अस्तित्व को बनाए रखने का प्रयास हैं, अन्याय के खिलाफ लडने की, खोए हुए मूल्यों को वापस पाने की अन्तर्प्रेरणा ही उनकी शक्ति का निदान है।

युद्ध : एक विकसित टेकनिक

लेखक युद्ध को एक भावना, एक उत्साह, और एक माहौल मानता हैं, लेकिन इसके साथ ही साथ युद्ध एक विकसित टेकनिक भी है, जिस केलिए काफी प्रशिक्षण की ज़रूरत है।

शुरु में प्रशिक्षण के अभाव में अनेक फौजी बहादुर उत्साही छात्र मारे गए थे। पाकिस्तानी सैनिकों को देखते ही छात्र सैनिकों का खून खौल उठता था और जय बंगला का उद्घोष करते हुए ये गोली चलाते थे। लेकिन उनके बाहर आने से प्रशिक्षित पाकिस्तानियों ने उन्हें गोलियों से भून डाल देते थे। कई बार ऐसी ट्राजडी हुई, इसलिए दो-तीन महीने का प्रशिक्षण ज़रूरी हो गया है। कैंपों ओर शस्त्रों की कमी के कारण वे पहले के मुकाबले में कम संख्या में मुक्ति सैनिकों को प्रति माह तैयार कर पाते हैं। निहत्थे बंगलावासियों पर पाकिस्तानी हवाई

जहाज़ों ने मशीनगनों से गोलियाँ बरसाई है। मुक्तिवाहिनी के पास एक भी एंटी एयरक्राफ्ट गन नहीं था, फिर भी असाधारण शौर्य के दो-एक विमान गिराया।

पाकिस्तानियों के पास दुनिया के सबसे खतरनाक और मारक हथियार हैं। सारी दुनिया पाकिस्तानियों को हथियार दे रही है। लेकिन बंगलावासियों को कोई हथियार न देते हैं। बंगलावासी मानते हैं कि बदले इसके अल्लाह ने उन्हें कीचड दे दिया है। धर्मवीरजी को खेतों की मेडों और झाठ-झरवाड के बीच में से जाकर युद्ध करना पडा। 'कीचड बेहद था, हर नए मोड पर हम रह-रहकर मशीनगनों या राइफिलों के छूटने की आवाज़ आती थी। रास्ते में कई हाथ गहरी काल कीचड भरी हुई थी। यह कीचड खतरनाक है। पठान हो या बलूची, पंजाबी खान सिपाही हो इस कीचड से सबका प्राण काँपता है।

मूल्यों की लडाई

बंगला के स्वातंत्र्य योद्धाओं का चरित्र और इनका लक्ष्य बर्बर पाकितानी सैनिकों से बुनियादी तौर पर अलग हैं, इसलिए अपनी सारी उत्तेजना के बावजूद ये मर्यादाएँ नहीं तोडते। गणविहिनी रेजीमेंट के 18-19 बरसे के एक लडके की कथा इसका उदाहरण हैं। उनके कार्य से प्रभावित वहाँ के उच्च अफ्सर ने भी उनके सामने खडे होकर उसे सैल्यूट किया।

इस लडके के फायरिंग रेंज में दो पाकिस्तानी सैनिक पेट्रोलिंग कर रहे थे। उसने गोली चलाई , एक पर गोली लगी और वह

गिर पडा ओर दूसरा भागा। भागे हुए सिपाही ने पुनः लौटकर आए तो लडके ने उसपर गोली चलाने के लिए निशाना बाँधा। लेकिन लौटते हुए सिपाही मृत सैनिक को कन्धे पर लाद रहा था। उस वक्त सैनिक लडके को लगा कि वह तो सिर्फ अपने दोस्त का दोस्त है, दुश्मन नहीं। इसलिए उसने गोली नहीं चलाई। सैनिक से ये सारी कहानियाँ सुनने पर बडे अफ्सर ने उसे सैल्यूट कर दिया।

बडा आदमी घृणा भी बडे दिल से करता है, वह किसी से डरता नहीं। लेकिन छोटे आदमी अपनी जान से डरते हैं, इसलिए अमानुषिक क्रूरताएँ करते हैं। बंगला लोगों की लडाई मूल्यों की लडाई हैं, बहादूर, सच्चे, निडर लोगों के मूल्यों की लडाई। बंगला सेना के एक अफ्सर मानते हैं कि यदि इन मूल्यों पर वे अडिग रहे तो वे क्रूर से क्रूर, आमानुषिक से अमानुषिक दुश्मन को भी हरा सकते हैं।

घृणा की सात्विकता

बंगला योद्धाओं के मनोबल को तोडने केलिए पाकिस्तानी सेनाओं ने जो अमानुषिक काम किए, इसकी कल्पना करना भी हमारेलिए मुश्किल है। एक क्षेत्र से बंगला की सेनाओं को हटाने की कोशिश में पाकिस्तानी योद्धाओं ने महीनों से कत्लेआम, गोलाबारी, आगजनी, नापाम बम, सभी का प्रयोग किया। एक कस्बे से पच्चीस, तीस बंगाली औरतों को पकडा गया। उनके कपडे उतारे गए और उन्हें आगे करते पीछे संगीनें ताने बढते चला गया। यह देखकर बंगला के छात्र-सैनिकों का खून खौल उठा। अगर वे गोली चलाते तो, अभागे औरतों को ये

बर्बर सैनिक मारेगा। यह सोचकर वे निस्तब्ध खडे रहे तो, उनकी आँखों के सामने उन अभागी औरतों को बेइज़्ज़त करना शुरु किया। अधिक देर तक बंगला सैनिक यह बीभत्स दृश्य सहन न कर सका। पागलों की तरह वे पाकिस्तानियों पर टूट पडे। इस घटना के पश्चात्त इनके मन में पाक् सैनिकों से घोर विरोध, प्रतिशोध और घृणा का भाव उबल उठा। इंडिया के जनरल से उनका निवेदन है कि "अगर इंडिया पाकिस्तान का जंग हो तो, उन्हें लाहौर पर मोर्चा संभालने की इज़ाज़त देनी है। ढाका का बदला हमें लाहौर में लेना है, नहीं तो हमें चैन नहीं मिलते। हम खान लोग को बताना चाहते हैं कि उसकी छाती पर टैंक चलाके उसका घर-बार बंबार्ड करते कैसा लगता है। हम लाहौर को मैप से मिटा देंगे। लाहौर का चिन्गारी भी रखेंगे नहीं।"[1]

भयानक अन्याय से उबलकर अन्यायी से चरम, अपने अन्तर्तम से घृणा करनेवाले उस बंगला युवा सैनिक से लेखक के मन में एक अनूठी संपृक्तता महसूस हुई। "मैं जैसे चरम प्यार के प्रति सर झुकाता आया हूँ, वैसे ही कहीं इस प्रकार की परम घृणा को भी उतना ही गहरा आदर देता रहा हूँ। अगर इस सात्विक घृणा की अदम्य शक्ति पर मुझे आस्था न होती तो शायद मैं अश्वत्थामा को इस प्रकार कृष्ण के सामने सर उठाकर स्थापित न कर पाता।"[2]

धर्मवीर भारती ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'अन्धायुग' में अश्वत्थामा की जो परिकल्पना की, वह घृणा और प्रतिशोध का नया आन्दाज़ देती

1. यात्रा चक्र - धर्मवीर भारती - पृ. 150
2. वहीं - पृ. 151

है। पांडवों के अन्याय से प्रतिशोध लेने केलिए उसने रात के सन्नाटे में उनके शिबिर पर घोर अत्याचार किया। वह पापी नहीं था, अन्यायी नहीं था, एक मासूम ब्राह्मण युवक था, किन्तु युद्ध की नृशंसता ने उसे क्रूर, अमानवीय और अन्यायी बना दिया। उनका युद्ध घृणा का है, बदले का भी।

इस घोर घृणा और प्रतिशोध का अलग चेहरा है, हवलदार पटवारी। रघुरामपुर नामक गाँव में पहूँचने पर धर्मवीर भारती समझते हैं कि वहाँ हवलदार पटवारी ही सबकी चर्चा के केन्द्र में है। क्यों कि अभी तक उन्होंने अकेला 200 से ज़्यादा पाकिस्तानियों को मारा है।

लेखक के मन में उस साहसी योद्धा को देखने की उत्सुकता हुई। वह भयानक योद्धा का रूप कैसा होगा? यह विचार मन में उमड पडा। गोरे रंग का, सौम्य-सा और लजाई मुस्कानवाले एक बहुत छोटी उम्र के बालक को देखकर वे सहम गए। यही हवलदार पटवारी है। इसने दो सौ से ज़्यादा पाकिस्तानी सिपाहियों को मार डाले हैं। धीरे-धीरे उनकी प्रतिशोध भरी कहानी के पन्ने पलट गए।

किशोर हवलदार पटवारी ई.पी.आर में था। विद्रोह हुआ, मुक्तियुद्ध हुआ। चारों ओर से टिक्का खाँ के भयानक अत्याचार की खबरें आनी शुरु हुई। वह लडता था, पर उसका मन अपने गाँव की ओर लगा था। वह छुट्टी लेकर गाँव गया। गाँव जल चुका था। खेतों में गाँव की औरतों की क्षत-विक्षत लाशें पडी थीं। घरवालों का कहीं पता नहीं था। गाँव के सिवान पर तीन-चार कटे सर टाँककर वे (पाक्

सैनिक) चले गए थे। उसने पहचाना। दो हिन्दू पडोसी थे एक उसका बुजुर्ग चाचा। गाँव से लौटा हवलदार एकदम बदल गए, एक पाकिस्तानी सिपाही की खोंपडी लाकर उसने बाँस पर टाँग दिया। उसकी राइफल वज्र सा हो गई। दुश्मन को देखकर वह उसे ज़िन्दा न छोडता था। अपनी जान को खतरे में डालकर भी वह शत्रू पर टूटता था। उसके दुस्साहस के लिए कई बार कैप्टन ने उसे स्नेह-भरी चेतावनियाँ दी। लेकिन रणक्षेत्र में नरमुण्डों से खेलने का नशा उसे पागल बना देता था। अपने प्यारे गाँव की स्मृतियाँ उसके मन में हमेशा छायी रहती थी।

इतने तनाव-भरे वातावरण में भी ममता-भरे कुछ ग्राम दृश्य लेखक के मन को दिलासा दे रहे थे। नंगे बदन पोखर की ओर नहाते जानेवाला एक नाटा साँवला सा युवक एक कबरी छोटी सी गाय को कुछ खिला रहे थे। वे कैप्टन थे और उनका परिवार पाकिस्तान के अधिकृत-क्षेत्र में छूट गया था। अतः उन्होंने अपना नाम और चित्र देना मना किया। बाद में मालुम हुआ कि वह गाय युद्ध के दौरान उस क्षेत्र से भागे किसी परिवार की थी। अब वह मुक्ति सैनिकों की दुलारी हो गई है।

खौफ से भरा मन

युद्ध से क्षत विक्षत गाँव के सन्नाटे की याद में वर्षों बाद भी लेखक का मन खौफ से भर जाता है। गाँव का भयानक नज़ारा उसके सामने हैं- 'उस गाँव में औरतों की चूडियों की खनक न थी, न थी मर्दों की बातचीत, न बच्चों का कोलाहल, गायों का रंभाना, कुत्तों का

भोंकना भी न था। लगता था किसी को वहाँ ज़िन्दा न छोडा है। आदमी का, पशु-पक्षियों का नाम-निशान मिटा दिया गया है। झोंपडे के दरवाज़े देखकर उन्हें लगता है कि लाशों की आँखों के समान ये खुले है।' बाँस के सिरे पर लटकी एक खोंपडी को उन्होंने देखा था। वहाँ एक झोंपडी के अन्दर एक कतार में दस बारह मुर्दा शरीर पडे हुए थे।

गाँव में कहीं लाशों के ढेर दिखाई देते थे, ज़्यादा दिनों तक लाशें पडकर सडी जाती थी, इससे पूरे कस्बे में दुर्गन्ध भर जाती था, मारने के पहले लोगों के पेट चीरकर पानी भरता था, ताकि लाश तैरे नहीं। गड्ढे खोदने के बजाय चारों ओर ट्रकों पर लाद-लाद कर उनपर मिट्टी थोपी दी जाती थी। बदबू से बंकरों में पाकिस्तानियों का बैठना मुश्किल हो गया था। हत्याओं का भयावनापन चारों माहौल में छाया हुआ था।

युद्धक्षेत्र में खोंपडी लिए बालक को देखकर लेखक और उनके सहसैनिक चौंके। बालक से वे खोंपडी बाहर फेंकने को कहता है तो वह ऐसा करता है। बालक को लेखक के मित्र मनुभाई एक रुपया देता है, वह खुशी से भागता है। लेकिन अगले ही मोड पर ओर तीन बच्चे हड्डियाँ और खोंपडी लिए खडे होते हैं। यह दृश्य देखकर इन लोगों के खून सर्द हो गए।

युद्ध से तबाह गाँव में गुडियों के अभाव में उसी के स्थान पर छोटे बच्चे खोंपडी से खेलते है। खोंपडी को फेंकने पर पैसा मिल जाएगा, ऐसे विचार से दूसरे बच्चे भी खोंपडी हाथ में लेकर आ रहे हैं।

इनके मन में भय नहीं। खोंपडी को वे एक डरावनी चीज़ नहीं समझते हैं। भूख से तडपनेवाले ये ब्चच्चे पैसे पाकर पेट भरना चाहते हैं।

आतंक-भरे इलाकों से गुज़रते वक्त लेखक को लगता है कि वहाँ की प्रकृति में भी युद्ध की डरावनी छाया झलकती है। सूर्यास्त का नज़ारा वे प्रस्तुत करते हैं - 'बीच में बाँस का एक सूरज अटक गया था। सिन्दूरी नहीं, गडे खून के रंग का। इतना खौफनाक सूर्यास्त मैं ने अपनी जिन्दगी में कभी नहीं देखा था। पाक् सैनिकों द्वारा बंगला में किए गए अत्याचार नात्सियों केलिए भी अकल्पनीय था।

ढाका के चौदह बाज़ार जलाकर ये खाक कर दिए गए। वे घोषित करते थे कि उन्होंने ढाका के आधे लोगों को भून डाला हैं, जो बाकी बचे हैं, उन्हें भूख से तडपा-तडपाकर मारेंगे। फौजी ट्रकें कतार बाँधकर गलियों की और निकलकर वहाँ के लोगों को गिरफ्तार कर ट्रकों में लाद लेते थे। इसके बाद उनके हाथों में रस्सियाँ दे कर एक दूसरे के पाँव को बाँधने की आज्ञा देते थे। फिर मूँह में कपडा ठूँसकर चलती ट्रकों पर ही संगीनें भोंककर उन्हें मार डालती थी। गंगा नदी के किनारे आकर इन लाशों को पानी में लुढका दिया जाता था।

बंगला के गाँवों का स्वच्छ वातावरण भी युद्ध से एकदम बदल गया था, भैंसगाडी पर यहाँ खेत की फसल नहीं, बल्कि युद्ध-सामग्रियाँ लदी हुई है। गाँव में पेडों के नीचे युद्ध का क्लास चलता था।

किसी एक मूल्य केलिए युद्ध और शहादत में शामिल होने और उसका साक्षी बनने में लेखक बडी सार्थकता महसूस करते हैं।

एयरकंडीशन भरे कमरों में बैठकर शान्ति केलिए आवाज़ उठानेवालों से वे नफरत करते हैं।

वे मानते हैं कि क्रान्ति ने बंगला के लेखक, बुद्धिजीवि, छात्र सभी को ज़्यादा बदले हैं। बिना इसका परामर्श करके अर्थशास्त्र, संस्कृति, भाषा की बातों को समझना और समझाना कठिन हो गया है। बडे-बडे लच्छेदार किताबी शब्दों से बौद्धिक रोआब हाँकने से युद्ध की समाप्ति नहीं हो सकती, क्रान्ति नहीं संभव होती। आवाम की अपनी रोज़मर्या ज़िन्दगी से एकात्म कायम कर जीवन के महानतम मूल्यों को सहजतम शब्दों और प्रतीकों में पेश करने से यह संभव होती है। इसके लिए ज़रूरी है, अपने देश, अपने लोग, अपने परिवेश, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति में बहुत गहरी जडें, अपने इर्द-गिर्द व्याप्त संकट को आँखों में आँखों डालकर देखने का ईमानदार साहस।

बंगलावासी मानते है कि साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा हमारे धन छीनने से, राईफल छीनने से, और हमारे जूट छीनने से हमें कोई हानि नहीं होगी, क्योंकि सबसे बडे हथियार संस्कृति हमारे पास है, जो सारी दौलत, सेना, कूटनीति के होने पर भी हिटलर, चंगेज़ और यहिया के पास न होता था।

जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं

नासिरा शर्मा फारसी, हिन्दी, उर्दु, अंग्रेज़ी भाषाओं की माहिर हैं। ईरान, इराक, अफ्गानिस्तान, पाकिस्तान और भारत के युद्धरत काल में उन्होंने लेखन तथा स्वतंत्र पत्रकारिता की है। शहादत, हादसा, युद्ध के ज़रिए मरनेवाले मित्रों की आत्मा ने उन्हें लिखने के लिए हमेशा प्रेरणा दिए। उनके यात्रा-संस्मरण 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं', में संगृहीत है।

ईरान के अलावा जापान, पारिस, लंदन, नेपाल, अफ्गानिस्तान, पाकिस्तान आदि कई देशों में भी सुरक्षा और शान्ति एक सपना बन गये हैं। एक राष्ट्र की क्रान्ति विश्व के सभी राष्ट्रों को सामाजिक, धार्मिक और वैचारिक स्तर पर प्रभावित करती है।

यह सारी रिपोर्ताज़ 1976 और 2003 के अन्तराल के बीच में लिखी हुई हैं। नासिरा जी के ही श्ब्दों में कहे तो आतंक और अंकुश इसकी भाषाशैली का नया मुहावरा गढ रहे हैं। घटनाएँ इतिहास बनकर अपनी रिपोर्टिंग खुद लिख रही है।

अपनी पहली यात्रा में इरान पहूँची नासिरा शर्मा को ऐसा एहसास हुआ कि अपने देश का दरवाज़ा खोलकर उन्होंने अपने घर के दूसरे आँगन में कदम रखा है। वहाँ के नाटक, फिल्में, संगीत, साहित्य सब देखकर वे इस नतीजे पर पहूँचे कि भारतीयों ओर ईरानियों की बनावट में कोई अन्तर नहीं है। दोनों देशों की भाषाओं में फर्क केवल इतना है कि संस्कृत और फारसी सगी बहनें है। इरान पहूँचने के पहले लेखिका के मन में उसका वजूद विश्व नक्शे पर केवल एक राष्ट्र के

रूप में था, दो माह बीस दिन रहने के बाद यह महसूस हुआ कि, 'यदि मैं इरान न देखती तो कोमलता का यह रूप मुझसे अनदेखा छूट जाता, जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य है, लोगों का निश्चल प्रेम एवं तारीख, साहित्य का एक साँझा सेतु जिस पर जाने कब से आना जाना ज़ारी है, फर्क सिर्फ इतना है कि इस बार की यात्रा में, मैं शामिल थी।'

दूसरी यात्रा में इरान के हवाई अड्डे से निकलते ही उसे महसूस हुआ कि ईरान बहुत बदल गया है। सडक पर खुले आम राजनैतिक बातें हो रही थी। पहले शाह का फुसफुसा लेने का हौसला किसी को नहीं था। दफ्तरों के बाहर हडतालियों को खडे देखकर किसी ने बताया "भूख और ज़रूरत सब करवाती है, मरना ऐसे भी है, और रोज़-रोज़ घुटते-पिसते व्यर्थ-सा तनाव झेलते हुए भी.... महँगाई है, बेकारी है.....और रुपए हाथ में हैं तो, बाज़ार से चीज़ें गायब। यह इंकिलाब सरमायदारी के खिलाफ उन नंगे भूखे किसानों-मज़दूरों का है,जो जोतने केलिए ज़मीन नहीं रखते, जिनके पास खाने को रोटी और रखने को छत नहीं।"[1]

नासिराशर्मा को इनकी बातें सुनकर बडा अचरज हुआ। क्योंकि ईरान में तेल के कुएँ हैं, इससे देश को ज़्यादा संपत्ति मिलती है। देश में सब कहीं गगनचुंबी इमारतें, जेवरात की दूकानें, होटल, कारें, हर चार दूकानों के बाद एक बैंक आदि नज़र आते हैं। वहाँ गरीब्री, बेकारी आदि का अस्तित्व न बचना है। लेकिन अगले ही मोड

1. जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं - नासिरा शर्मा - पृ. 27

पर जब दुबारा सडक पर पहूँची तो उसने देखा कि सिनेमा की भव्य इमारतें जली पडी हैं, बैंकों के शीशे टूटे हुए हैं और फर्नीचर कोयला-सा हुआ बाहर बिखरा पडा है। न रेस्तरां में भीड नज़र आती हैं, न बदमाते संगीत की स्वरलहरी और न सेंट महकते मेक-अप पुते चेहरे ही! तेहरान शहर के ऊपर हेलिकाप्टर ने तेज़ी से चक्कर लगाना शुरु किया। भीड नारे लगाती जमा होने लगी और थोडी देर बाद कई जवान, कटे पेड की तरह ज़मीन पर ढह गए।

सडकों के किनारे टैंकें तैनात हे। सामने गोली, सिपाही और मौत के भयानक नज़ारे हैं, लेकिन तेहरान में अंधेरे में भी दूकानें खुली गई हैं। क्योंकि इन लोगों के मन में भय जैसी चीज़ नहीं हैं। युद्ध को वे मामूली घटना समझते हैं, जिसके प्रति उनके मन में घोर नफरत की भावना है।

विश्व को ईरान ने दर्शन, सूफीवाद जैसी अनोखी चीज़ें दी है। फिर भी अपने अमेरिका प्रवास के समय एक इराकी युवक ने वहाँ के दीवारों में लिखा देखा था 'तुम तेल रखते हो, हम दिमाग।' युद्ध ने ईरान के बेहतरीन दिमागों को कब्र में सुलाया या जेल में भेजा। जो यहाँ बाकी है, वे तो कलम तोडकर, ज़बान बन्द किए जिल्लत की ज़िन्दगी बिता रहे हैं। पुरातत्व विभाग में काम करनेवाले ईरान के एक पुराने कवि से नासिराजी की मुलाकात हुई। शासन केन्द्र से उन्हें आज्ञा मिली है कि इतिहास पर किताबें छापो, केवल उस हद तक जिसमें हमारे पूर्वजो के आज तक के शासनकाल के गुणगान हो। इस प्रकार

यहाँ के कविगण सासानी 'हाकामंशी' काल की मूर्तियाँ बनकर रह गए है। इनके हर विचार, हर शोधकार्य, हर खोज को कहीं न कहीं दबाए गए हैं, शासन केन्द्र को शाहजी की तारीफ भरी बातें मात्र चाहिए। प्राचीनकाल के समान यहाँ दरबारी कवियाँ खूब तनख्वाह पाते हैं।

लडकों और बच्चों के मन में शाहजी के प्रशासन और उनके अमानवीय नीतियों पर तीखी घृणा है। यहाँ की स्त्रियाँ शाहजी को गालियाँ देती है, ज़ंज़ीरी कुत्ते! बता मेरे पाँच लाडलों को मार कर तुझे क्या मिला? छोटे बच्चे भी दार्शनिक अन्दाज़-भरी बातें करते हैं, जैसी 'मौत कितनी अर्थहीन-सी हो गई है?'

पुलिस ने ईरानियों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन को इतना कसा कि जनता के तडपने के बावजूद उसकी आवाज़ शाह के महल तक नहीं पहूँच पाती थी। आतंक का बुरा असर निकला कि एक नगरवासी दूसरे की सहायता करने से स्वयं अपने प्राण की बाज़ी लगा लेता था।

ईरान में जबान खोलने का मतलब था - 'अपनी गर्दन कटवाना।' शाह की हैवानियत के खिलाफ आवाज़ उठाने से यहाँ एक दर्दनाक घटना हुई। जुलूस में भाग लेनेवाले दो लडके जख्मी हुए। किसी तरह छिपकर वे पास के एक क्लिनिक में पहूँचे। पुलिस ने भी उनका पीछा किया। डाक्टर ने बताया किस्सा खत्म कीजिए, लडके हैं, फिर उनका मैं ने इलाज किया है, यह मेरा क्लिनिक है। क्रोध के मारे

पुलिसवालों ने दोनों लडकों के साथ डाक्टर और उनके दोनों बच्चों को भी मार डाला।

युद्ध के कारण ईरान के अधिकाँश युवा बेकार हो गए हैं। नौकरियाँ सिमटकर एक वर्ग के कब्जे में पहूँच गई हैं। एक आदमी चार-पाँच स्थानों में आराम से नौकरी करता है। इसकेलिए तनख्वाह भी वह हर जगह से लेता है। बेकारी का दूसरा दुख है, ईरान में विदेशियों को नौकरी देना। इंजीनीयर, डाक्टर अन्य बडी जगहों पर विदेशियों का नाम देखने को मिलता है। इसी कारण इस पहले वर्ग और ताजिरों के मकान जायदाद आदि विदेशों में हैं।

यहाँ विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा 'कंकूर' इतनी कठिन कर दी गई है कि अधिकतर लडके बहुत चाहने पर भी आगे पढ नहीं पाते हैं। वे या दूकान लगा लेते हैं या फिर नौकरी ढूँढते हैं। पैसेवाले विदेशों की ओर निकल जाते हैं, ये धीरे धीरे अपनी ज़िन्दगी से थक जाते हैं या ब्लू फिल्में देखकर गैंग की स्थापना कर लेते हैं। इनके भविष्य का रास्ता इस तरह हमेशा के लिए बन्द रह जाता है। शाह की बुरी नीतियों से परेशान इराकी आम आदमी का कहना हैं - हमारी ज़रूरतें केवल एक वर्ग की नहीं हैं। हममें से हर ईरानी को घर चाहिए, रोटी चाहिए, हमें क्या मिला हैं.... केवल नक़ल और नक़ल। हमें 'हम नहीं रहने दिया है। यह सूखे खेत, शाह को सत्रह सूत्री कार्यक्रम को रोना नहीं हैं। हमारी धर्ती विदेशियों के हाथों बिकी हैं और हम विदेश में उपजे गेहूँ की रोटी से अपनी भूख मिटाते हैं।.... क्योंकि हमें पट्रोल

से कमाए धन को उसी देश में खर्च करना है। पूरा बाज़ार घूम लो पर इरान की बनी कोई चीज़ न मिलती। हम अपने खनिज-धन से अपने ही अर्थशास्त्र को बेच रहे हैं!'

युद्ध के अनेक शक्ल होते हैं। इससे सामाजिक, साँस्कृतिक, बौद्धिक, शैक्षणिक सभी स्तर पर एक देश की जनता साम्राज़्यवादी ताकतों के अधीन हो जाते हैं। दूसरे देश के 'बौद्धिक गुलाम' बन जाने से आदमी का व्यक्तित्व एकदम खराब हो जाते हैं। हथियार उठाकर एक देश में खून डालने से व्यक्ति का भौतिक नाश ही होता हैं, किन्तु इसके उपरान्त वे इस तरह की अनसुलझी समस्याओं के बीच से गुज़रते रहते हैं।

एक देश का भविष्य वहाँ की युवाओं और बच्चों के हाथ में है। बौद्धिक, शैक्षिक धरातल पर उनका शोषण करने से इन लोगों के साथ देश के भविष्य भी को भी अंधेरे की ओर धकेल दिए जाते है। युद्ध के परिणामस्वरूप उपजी बेकारी की समस्या से बेचैन होकर पैसा कमाने की इच्छा से विदेशों में जानेवाले इन पर शोषण का सिलसिला ज़ारी रह जाते हैं। ज़िन्दगी से ऊब कर कोई नशीली पदार्थों का इस्तेमाल करने लगता हैं, ओर कोई ब्लू फिल्मों का बिसिनस करने लगता हैं। अनैतिक कार्यों की और युवा लोगों का ध्यान खींचे जाते हैं। परिणामस्वरूप हमारा अगला कदम 'एइडस' की रोकथाम करना हो जाता हैं।

"लेखिका महसूस करती हैं कि वह ईरान में ऐसा कोई दिन नहीं गुज़रा है, जब गोलियों की आवाजें, धुएँ के बादल, चीखें, रोना, नारे सुनाई न पडे हो। सडकों पर काले कपडों में घूमती औरतें, कब्रिस्तान में गुस्सालखानों में मुर्दों का ढेर न मिले हैं। वे दिन और भी बुरे थे, जब गुस्सालों ने हडताल कर दी थी। कटे खून में लुथडी लाशें, पेड के लट्ठे की तरह तेहरान का कब्रिस्तान 'बहिश्ते-जहरा' के हमामखाने के सामने बिखरी थीं"[1]

लेखिका ईरान में आए महीनों बीत गई, मगर उसने न कुछ पढा थीसिस न लिखा। हवा में बारूद की गर्मी व खून की नमी समा हुई हैं। शायह यही गर्मी और नमी उसे दुख पहूँचा रही है। अब उसे लगने लगा है कि कहीं तेल के कुएँ की जगह उसमें से खून न निकलने लगे या मिट्टी को मुट्ठी में दबाते ही खून की बूँद न टपक पडे। वातवरण में खून की मौज़ें तडपती हैं।

इरान में चुन चुनकर डाक्टरों, इंजीनियरों, लेखकों, छात्रों की हत्या की जाती थी। कुर्दिस्तान में काम करनेवाले कुछ डाक्टरों व नर्सों से लेखिका की मुलाकात होती है। एक डाक्टर ने बताया मेरे बारह सहकर्मियों को मार डाला गया। वे सब कोमले गुट की थीं, एक की बॉडी डेथ सर्टिफिकट के लिए मेरे पास आई थी। सीने जले और बदन पर सिगरटों के दाग थे। मैं ने सर्टीफिकट दे दिया, फिर कुछ दिनों बाद उसी अस्पताल के काम्पाउंड में एम्बुलन्स की लैट जलाकर दस लोगों को शूट कर दिया गया।

एक अन्य महिला डाक्टर का कहना है, 'कभी कभी इन्हें डेथ सर्टिफिकट की इतनी जल्दी होती है कि कहना पडता है कि अभी बडी गरम हैं.... हो सकता है मुझे इसकी सेवा करनी पडे.... वास्तव में यह इस्लाम के विरुद्ध है। कितनी बार ऐसा होता है कि बीमारों को ले जाते हैं फिर उन्हें इस्लामी कानून सज़ा देता है और हम उनके मृतक शरीर का डेथ सर्टिफिकेट भी लिखते हैं।'

मौत के इस दृश्य से तंग आकर वे यदि स्वदेश लौटना चाहते हैं तो उनसे कहा करता था कि अपनी जगह किसी को करके जाओ। लेकिन इस हालत का सामना करने केलिए वे किसी को बुलाना नहीं चाहते हैं। इसलिए अनमना होकर उन्हें यह काम करना पडता है।

कब्रिस्तान और कैदखाने में परिणत हुआ ईरान

ईरान युद्ध के दौरान वहाँ के देशवासियों को कभी न अन्त होनेवाली यातनाएँ भोगनी पडी। एक विद्यार्थी ने कहा, विश्वविद्यालय बन्द है, काम है नहीं, कुल चालीस लाख ईरान में बेकार हैं, महंगाई है, कोई भविष्य में आर्थिक कार्यक्रम नहीं हैं। ज़बान खोलो तो गर्दन कटती हैं। यहाँ किताबें, समाचारपत्र, पांडुलिपियाँ, सब जलकर खत्म हो गई हैं। जेल में औरतों और मर्दों की लंब्री कतारें नज़र आ रही थी। एक औरत जिसका बारह वर्ष का बेटा अन्दर था, बोली, 'पहले तो मार कर ये कब्रों का नंबर दे देते थे, नाम टी.वी.से बोल देते थे, मगर अब-कुछ पता नहीं हैं कैसे-कैसे जवानों को मारा है। मेरे बेटे का क्या दोष

था? अब कुछ पता नहीं हैं कैसे-कैसे जवानों को मारा है। जेल से आई एक लडकी ने जेल में हुए दर्दनाक अनुभवों के बारे में बताती हैं,' जेल में वही यातनाएँ हैं जो शाह के समय में थी। तारों से पैरों पर मार, बलात्कार, शौच आदि के लिए न जाने देना, बिजली के झटके, नाखून घसीटना, सोने न देना, खाना न देना उल्टा लटकाकार मारना, सीने को इस्त्री से जलाना, सारे बदन पर जलती सिगरट चुभोना, एक-दूसरे के सामने गोली मारना या फाँसी पर लटकाना, आँखें निकालना, कान काटना, बदन का कोई भी अंग उड़ा देना, बहुत देर तक आँखें बन्द रखवाना, फिर धूप में खडा रखना, ज़बान बाहर खींचना, चेहरे बदन पर धूँसे मारना-एकदम से दुःखी होकर बोली-मेरे साथ बहुत कुछ हुआ। पैरों पर कोडों के निशान थे, लंबे बाल इतने उन्होंने खींचे कि मैंने उन्हें काट दिया।

ईरान की खुमैनी अपने भाषण में व्यक्त करते थे कि ईरान में कैदखाना और कैदी नाम की कोई चीज़ का वजूद नहीं रहेगा। मगर पूरा ईरान आज एक कैदखाना है, जिसकी कोठरियों में पीडित जन हाहकार मचाए हुए है। ईरान के हर दफ्तर में नमाज़ का कमरा है, प्रश्न, लेखन, हिसाब सबमें धर्म का हस्ताक्षेप है। मस्जिदों में राशन कार्ड, तेल व अन्य सामानों के कूपन लाईसेंस मिलते हैं।

युद्ध ने ईरान को वीरान कर दिया है। यहाँ के फसल और नस्ल दोनों को तबाह कर दिए हैं। आज यह एक विस्तृत कब्रिस्तान बना हुआ है।

पारिस, युद्धोपरान्त हालत

फ्राँस किसी का अधीन में रहनेवाला देश नहीं, यह आज़ादी का मुल्क है, यह ललित कला ओर साहित्य का केन्द्र है, फिर भी यहाँ की गली गली में कदे आदमी औरतों की नंगी तस्वीरें देखी जा सकती हैं। यहाँ सेक्स की स्वतंत्रता है, प्रेम की भी स्वतंत्रता है।

फ्राँस की सडक पर लडकियों को बडे आराम से रोते गुज़रते देखा जाता है। ये लडकियाँ प्रेमियों सेठु कराई गई होती हैं, जो रोने के व्याज हल्की होकर किसी और का दोस्त बन जाती हैं। यह देखकर हम इस नतीजे पर पहूँच सकते हैं कि जो हमारे गुनाह हैं, वह तो इनकी जीवनशैली हैं। फ्राँस में सेक्स षाप और लाईव प्रोग्राम व ब्लू फिल्म के स्टूडियो है। बाज़ार में हर देश की वेश्याएँ मौजूद थी।

नासिराशर्मा और सहयोगी मित्र ने एक सेक्स षाप में देखा कि वहाँ आदम और हव्वा के समय से चले आ रहे नर-नारी संबन्ध की पुस्तकों का अंबार था। दूकानदार कंपूचियन थे। कंपूचिया में उस समय भूख, खून और बेकारी का ज्वार उमड पडा था। लेखिका ह इस बात पर बहुत अचरज हुआ कि अपनी मातृभूमि में खून का ब हो रहा है, वहाँ की जनता भूख से तडपती हैं। इसी वक्त पारि गली में वह आदमी सेक्स षाप चलाता है। आदमी के लिए यह से आलावा ओर कुछ नहीं हैं, वह कुछ न कुछ कमाकर चाहता है।

पारिस, युद्धोपरान्त हालत

फ्राँस किसी का अधीन में रहनेवाला देश नहीं, यह आज़ादी का मुल्क है, यह ललित कला और साहित्य का केन्द्र है, फिर भी यहाँ की गली गली में कदे आदमी औरतों की नंगी तस्वीरें देखी जा सकती हैं। यहाँ सेक्स की स्वतंत्रता है, प्रेम की भी स्वतंत्रता है।

फ्राँस की सडक पर लडकियों को बडे आराम से रोते गुज़रते देखा जाता है। ये लडकियाँ प्रेमियों सेठु कराई गई होती हैं, जो रोने के व्याज हल्की होकर किसी और का दोस्त बन जाती हैं। यह देखकर हम इस नतीजे पर पहूँच सकते हैं कि जो हमारे गुनाह हैं, वह तो इनकी जीवनशैली हैं। फ्राँस में सेक्स षाप और लाईव प्रोग्राम व ब्लू फिल्म के स्टूडियो है। बाज़ार में हर देश की वेश्याएँ मौजूद थी।

नासिराशर्मा और सहयोगी मित्र ने एक सेक्स षाप में देखा कि वहाँ आदम और हव्वा के समय से चले आ रहे नर-नारी संबन्ध की पुस्तकों का अंबार था। दूकानदार कंपूचियन थे। कंपूचिया में उस समय भूख, खून और बेकारी का ज्वार उमड पडा था। लेखिका को इस बात पर बहुत अचरज हुआ कि अपनी मातृभूमि में खून का बहाव हो रहा है, वहाँ की जनता भूख से तडपती हैं। इसी वक्त पारिस की गली में वह आदमी सेक्स षाप चलाता है। आदमी के लिए यह आजीवनी से आलावा और कुछ नहीं हैं, वह कुछ न कुछ कमाकर पेट भरना चाहता है।

"कंपूचिया के बारे में आपको समाचार मिलते हैं?'

'हाँ, भूख, खून और बेकारी।'

'फिर यह सेक्स शॉप चला कर क्या सिद्ध करना चाहते हैं?'

कुछ भी नहीं, कमा कर पेट भरना चाहते हैं।'

यह सब बेच कर कैसा लगता है?

कुछ भी नहीं, व्यापार तो व्यापार है।"

दूसरे शॉप में नर नारी अंग बेटरी आपरेटड सजे हुए थे, और ब्लू फिल्म देखने की व्यवस्था वहाँ की कैबिनों में थी। सेक्श शॉप के मालिक विदेशी थे। ये विदेशी अपने देश से गरीबी और भूख के दबाव से भाग कर आए थे। गलियों में रात के समय बेशुमार देशी, विदेशी औरतें सजा-धजी, सिगरट पीती खडी थी। इनमें कुछ दीवारों पर टेक लगाए खडी थी, कुछ पार्क की हुई कारों पर बैठ गई थीं।

फ्रॉस एक स्वतंत्र देश हैं, स्वतंत्रता को कद्र करनेवाला देश। बिखरी हुई दिलचस्पियों में से अपनी रुचि के अनुसार किसी को भी चुनने का स्वातंत्र्य सभी नागरिकों को है। फ्रॉस की वर्तमान व्यवस्था, जो द्वितीय महायुद्ध की उपज है, स्त्री को एक उपभोग वस्तु मानती है।

नासिरा शर्मा ने जापान की भी यात्रा की। जापान पहूँचकर ही उसे महसूस हुआ कि वह एक जलती भट्ठी में प्रवेश कर चुकी है।

1. जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं - नासिरा शर्मा - पृ. 265

जहाज़, कार, कमरे सभी ठंडे थे, लेकिन उसे पार करने में गर्मी सहनी पडी थी। हिरोशिमा में रहना उसे बिल्कुल एक ऐतिहासिक अनुभव था। उसे जापान की प्रगति देखकर बडी ताज्जूब हुई, क्यों कि अणुबम ने एक ज़माने में यहाँ सब कुछ मिसमार कर दिया था। अब वही देश प्रगति की ओर बढ रहे हैं।

हिरोशिमा की बमबारी से बच गए एक आदमी से लेखिका की मुलाकात हुई। वह एक स्कूल में प्रिंसिपल था और बमविस्फोट क समय वह 26 बरस का था। हिरोशिमा पर पहला बम छह अगस्त को सवा आठ बजे गिरा था क्योंकि रेलवे स्टेशन की घडी की सूई इसी समय पर टिकी हुई थी। उन्होंने बताया वह अजीब समय था। काली बारिश में लोग दम तोड रहे थे। रेल की पटरी लाशों से भरी थी। समुन्दर की लहरें लाशें ला और ले जा रह थी। कोई किसी को पहचान नहीं पा रहा था। जब दूसरा बम नागसाकी पर गिरा तो जापान के राजा को समर्पण करना पडा।

हिरोशिमा में पहूँची लेखिका के मन में स्वदेश के संबन्ध में थोडी सी ग्लानि महसूस होती है। वे बताती हैं, 'स्वतंत्रता संग्राम के बाद हमने विकास की कई मंज़िलें तय कीं मगर वह चुनौती हम विश्व स्तर पर न दे सके जो जापान जैसे छोटे देश ने अमेरिका को बाज़ार से खारिज करके एक अपवाद कायम किया।' जापानियों का अनुशासन, सौन्दर्यबोध, बलिदान, राष्ट्रप्रेम और उनकी तकनीकी दक्षता में अपूर्व सहजता और एकता नज़र आते हैं। हम स्वंतंत्र होने का दावा करते हैं,

लेकिन हर तरफ से हम अमेरिका के गुलाम बन चुके हैं। अपने बाज़ार से अमेरिका को खारिज करने में हम असमर्थ हो गए है।

हिरोशिमा में कौंच और कनेर

हिरोशिमा में अणुबम फूटने के बाद अनेक लेखकों ने वहाँ की यात्रा की और वहाँ के अनुभवों को कागज़ पर उतारा। मृदुला गर्ग आधुनिक युगीन हिन्दी महिला लेखिकाओं में एक अलग नाम है। स्वातंत्र्योंत्तर कालीन लेखिकाओं में उनकी अलग पहचान है। उनकी हिरोशिमा-सफर का लेखा-जोखा 'हिरोशिमा में कौंच और कनेर' नामक अपने छोटे लेख से प्राप्त होते हैं।

विनाश के अट्ठावन बरसों बाद लेखिका अपनी जापानी सहेली मिवाको कोएजुका के साथ हिरोशिमा पहूँचती है। एक समय खाक में परिणत पूरा शहर अब चकमक बत्तियों से जगमगा रहा था।

होटल की उन्नीसवीं मंज़िल में खडी लेखिका की आँखें कब्रों की तलाश कर रही थी। कब्र तो यहाँ खुदी ही नहीं थी। चिताएँ भी अलग-अलग जलानी नहीं पडी थीं। धर्ती से 580 मीटर ऊपर, ज्वालामुखी फटने की तरह अग्निज्वाला धधकी थी। उसके बाद 5000 सेल्सियस के तापमान की धधक ने, विस्फोट और विकिरण के साथ मिलकर समूचे शहर को श्मशान में तब्दील कर दिया था। सिर्फ दो भवनों के खोखल साबुत बचे रहे थे; एक बैंक, दूसरा डिपार्टमेंटल स्टोर। पैसे रखने का भवन और पैसों से व्याापार चलानेवाला भवन। लेखिका देख रही है कि अब नगर का नज़ारा बदल ही गया है कि चारों तरफ बैंक-

ही-बैंक हैं, दूकानें-ही-दूकानें हैं, बहुमंज़िला, शानदार होटल हैं, मयखाने हैं, कराकोए गीतशालाएं हैं, दफ्तर हैं, जिनमें आठ बजने पर भी काम चल रहा है।

अचानक लेखिका को लगती हैं कि समूची इमारतें और कब्रें उसके पांव तले हैं, वह एक श्मशान में खडी रहती है। मृतकों को श्रद्धांजली देने केलिए वे हिबाकुशा-स्मारक-स्थल पहूँचती है। हिरोशिमा शांति उद्यान, स्मारक संग्रहालय, अणुबम गिरने के स्थल पर बना कलश सब इतिहास में परिणत हो चुके हैं, युद्ध विभीषिका के एक झटके में घटी, चक्रवर्ती वारदात के गवाह बने खडे थे। उसे देखने पर लेखिका को लगती है कि बीस हज़ार चेहरे वहां से अपने-अपने दर्द की कहानी बयान कर रहे है।

मृदुला गर्ग अब सदाको ससाकी की मूर्ति के सामने खडी है। सडाको वह बच्ची है, जिसे बम वर्षा के समय केवल दो साल की आयू थी। उस समय लगा कि वह बम से बेअसर रह गई है। पर जल्दी ही उसके भीतर विकिरण से उत्पन्न ल्यूकेमिया के आसार नज़र आने लगे। बम वर्षा के दस बरसों बाद उसकी मुत्यु हुई। अपनी ज़िन्दगी के अंतिम महीनों में बारह वर्षीय सदाको ने जीवित रहने की अदम्य लालसा में लंबी आयु के प्रतीक क्रौंच पक्षी की कागज़ी आकृतियाँ बनाते काटे। उसका विश्वास था कि उसका कारगर इलाज हो जाएगा, पर कभी नहीं हुआ। 1955 में उसकी मृत्यू हुई। मृत्यू के बाद उसकी मूर्ति शांति उद्यान में लगा दी गई है। उसके पास बने कांच के कक्ष में

आज भी क्रौंच पक्षी की हज़ारों कागज़ी आकृतियाँ लटकी रहती है, जो उनकी श्रद्धांजली केलिए यहाँ चढे जाते हैं।

मृदुलाजी को बडी ताज्जुब हुई है कि जापान में क्रौंच पक्षी को लंबी आयू का प्रतीक माना जाता है। भारत के कवि वाल्मीकि ने क्रौंच मिथुनों में से एक का वध और उसपर दूसरे का विलाप देखकर विश्व के महान पुराण ग्रन्थ रामायण का सृजन किया है। यहाँ सदाको की मूर्ति के पीछे जो शीशे के कक्ष दिखलाई दे रहे थे, जिनमें क्रौंच पक्षी की कागज़ी आकृतियाँ लटक रही थीं, वे पहले यहाँ नहीं थे। पहले हज़ारों की संख्या में आनेवाली आकृतियाँ, खुले आस्मान के नीचे लटकी रहती थी। पर उन्हें एक छात्र ने जला दिया था। उसके बाद ये कक्ष बनाए गए।

इस छात्र को किसी भी सजा नहीं, बस भर्त्सना और मनोचिकित्सा मिली। बल्कि इस घटना ने सबको हिरोशिमा के बारे में दुबारा सोचने को विवश बना दिया। इसके बाद छात्र के कालेज में कक्षाएं लगी थी। शांति स्मारक क्या था? सदाको कौन थी? वैसे लगभग सभी लोग हिरोशिमा की सारी बातें समझ गये।

शांति उद्यान के बीच, ठीक जहाँ अणुबम गिरा था, एक गोला लटका हुआ था और वहीं फूलों से आच्छादित स्मारकपट पर लिखा है, 'यह स्थल बना है, जिससे हम याद रखें और दुबारा ऐसी गलती न करें।'

लेखिका को उस बात पर थोडी सी बेचैनी हुई है कि संग्रहालय के भीतर अणुबम से पीडित हिबाकुशा की कहानियाँ दर्ज नहीं है, जो उस अमानुषिक प्रयोग की कल्पनातीत विनाशलीला को दर्शाती हैं। लेखिका के शब्दों में "इनके साथ जापानी सैन्य-सत्ता की बर्बरता की कहानी भी दर्ज है। कैसे उन्हें अपने घरों से निष्कासित करते, आयुध कारखानों में उनसे ज़बरन बेगार करवाई गई। कैसे वे दोयम दर्जे के नागरिक भी अमरिकी हमले में शहीद हो गए। कहीं हम भूल न जाएं। दुबारा वही गलती न कर बैठें।"[1]

लाख चाहने पर भी साम्राज्यवादी, युद्धकामी शक्तियों के प्रति लेखिका के मन में क्षमा भाव नहीं उभर आया। क्यों बार-बार हमसे गलती होती जाती है? ऐसा एक सवाल उनके मन में निरन्तर जूझता रहा।

एक गलती को सुधारने के लिए हम उससे बडी बडी गलतियाँ कर बैठे हैं। इससे दुनिया में शान्ति कभी नहीं होगी, बल्कि संघर्ष, आतंक, और युद्ध का सिलसिला ज़ारी रहेगा। इस हालत को बदलना है, जिससे आतंक-भरे वातावरण से मुक्ति हो जाए।

1. कुछ अटके कुछ भटके - मृदुला गर्ग - पृ. 57

आधुनिक हिन्दी निबन्धों में अभिव्यक्त युद्धजन्य साँस्कृतिक संकट

निबन्ध, साहित्य की सशक्त विधा है, जिसमें लालित्य है, सरलता हैं, बौद्धिकता की गुंजाईश भी। हिन्दी साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, वैज्ञानिक आदि कई प्रकार के निबन्धों की भरमार है। निबन्धों में भी लेखकों ने अपनी युद्धविरोधी चेतना को अभिव्यक्त किया है। इनमें महादेवी वर्मा, रामविलास शर्मा, डाँ नामवर सिंह, विष्णुप्रभाकर, केदार नाथ सिंह प्रभृति लेखकों का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

महिला लेखिका होने के नाते नारी पर, युद्ध के बुरे प्रभाव और इसके दर्दनाक परिणामों पर महादेवी वर्मा बडी सजगता से विचार करती है। बर्बरता की पहली सीढी से सभ्यता की अन्तिम सीढि तक युद्ध मानव को पहूँचाता है। युद्ध मनुष्य की संकीर्ण स्वार्थ भावना की खुली अभिव्यक्ति है। समय के बदलने के साथ युद्ध के तरीकों में भी बदलाव नज़र आया। लकडी, लोहे, और इस्पात के बने हथियार आज पहले से सहस्त्रगुण अस्त्रों में परिणत हो गए है। दूर से शत्रू को बेधनेवाले तीक्ष्ण बाणों का नया रूप आज के मशीनगन है।

आदिम असंस्कृत मानव में अनेक परिवर्तन नज़र आए, जंगल में बसे प्राचीन मानव आज जंगल को काटकर वहाँ ऊँची ऊँची गगनचुंबी अट्टालिकाएँ बनाकर बसने लगे हैं, उसने कई किस्म के अप्राकृतिक सुस्वादु व्यंजनों से शरीर को सुसज्जित रखा है, साथ ही साथ जाति, वर्ण, देश, राष्ट्र आदि की दीवारों का निर्माण किया है।

अनेक नियमों से शासित होने और स्वयं शासन करने के दौरान अपने मार्ग में बाधा उपस्थित करनेवालों के कत्ल करने में वे तनिक भी हिचकते नहीं। इसकेलिए उन्होंने अनेक उपाय भी ढूँढ निकाले हैं।

अपने इस काम में विज्ञान बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ। लेखिका के शब्दों में, "आज के विज्ञान ने उसकी प्रत्येक साँस को विषाक्त कर देनेवाले अनेक उपाय भी खोज निकाले हैं। आज के विज्ञान ने उसकी प्रत्येक संहारक कल्पना को पार्थिव रूप दे दिया, प्रत्येक उठनेवाली इच्छा को धरती से बाँध दिया और प्रत्येक निष्ठुर प्रयत्न को साकार सिद्धि में परिवर्तित कर दिया। परिणाम वही हुआ, जो होना था।"[1] आज प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की संस्कृति को निगलने केलिए तैयार बन बैठा है। युद्ध की आहटें चारों दिशाओं में प्रतिध्वनित होने लगी है।

युद्ध की दशा देखकर, उसकी आहटें सुनकर प्रत्येक देश की महिलाओं की क्या प्रतिक्रिया होगी, क्या हालत होगा, इसपर विचार करने का समय बीत चुका है। महादेवी बताती है, "युद्ध स्त्रियों की मनोवृत्ति के अनुकूल है या नहीं और यदि नहीं है तो पुरुषों ने उससे सहयोग पाने केलिए क्या-क्या प्रयत्न किए। वास्तव में ये प्रश्न अत्यन्त समीचीन है, मनुष्य जीवन के समान पुराना भी।"[2]

1. महादेवी साहित्य (1) - युद्ध और नारी - पृ. 442
2. वहीं

पुरुष का जीवन हमेशा संघर्षों से जूझता रहा। कठोर संघर्ष में विजयी होकर जब आदमी घर लौटा नारी ने तहे दिल से उसका अभिनन्दन करके उसके सामने आत्मसमर्पण कर लिया। हमारे यहाँ के पवित्र गृहों की नींव स्त्री की बुद्धि पर काफी सुरक्षित है। पुरुषों से विरोधी भावना के होते हुए भी स्त्री ने इसे प्रकट नहीं किया, अपने अन्तर्मन में उसे दबा लिया। अपनी सहज बुद्धि के कारण स्त्री ने पुरुषों के साथ अपना संघर्ष नहीं होने दिया। यदि होने दिया होता तो आज मानव-जाति की दूसरी कहानी होती।

स्त्री की नियति दूसरी थी। अपने शत्रु पुरुष को हराने में असफल प्रतिद्वन्द्वी, उसके स्त्रियों और बच्चों पर घोर अत्याचार करते थे। अक्सर युद्ध-क्षेत्र में सिपाहियों द्वारा भी उसपर बलात्कार हुआ। "जिसे कल की आशा नहीं, जिसके नेत्रों में मृत्यू की छाया नाच रही है, उस सैनिक के निकट स्त्री केवल स्त्री है। उसके त्याग, तपस्या आदि गुणों का वह क्या करेगा।"[1] फिर भी स्त्री में कभी वह रक्तलोलुपता नहीं देखी गई, जिसके कारण युद्ध केवल युद्ध केलिए भी होते रहे।

स्त्री-पुरुष के युद्ध-संबन्धी दृष्टिकोण में बडा अन्तर हैं। नारी, पुरुष के दृष्टिकोण से युद्ध को देख नहीं सकती। स्त्री के मन में हमेशा गृह के प्रति, परिवार के प्रति आत्मीयतापूर्ण संबन्ध है। लेकिन पुरुष उतनी आत्मीयता नहीं महसूस करता है, क्यों कि घर उसकेलिए सुख का साधन मात्र है। स्त्री के लिए घर उसकी ज़िन्दगी के समान है,

1. महादेवी साहित्य (1) - युद्ध और नारी - पृ. 444

उसका अपना प्राण है, इसका उजड जाना उसके जीवन का उजड जाना है। युद्ध से घर का सर्वनाश होता है, इसलिए नारी तन और मन से हमेशा युद्ध से बिछुड रही। 'युद्ध गृह के लिए प्रलय है; इसी से संभवतः वह उससे विमुख रही है। युद्ध के लिए वीरों को जाता देखकर पुरुष सोचेगा, देश का कितना गुरु महत्व इनके सम्मुख है और स्त्री सोचेगी, कितने आर्तनाद से पूर्ण घर इनके पीछे हैं। एक कहेगा-यह जा रहे हैं, क्योंकि इनका देश है; दूसरी कहेगी-यह जा रहे हैं, पर इनके स्नेहमयी पत्नी और बालक है।

युद्ध काल में स्त्री संपूर्ण व्यक्ति नहीं बन पाती। इसके लिए लेखिका द्रौपदी का उदाहरण प्रस्तुत करती है। वे बताती है, 'कुरुक्षेत्र की रुधिर-स्नाता द्रौपदी न महिमामयी जननी के रूप में हमारे सम्मुख आई और न गौरवान्वित पत्नी के रूप में प्रकट हुई। वैभव की अन्य सामग्रियों के समान वह शत्रु भय से भागते फिरनेवाले पाण्डव भाइयों में बाँटी गई और युद्ध का निमित्त मात्र बनकर जीवित रहने केलिए बाध्य की गई।'

स्त्री की प्रेरणा से पुरुष एक हद तक युद्ध से विरत हो गया, लेकिन अपने अन्तर्मन की वासना को वह पूर्ण रूप से दबा न सका। स्वत्व की भावना के साथ अपने अधिकार को विस्तृत करने की उसकी कामना बढ गई। आज इस भौतिकवाद के वातावरण में मनुष्य बर्बरयुग के क्रूर पुरुष से अधिक भयानक हो उठा है। अपनी अधिकार-लिप्सा में स्त्री का बाधक बनना वह तनिक भी पसन्द नहीं करते थे। पुरुष ने स्त्री

की युद्ध-विमुखता को उसकी दुर्बलता तक कह डाला। 'तुममें शक्ति नहीं, उसीसे यह कोरी भावुकता का प्रश्रय पाती है। तुम्हारा आत्मनिवेदन तुम्हारी ही रक्षणीयता प्रकट करता है, अतः यह लज्जा का कारण है, गर्व का नहीं।'

अपने स्वभाव की नई व्याख्या नारी को पसन्द न आयी। अब वह आपत्तिकाल में अस्त्र धारण कर स्रष्टा का पद छोडकर संहारक का रूप धारण कर चुकी है। उसका यह आवेश बुद्धिजन्य न था, बल्कि आशंकाजन्य था।

लेखिका युद्ध को स्त्री के मानसिक, सामाजिक, साँस्कृतिक विकास में बाधक मानती है। स्त्री के गुणों का, उसके व्यक्तित्व का सहज विकास समाज के शान्तिमय वातावरण में ही हो सकता है।

सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में उन्होंने युद्ध से पहले और उसके बाद के शान्ति प्रयासों का विश्लेषण करके उनकी असलियत से, और साम्राज्यवाद के हिंसक रूप से जनता को परिचित कराने का सराहनीय कार्य किया है। 'हेग की शान्ति सभा' नाम से 1908 की सरस्वती में प्रकाशित अपने निबंध में उन्होंने व्यक्त किया कि जितने स्वाधीन देश है, ऊपर से यही कहते हैं कि युद्ध न होना चाहिए। परंतु जो रूस अपने को शान्ति का इतना प्रेमी बतलाता था वही चीन के मंचूरिया प्रांत को निगल जाने और कोरिया में भी पैर फैलाने की जान से कोशिश कर रहा था।' कुछ वर्षों से सभी शक्तिशाली देश अपनी-अपनी फौज़ें बढाने, नई-नई तोपें बनाने,

बडे बडे भीषण लडाकू जहाज़ तैयार कराने की धुन में डूब से गए। करोडों रुपए बरबाद होने लगे। कर के रूप में प्रजा से प्राप्त किया गया धन, उसकेलिए सुख-सामग्री प्रस्तुत करने के बदले, जनसंहार के कामों में बेतरह खर्च होने लगा।

सरस्वती के इस अंक के आरंभ में दो बादशाहों की तस्वीरें छपी है। एक है ब्रिटेन के बादशाह एडवर्ड सप्तम और दूसरा है जर्मनी के बादशाह कैंसर विलियम, और दोनों के नामों के नीचे छपा था 'मामा भानजे।' नातेदारी के इस उल्लेख में जो व्यंग्य छिपा था, वह कुछ वर्षों बाद स्पष्ट हो गया।

द्विवेदी रूस-जापान के बीच के युद्ध को नए महायुद्ध का रिहर्सेल समझते हैं। इंग्लैंड, फ्राँस, जर्मनी-इन तीन पूँजीवादी देशों के कारण इतना बडा युद्ध हुआ है।

वे मानते हैं कि जब तक प्रत्येक देश अपनी सेना बढाता जाता है, नए-नए युद्ध -जहाज़ बनाता जाता है तब तक शान्ति एक विदूर स्वप्न की तरह रह जाएगी। शान्ति सभा के तुरन्त ही बाद युद्ध छिड गए, इस पर द्विवेदी की प्रतिक्रिया थी, 'खोदा पहाड, निकली एक छोटी सी चुहिया।' तीन महीने तक हेग में मेला हुआ, पर कुछ भी नाम लेने योग्य नहीं।

यूरोप के बडे बडे देशों की युद्धप्रियता से संसार की बहुमूल्य संपत्ति और जीवों का नाश हो रहा है। प्रत्येक देश के ऊपर ऋण का

बोझ बढता जाता है। यूरोप की राजनिति ही उक्त सामाजिक ओर आर्थिक दशा का मुख्य कारण है।

जहाजों, तोपों और फौज़ों की अकारण वृद्धि को रोकने से युद्ध को रोका जा सकता है। संसार का धन और श्रम किसी भी अर्थोत्पादक कार्य में लगाया जाना चाहिए।

अगस्त 1912 की सरस्वती में गणेशशंकर विद्यार्थी का लेख प्रकाशित हुआ-शान्ति का सार्वभौमिक राज्य। इसमें गणोशशंकर विद्यार्थी तीखी, व्यंग्यपूर्ण शैली में लिखते है - आज सारे संसार की बडी बडी शक्तियां शांति का मधुर राग अलाप रही हैं। जिधर देखो उधर शांति का साम्राज्य स्थापित करने की बडी-बडी कोशिशें हो रही है। सभी सभ्य देश पारस्परिक राष्ट्रीय नियमों के बंधन में बंधे हुए यह कह रहे है - 'मनुष्य मात्र बराबर है; सबको स्वाधिनता का रस चखने का एक सा अधिकार है।' बडे-बडे राष्ट्र जिनके हाथों में सारे संसार का वाणिज्य है, जिनके बल और पराक्रम पर विचार करने से सिकंदर और सीजर, अशोक और अक्बर आदि महावीरों का बल और पराक्रम तुच्छ मालूम पडता है; लडाई और झगडा, अत्याचार और अशांति आदि, मनुष्य जाति की सुख और समृद्धि में बाधा डालनेवाली बातों का अब खातमा ही हुआ चाहता है।'

लेखक ने अपने मत प्रकट करने केलिए साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद आदि राजनीति के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग नहीं किया हैं। लेकिन अपनी बातों की स्पष्ट अभव्यक्ति की हैं। युद्ध होगा तो

जनतंत्र की रक्षा केलिए न होगा। वह संसार के नए बंटवारे के लिए होगा।

साम्राज्यवादी राष्ट्रों का लुटेरा रूप उद्घाटित करते हुए वे बताते है: क्या अभी तक आपस में लडनेवाले राष्ट्र- वे राष्ट्र जो अपने से कमज़ोर को हडप कर जाने की चिंता से सदा मग्न रहते थे - जो अपनी राजनैतिक दुरंगी चाल से संसार भर को नचाया करते थे और जो अपने युद्धपोतों और तोपों से अर्धसभ्य, असभ्य और कमज़ोर देशों को भयभीत रखते थे-समानता के उज्ज्वल और पवित्र सिद्धान्त के मीठे रस का इतना मज़ा पा गए कि थे अब 'टट्टी की ओट शिकार खेलने' अथवा कमज़ोरों को संसार ने नेस्त-व-नाबूद कर देने की प्रथा का त्याग कर देंगे और सौम्य रूप धारण करके शांति का परम आवश्यक और सुखदायी साम्राज्य स्थापित होने देंगे?'

साम्राज्यवादी बर्बर अत्याचारियों की व्यंग्यपूर्ण आलोचना करनेवाला गणेश शंकर विद्यार्थी का विचार युद्धकामी शासकों की अनीतियों को पर्दाफाश करता है।

अमेरिकी नव-उपनिवेशवाद का खतरा -डॉ नामरसिंह

नामवरसिंह स्वीकारते हैं कि साहित्य की शक्ति सीमित है, फिर भी इसके ज़रिए हम युद्ध विरोधी वातारण तैयार कर सकते हैं। युद्ध का सीधा प्रभाव न पडने के कारण भारत में कम संख्या में ही युद्धविरोधी साहित्य का सृजन हुआ है। फिर भी वामपंथी विचारवाले

लेखक युद्ध के खिलाफ लगातार लिख रहे थे। शमशेर, नागार्जुन आदि की रचनाएँ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

युद्ध का सीधा असर भारत पर नहीं पडा था, यह तो सच है, फिर भी परोक्ष रूप से युद्ध की विकृतियों का प्रभाव भारतीयों पर पडा था। बंगाल में पडा अकाल युद्ध का ही परिणामस्वरूप हुआ था।

आज सारे संसार में गृहयुद्ध चलते रहते हैं। इस गृहयुद्ध का कारण अमेरिकी नव उपनिवेशवाद है। इससे अमेरिका दो देशों में नहीं, हर देश में अस्थिरता पैदा कर सकते है। धर्म, भाषा, नस्ल और क्षेत्रीयता का इस्तेमाल वह इस केलिए करता है।

युद्ध का परिणाम यह होता है कि मानवता हज़ारों साल पीछे चले जाते हैं। मानवता के विकास में यह सबसे बडी बाधा उपस्थित करता है।

महानगरों में युद्ध के खिलाफ होनेवाले शान्ति प्रदर्शन को लेखक नेक मानते हैं। क्यों कि इसका लोकव्यापी प्रभाव बहुत कम होता है। देश की आत्मा वहाँ के गाँवों में बसती है। अतः गाँव के लोगों के मन में युद्धविरोध को पैदा करना बहुत ज़रूरी है। युद्ध की समस्या को रोज़मर्रा की समस्या से जोडकर देखने की मानसिकता उनमें पैदा करना है। इस केलिए हमें सभी संचार माध्यमों का इस्तेमाल करना चाहिए।

सत्ता का मोह और युद्ध

विष्णुप्रभाकर का मानना हैं कि सत्ता का मोह व्यक्ति को युद्ध के लिए प्रेरणा देता है। अब पहले जैसा युद्ध नहीं, बल्कि सर्वनाश है। साहित्य की ताकत घट गई है। क्योंकि साहित्यकार युद्ध का विरोध करता है, लेकिन क्षमता सरकार के हाथ में है। इसलिए युद्ध को रोकने के लिए सरकार की ओर से उचित कारवाई होनी है। लेनिन ने कहा था कि 'यदि चेखव नहीं होते तो मैं जीत नहीं सकता। उन्होंने ही किसानों को उनकी वाणी दी है। लेनिन कहते थे कि साहित्यकार में एक विशेषता है कि वह आगे देखता है।'

युद्धविरोधी साहित्य यहाँ मोर्चा बनाकर नहीं लिखा गया है। गाँधीवादी रुझान रखनेवालों ने भी लिखा है। विष्णुप्रभाकर ने अपना नाटक 'नवप्रभात' अशोक के जीवन को लेकर लिखा है।

लोगों को युद्धविरोधी कतार में खडा करने केलिए प्रशिक्षण की ज़रूरत है। भारत में युद्ध विरोध के नाम पर जो शान्तिप्रदर्शन चलते रहते हैं, वह सिद्धान्तवादी अधिक है। क्यों कि कम्यूनिस्टों के प्रदर्शन में गैर कम्यूनिस्टों को नहीं जोडा जाता है। यहाँ मीडिया या तो किसी पार्टी के नियंत्रण में है, या सरकार के।

केदार नाथ सिंह शब्द की शक्ति में विश्वास करते है। वे मानते हैं कि युद्ध के संकट का विरोध साहित्य के माध्यम से संभव है। "साहित्य युद्ध को समाप्त कर सकता है। युद्ध के कारण साहित्य के

बाहर होते हैं, पर मानवीय संवेदना को जगाने की शक्ति इसमें होती है। इस संदर्भ में यह एक बडा हथियार है।"[1]

साम्राज्यवाद जिस किसी शक्ल में आएग, उससे युद्ध के खतरे बढेंगे। गृहयुद्ध के बारे में लेखक का दृष्टिकोण गुणदोष के रूप में बनाया जाना चाहिए। क्यों कि तीसरी दुनिया के देशों में होनेवाले गृहयुद्ध के स्वरूप और प्रकृति एकदम भिन्न है। जो गृहयुद्ध जनता के व्यापक हितों की रक्षा और मुक्ति के लिए लडे जाते हैं, उसके बारे में लेखक की सहानुभूति होनी चाहिए, यदि किसी षड्यंत्र के तहत कोई विघटनकारी तत्व गुहयुद्ध की स्थिति उत्पन्न करता है तो लेखक को उसके विरुद्ध आवाज़ उठानी चाहिए।

'लिखी कागद कोरे' में अभिव्यक्त युद्धविरोधी आवाज़

अपनी प्रसिद्ध कविताओं की तरह निबंधों में भी अज्ञेय ने तीखी आवाज़ में युद्धविरोधी प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त किया है। वे युद्ध को बुरी चीज़ तक कह डालते हैं। "युद्ध बुरी चीज़ है। किसी भी काल में बुरी थी। आधुनिक काल में और भी बुरी है क्योंकि आधुनिक युद्ध में यह जानना कठिनतर हो जाता है कि युद्ध कौन-से मूल्यों की रक्षा के लिए किया जा रहा है। मध्यकाल तक मूल्य स्पष्ट होते थे, और उस समय तक की शौर्य परंपरा युद्ध की परंपरा उतना नहीं जितनी मूल्य रक्षा की परंपरा थी - मर्यादा थी।"[2]

1. युद्ध और मानवीय संवेदना - केदारनाथ सिंह - समकालीन सृजन - पृ. 35
2. लिखि कागद कोरे - अद्देय - पृ. 101

मध्यकाल में युद्ध मूल्यों की रक्षा के लिए लडा जाता था, लेकिन आधुनिक काल में युद्ध के दौरान मूल्यों का हनन होता है। आज साँस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, धरातल पर प्रगति पाने केलिए युद्ध लडा जाता है। इससे हमारे नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का ह्रास होता है। आज तरह तरह के यंत्रों के साथ लडनेवाला व्यक्ति एक उपकरण मात्र बन जाता है।

युद्ध को बुरा मानते हुए भी कवि यह स्वीकार करते हैं कि कभी कभी ऐसे संदर्भ भी होते हैं, जबकि यह राष्ट्र के लिए, समाज केलिए और व्यक्ति के लिए भी करणीय हो जाए। क्यों कि अत्याचार को अत्याचार करने का अवसर देना महापाप है। इससे संसार में अत्याचार का सिलसिला बढता रहता है। साहित्य की ताकत बहुत बडी है। किन्तु अत्याचार को रोकने की शारीरिक क्षमता भी कवि में होनी चाहिए। अज्ञेय ने भारत-पाक् युद्ध के दौरान सेना में सिपाही के रूप में काम किया था।

बीसवीं सदी के अधेरे में

श्रीकान्त वर्मा उन लेखकों में है, जिनकेलिए यह शताब्दी ही चिन्ता का मुख्य विषय रही है। कवि की यह चिन्ता मनुष्य की नियति को लेकर है, अपने सारे वैचारिक प्रश्नों और नैतिक संकटों को लेकर भी। उन्होंने इस शताब्दी और उसकी गिरफ्त में फँसे मनुष्य की हालत का अपनी रचनाओं में तीखा स्पष्ट बयान किया है।

'बीसवीं शताब्दी के अंधेरे में' उनकी श्रेष्ठ साक्षात्कार कृति है। दुनिया भर के प्रतिष्ठित वर्तमान लेखकों, चिन्तकों, बुद्धिजीवियों को चुनकर उनके विचारों के साथ साक्षात्कार किया गया है। समकालीन साहित्य की स्थितियों पर लेखक ने जिन लोगों से बातचीत की, उसमें बार बार दो संकटों की चर्चा हुई है - युद्ध का संकट और साहित्य के भीतर बढते हुए टेकनँलजी और विज्ञान की करामत। युद्ध से समूची मानवता को खतरा हुई है। विज्ञान और तकनीकी के चलते वहाँ के समाज और साहित्य में सारी मूल्यहीनता पैदा हुई है।

नाम चाँस्की के विचार में जनमत के ज़रिए हम परमाणु मनोबल को पराजित किया जा सकता है। संसार को युद्ध से बचाया जा सकता है। इस जनमत को तैयार करने में बुद्धिजीवियों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

वियतमान की लडाई अपने अन्तिम वर्षों में सारे संसार के लिए एक प्रतीक बन गई। निहत्थे जनता की अदम्य आकाँक्षा के सामने अस्त्रों को ईज़ाद करनेवाली सत्ता पराजित हुई।

हंस माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर संसार के एक महान विचारक है। श्रीकान्तवर्मा मानते हैं कि इनकी केवल एक ही दुनिया है जिसपर युद्ध, संहार, आतंक, विद्रूप और नियतिहीनता की गहरी छाप है।

युद्धोत्तर यूरोप के अधिकतर कवियों की चिन्ता का मुख्य विषय युद्ध रहा। एन्त्सेन्सबर्गर की चिन्ता का विषय युद्ध न होकर वह दुनिया है जो युद्ध पैदा करती है। वे साहित्य और कला की चिता पर

हाथ सेंकनेवाली अर्ध व्यवसायिक, निर्मम और जडहीन सभ्यता के साथ संघर्षरत कलाकार है। वे इन शर्तों को समझना और बदलना चाहते हैं, जिनसे मनुष्य के आसपास अलगाव, नपुंसकता, गूँगापन, बलात्कार, युद्ध, हिंसा और आत्मघात जन्म लेते हैं। मार्क्सवाद विशेषकर, क्यूबा जैसी युद्धोत्तर मार्क्सवादी क्रान्तियों ने एन्त्सेन्सबर्गर पर गहरी छाप छोडी है।

युद्ध में भाग लेनेवाला कवि दु:ख, पीडा, अवसाद, विषाद, अकेलापन आदि मानवीय अनुभूतियों से पहले प्रभावित होते है। एन्तसेन्सबर्गर की कविताओं में कहीं कहीं विषाद की छाया झलकती है:

रसोई के खुले किवाड से देकता हूँ मैं
लुढका हआ दूध। तीस साला युद्ध।
हँसिए पर आँसू
राकटों की काट करते राँकट
....
नीचे बाइ और कोने में
बिल्ली केलिए एक तश्तरी[1]

एन्तसेन्सबर्गर के लिए जीवन और कविता दोनों ही एक अन्तहीन बेचैनी, एक अनन्त कडुआ जागरण है। क्यूबा की क्रान्ति में एन्त्सेन्तबर्गर की भूमिका इसी बेचैनी की अभिव्यक्ति है।

1. बीसवीं सदी के अंधेरे में - श्रीकांत वर्मा - पृ. 170

आन फ्रांक की डायरी : विश्व साहित्य की प्रसिद्ध आत्मकथा

हिन्दी में लिखित आत्मकथाओं में युद्धविरोधी स्वर देखने को नहीं मिलते हैं। क्योंकि युद्ध की त्रासदी के प्रत्यक्ष भोक्ता लेखक हिन्दी में बहुत कम ही है। लेकिन विश्व साहित्य में इसकी कमी नहीं है।

विश्वसाहित्य में आन फ्रॉंक की पहचान न तो एक महत्वपूर्ण लेखिका के रूप में है, न नामी कवयित्री के रूप में। बल्कि उनकी अत्मकथा साहित्य क्षेत्र में अलग स्थान हासिल करती है। क्यों कि यह एक छोटी सी लडकी की कथा है, जिसका सीधा साक्षात्कार युद्ध की भयावहता और हैवानियत से हुई है। पुस्तक की शुरुआत में मलयालम के मशहूर साहित्यकार ओ.वी. विजयन ने अंकित किया है, आन फ्रँक किसी एक वंश का नुमाइंदा नहीं, बल्कि वह एक सार्वलौकिक विलाप है, प्रतीक है। 12 जून 1942 से 1 अगस्त 1944 तक के डायरी के पन्ने इसमें संगृहीत है।

जूत होने के नाते आन के परिवारवालों हिटलर की सेनाओं से छिपकर सालों तक रहस्य संकेतों में रहना पडा। इस काल की घटनाओं को आन अपने डायरी में लिखा करती थी। आन की मृत्यु 1945 मे कारागार में हुई। मृत्यू के ब्बाद इस डायरी का प्रकाशन 1947 में हुआ था। युद्ध की अमानवीयता और इससे मन में होनेवाले आघात का सजीव वर्णन इस कृति में होता है। आन और परिवारवालों की ज़िन्दगी के साथ होलंड की जनता के दर्दनाक हालत का भी वर्णन इस कृति में है।

हिटलर ने यहूदियों से जो क्रूरता दिखाई, उसके बारे में सुनकर मानव के अन्तर्मन बेचैनी से तडप उठते हैं। गैसचैंपरों में जलाकर हिटलर की सेनाओं ने अनेक यहूदियों को मारा। इस भयानक त्रासदी से बचे जूत परिवारों में एक था एन फ्राँक का परिवार।

फ्राँक ने लिखा "हरेक बार आकाश-हमले के बाद स्त्रियाँ डर के मारे हिलती थी। पिछले इतवार इजमतन में ब्रिटिश सेनाओं में दस लाख से ज़्यादा किलो भारी बम की वर्षा की जब हवा में उलझनेवाले ....समान मकान हिला। तरकारियाँ और अन्य सामग्रियों को पाने केलिए लोग घंटों तक कतारों में खडे होते थे। डाक्टर मरीजों का इलाज न कर सकता था। क्योंकि चोरी बढ रही थी, डाक्टर के कार के उतारने पर उनके कारों को चुराके चोर कहीं भागते थे। सात-आठ बरस के बच्चे खिडकियों को तोडकर पडोसी घर से सामग्रियाँ हडप लेते थे। पाँच मिनट के लिए भी अपने घर को प्रन्द करके बाहर जाने को लोग तैयार न थे। पत्रों में हर दिन विज्ञापन आते थे कि खोई हुई सामग्रियाँ, जैसे टाईप राईटर, गलीचे, इलक्ट्रिक घडी, कपडे आदि के वापस देने पर प्रतिफल मिल जाता है। मार्ग से घडियों और टेलिफोनों को लेकर उनके अन्दर के भागों को बिक लेते थे। हफ्ते भर के लिए जो रेशन मिलते थे, वह दो दिन केलिए भी पर्याप्त न होते थे। ऐसे मौके पर लोगों के धार्मिक बोध का घट जाना विस्मय की बात न थी।"[1]

1. आन फ्राँक की डायरी - पृ. 154

युद्ध के चार वर्षों में चोरी में किन्हीं रहस्य संकेतों में रहना बडी मुश्किल की बात है। आन के परिवारवालों को इसकी बदकिस्मत भी भोगनी पडी। उन्हें अपने धर्म चिह्न पीला तारा धारण करना पडा। जूतों को सैकिल या ट्राम पर यात्रा करने की इज़ाज़त न मिलती थी। इसलिए सैकिलों को धकेलकर जाना पडा। सामग्रियाँ खरीदने केलिए जूतों के लिए प्रत्येक दूकान खोला गया। आठ बजे के बाद घर से बाहर निकलने न देते थे, अपने घर के आँगन में ही बैठने की, और ईसाई लोगों से मिलने की अनुमति नहीं मिलती थी।

आन के कई जूत मित्रों को गस्टापो ने ड्रेन्ट नाम से एक जूत कैंप ले गए। उन्हें जानवरों के ले जानेवाले ट्रक में लेकर गए थे। वहाँ की हालत बहुत ही शोचनीय और पैशाचिक था। सौ लोगों के लिए एक ही हमामघर था, ज़रूरत की टट्टियाँ भी नहीं था, वहाँ मर्द और औरतें एक साथ सोते थे। नैतिकता का उल्लंघन वहाँ एक मामूली घटना सी होती रहती थी। स्त्रियाँ ही नहीं, लडकियाँ भी इनके अत्याचार के शिकार हो जाती थी।

प्रसिद्ध व्यक्तियों को, मासूम आदमियों को दिन ब दिन जेल भेजा जाता था। उनकी हत्या को केवल दुर्घटना पुकारते है। आन पूछती है कि ये जर्मनवासी कैसे आदमी है ? हिटलर ने हमारी देशीयता का हनन किया है। आज संसार के सबसे बडे दुश्मन जर्मन और जूत ही है।

डायरी में आन फ्रॉंक अपनी सहेली को देखती है। अपने दुख में वह इस पर बडी तसल्ली महसूस करती है। यह केवल लेखिका की टिप्पणियाँ मात्र नहीं, बल्कि शासक वर्ग के हैवानियत के शिकार बने एक समाज का भी रुदन है।

इन सभी कृतियों से गुज़रते वक्त हमें पता चलता है कि युद्ध से संस्कृति का विनाश हो रहा है, मृतक संस्कृति के मलबों में आवाम की साँस दबी जा पही है। इतिहास का चेहरा, अत्यन्त निर्मम, बीभत्स और कराल है। युद्धप्रताडित आदमी की अन्तरूनी व्यथा की अभिव्यक्ति यात्रावृत्तान्तों और निबंधों में प्रभावात्मक ढंग से किया गया है। कल्पना की गुंजाईश न होने के कारण पाठकों में सच्चाई का एहसास होता है। उन्हें कभी भी ऐसा नहीं लगता कि युद्ध की समस्या बीती हुई है, बल्कि यह हर घडी हमारा पीछा कर रही है।

युद्ध की समस्या इक्कीसवीं सदी की समस्या नहीं। यह मानव समाज की समस्या है, उसकी संस्कृति की, सभ्यता से जुडी समस्या है। यहाँ एक ज़माने में एक पीढी जीवित थी, जिनसे स्नेह, सद्भावना, त्याग, नैतिकता आदि आदर्शवान मूल्यों का हस्तान्तरण उसकी अगली पीढी पर होता था। लेकिन हम आजकल इसके बदले अगली पीढी के मन में हैवानियत, युद्ध, परस्पर विद्वेष आदि भावनाओं का बीजवपन करते रहते हैं। युद्ध की समस्या की प्रमुख खासियत है, यह हर एक समय में, हर काल में प्रासंगिक है। चाहे 1918 में, 1945 में या 2007 में इस पर विचार करे तो हमें कहना पडेगा कि यह समस्या अत्यन्त सामयिक है और प्रासंगिक है।

उपसंहार

उपसंहार

मानव-जीवन का इतिहास युद्धों का इतिहास है। दुनिया के बदलने के साथ युद्ध के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है। अस्तित्व को बनाए रखने के लिए मनुष्य पहले प्रकृति से लडता था। कालक्रम में प्रकृति और शक्तिशाली जानवर भी उसके अधीन में हो गए।

मानव मन की स्वार्थ-भावना को युद्ध का मूलकारण माना जाता है युद्ध का जन्म सबसे पहले वैयक्तिक धरातल पर होता है। जन साधारण अपने आप में युद्ध में भाग लेना नहीं चाहता। लेकिन युद्ध जब वैयक्तिक धरातल को छोडकर सामाजिक धरातल पर पहूँच जाता है, तब इसका दर्दनाक परिणाम आम जनता को भी भोगना पडता है। अवाम युद्ध के लिए किसी भी तरह ज़िम्मेदार नहीं। लेकिन युद्ध से इन्हें सर्वाधिक हानि पहूँच जाती है। अशोक की महत्वाकाँक्षा के कारण कलिंग का युद्ध हुआ, किन्तु युद्धजन्य विवशता भोगी, आम जनता ने।

जहाँ युद्ध चलता है, युद्ध की त्रासदी मात्र उस जगह तक सीमित नहीं, युद्ध-क्षेत्र से कोसों मील दूर स्थित इनसान भी इससे प्रभावित होते हैं। आदमी के अन्तर्मन को युद्ध घायल करता है। सच्चे साहित्यकार की दृष्टि हमेशा मनुष्य पर केन्द्रित रहती है। इनसान का जीवन जब अस्तव्यस्त होता है, उसकी संस्कृति और सभ्यता जब नाशोन्मुख होती है, समस्या की करालता के बारे में एहसास कराने का

कार्य साहित्य करता है। इतिहासकार की दृष्टि जहाँ रुकती है, साहित्य का काम वहाँ से शुरू होता है। इतिहास में तथ्यों का लेखा-जोखा है, पर मानवता का स्वर हल्का है। इसके विपरीत साहित्यकार आदमी की अन्तरात्मा की बेचैनी को स्वर देते हैं। युद्ध से क्षत-विक्षत भूमि को, माओं की कोख में विकलाँग बने सन्तान को देखने का साहस साहित्य ही करता है।

युद्ध मानव की नसल और फसल दोनों का विनाश करता है। इस विनाश से इनसान की रक्षा करने के लिए साहित्यकार उद्यत होता है।

इनसान के भूत, भविष्य और वर्तमान को नष्ट करनेवाले युद्ध की अमानवीयता पर सभी कवियों ने बहुत ही गंभीरतम विचार प्रकट किया हैं। वे मानते हैं कि सार्वजनिक जीवन में मूल्य और मानवी उदात्तताएं जब शेष न बच जाती है, तब युद्ध शुरू होता है। युद्ध का स्रष्टा भी मानव है, भोक्ता भी। उनकी हरकतों से पृथ्वी श्मशान बन गई है। गाभिन की कोख में पडे शिशू भी यहाँ सुरक्षित नहीं। युद्ध से पागल बना इनसान, इनसान का ही नहीं सत्य, अहिंसा आदि का भी वक्षच्छेदन करते हैं । सृष्टिविरोधी होकर पाषाणकाल की ओर लौट रहे इनसान में माँ- बहनों को पहचानने की क्षमता नष्ट हो गई है। महापुरुषों के उपदेश और संतों की वाणी को अनसुनाकर आज वह आगे बढता है। तीसरे महायुद्ध के तुरन्त ही फूट जाने की संभावना है। अगर ऐसा होगा तो संसार में ईश्वर का ही नहीं कला और साहित्य का भी अस्तित्व मिट

जाएगा। युद्ध एक राजनैतिक निर्णय होता है। शासकों के लिए यह एक त्योहार समान है, इतिहासज्ञों के लिए यह एक घटना है, लेकिन घर-आँगन से कोसों दूर स्थित सैनिकों के लिए यह ऐसा नही। लडाई से उन्हें दो चीज़ें मिलती है-मौत और वेतन। जीवन और मौत की निरर्थकता सैनिक को बेचैन बनाती है। साम्राज्यवादी शक्तियाँ न किसी तरह की आर्थिक विपन्नता से त्रस्त होकर दूसरों पर अन्याय करती है। उनके पास पढे-लिखे लोग है, विस्तृत धन-दौलत है, विज्ञान और तकनीकी के सभी आधुनिक साधन है। लेकिन आवाम की दारुणता को देखने की संवेदनापूर्ण दृष्टि उनमें नहीं। सभी वस्तुओं को कनस्यूमरिस्ट निगाह से वे देखते है।

युद्ध मानव सभ्यता की नृशंस हत्या है। युद्ध से बुरा वक्त आदमी की ज़िन्दगी में दूसरा नहीं होता। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात्त यहाँ जो अन्धायुग अवतरित हुआ, वह महाभारतकालीन अन्धायुग से किसी भी स्तर कम नहीं था। युद्ध की करालता ने इनसानियत का हनन करके मानव के अन्तर्मन में पशुता को भरा है। महाशक्तियों की निगाहें हमेशा गिद्ध की तरह छोटे मुल्कों में पडी रहती है। दुनिया के माहिर वैज्ञानिक और इंजिनियर आज युद्ध के लिए आवश्यक शस्त्र निर्माण में लगे हुए है। भाई-भाई के खिलाफ हथियारों का जखीरा तैयार करता है। चन्द सिक्कों के लिए मानव का अमन और चैन बेचा जाता है। ऐसी हालत में तीसरी जंग के उपरान्त यहाँ बाक्टीरिया और इनसेक्ट्स का राज होगा। सभी नाटककार सचेत करते हैं कि हमें युद्ध शुरू करने से पहले युद्ध के दर्दनाक परिणामों पर सोचना है। युद्ध के कई वर्षों के बाद उनसे

आतंकित स्थानों में पहूँचे लेखक को लगता है कि युद्ध का समय पीछे न छूट गया है। युद्ध की हर घडी उनके लिए प्रतीक्षारत है।

इन सभी कृतियों से गुज़रते वक्त हमें पता चलता है कि सभी रचनाकारों ने मानवविरोधी युद्ध का सख्त विरोध किया है, युद्ध के खतरनाक परिणामों के बारे में हमें सचेत किया है। समय का खतरा इतना बढ गया है कि जिस तरह हम अपने धन-दौलत, ज़मीन-जायदाद आदि दूसरी पीढी को हस्तान्तरित करते है, उसी तरह जाने या अनजाने युद्ध के बीज भी उनके मन में बो देते है। अफसोस की बात है कि आनेवाली पीढी, जिनमें कुछ अब अपनी माताओं की कोख में हो और कुछ आजन्मी हो, वही भविष्य में युद्ध के सभी दर्दनाक परिणामों को भोगेंगे। युद्ध का मूलकारण मनुष्य के अहं का भाव है, अपने को सही साबित करने का प्रयास है। इसके प्रभाव से इनसान की खूनी रिश्तों में भी दरारें पड जाती है। राजनीतिज्ञों की नपुंसकता और अकर्मण्यता के कारण युद्ध की समस्या अनसुलझी रह जाती है। साम्राज्यवादी शक्तियाँ हथियार-व्यापार को बनाए रखने केलिए सदैव युद्ध को बनाए रखना चाहती है। युद्ध की नृशंसता को जीवन-भर भोगने के लिए आवाम विवश हो जाते है।

कुछ कृतियों में रचनाकारों ने तथ्य की प्रभावात्मकता को बढाने के लिए इतिहास और पुराण का सहारा लिया है। उनका मकसद मात्र इतना है कि प्राचीन समस्यायें पोशाक बदलकर मूलतः उसी रूप में यहाँ बरकरार है। अमिता द्वारा अशोक से पूछे सवाल वास्तव में

साम्राज्यवादी शक्तियों से यशपाल के सवाल है। राम, कृष्ण आदि पुराण के अलौकिक पात्र नहीं, बल्कि युद्ध की त्रासदी से बेचैन आम आदमी के प्रतिनिधि पात्र हैं। अश्वत्थामा की अमानवीय और विवेकहीन हरकतों में आधुनिक मानव का बीभत्स चेहरा हम देखते हैं। गाँधारी और द्रौपदी हमें युद्ध से पीडित और व्यथित औरतों के दर्दभरे चेहरे की याद दिलाती हैं। इन सभी के ऊपर बंगलादेश की अनाथ माँ की 'अमरू कोई नहीं अल्ला' की आवाज़ अन्तरात्मा को बेचैन करती है। हाथ में खोंपडी से खेलनेवाले बालक हमें डराते हैं।

इन कृतियों से गुज़रते वक्त मन में युद्ध के खिलाफ तीव्र प्रतिक्रिया उभर आती है। यही साहित्य की शक्ति है, उसकी जीत है। अमिता की बातों से अशोक के मन में जो परिवर्तन हुआ, इसी तरह के सकारात्मक परिवर्तन की कामना सभी साहित्यकार करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मूल ग्रन्थ

1.	कुरुक्षेत्र	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल राष्ट्रकवि दिनकर पथ राजेन्द्र नगर, पटना
2.	मेरा समर्पित एकांत	नरेश मेहत्ता	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली 1962
3.	संशय की एक रात	नरेश मेहत्ता	लोकभारती प्रकाशन, 1990
4.	एक कंठ विषपायी	दुष्यन्त कुमार	लोकभारती प्रकाशन, 1999
5.	अन्धायुग	धर्मवीर भारती	किताब महल , इलाहाबाद, 2002
6.	युद्धमन	बृजमोहन शाह	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1976
7.	अमिता	यशपाल	लोकभारती प्रकाशन 1993
8.	बाँस का टुकडा	अरविन्दाक्षन	पल्लवी प्रकाशन, नई दिल्ली 1992
9.	शान्ति गंधर्व	वीरेन्द्र मिश्र	राजकमल प्रकाशन, 1983
10.	महाप्रस्थान	नरेश मेहत्ता	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1991
11.	वे दिन	निर्मल वर्मा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

12.	टुण्डा लाड	जगदीश चन्द्र	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
13.	इक्यावन कहानियाँ	महीपसिंह	राजकमल प्रकाशन
14.	वापसी	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	अभिव्यंजना नई दिल्ली
15.	काठ की तोप	गिरिराज किशोर	नैशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
16.	पहचान	मोहन राकेश	राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
17.	त्रिशंकु	ब्रृजमोहन शाह	शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली
18.	कनुप्रिया	डॉ धर्मवीर भारती	तीसरा संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 1966
19.	परशुराम की प्रतीक्षा	रामधारी सिंह दिनकर	राजेन्द्रनगर, पटना-4 द्वितीय संस्करण,1966
20.	कोमल गाँधार	शंकर शेष	पराग प्रकाशन, दिल्ली,1988
21.	असलाह	गिरिराज किशोर	नैशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
22.	इब्ने मरियम	नासिरा शर्मा	किताब घर, नई दिल्ली,
23.	कितने पाकिस्तान	कमलेश्वर	राजपाल एंड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली
24.	यात्रा चक्र	धर्मवीर भारती	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
25.	महादेवी साहित्य	महादेवी वर्मा	सेतु प्रकाशन, झाँसी

26.	मुक्तिबोध रचनावली	मुक्तिबोध	राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली
27.	बीसवीं सदी के अंधेरे में	श्रीकांत वर्मा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
28.	मेरी यात्राएँ	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल, राजेन्द्र नगर, पटना
29.	देश विदेश	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल, राजेन्द्र नगर, पटना
30.	चीडों पर चाँदनी	निर्मल वर्मा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
31.	जहाँ फव्वारे लहू रोते है	नासिरा शर्मा	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
32.	कुछ अटके कुछ पटके	मृदुला गर्ग	पेन बुक्स
33.	लिखि कागद कोरे	अज्ञेय	राजपाल एंड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1972
34.	आन फ्राँक की डायरी	आन फ्राँक,	डी.सी.बुक्स,छठा संस्करण, 2006

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1.	कथासाहित्य के नौ बरस	विभूति नारायण राय	शिल्पायन, दिल्ली
2.	कविता के नौ बरस	लीलाधर जगूडी	शिल्पायन, नई दिल्ली
3.	हिन्दी नाटक कोश	डॉ दशरथ ओझा	नैशनल पब्लिशिंग हाऊस
4.	हिन्दी नाटक साहित्य: परिवर्तन के सौ वर्ष	ओंकारनाथ श्रीवास्तव	राजकमल प्रकाशन दिल्ली
5.	यशपाल के उपन्यासों में सामयिक चेतना	डॉ. श्री साने	सरस्वती प्रकाशन, कानपुर 99

6. प्रसाद ग्रंथावली	जयशंकर प्रकाश	भारतीय ग्रन्थ निकेतन नई दिल्ली
7. शताब्दी के ढलते वर्षों में ,	निर्मल वर्मा	राजकमल प्रकाशन दिल्ली
8. हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष,	गिरीश रस्तोगी	लोकभारती, इलाहाबाद, 2002
9. आधुनिक हिन्दी नाटक	डॉ नगेन्द्र	साहित्य रत्नभण्डार प्रकाशन, दिल्ली , 2004
10. हिन्दी नाटक,	बच्चन सिंह	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1975
11. मानवमूल्य और साहित्य	डॉ धर्मवीर भारती	प्रथम संस्करण, 1960, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाश
12. साहित्य का आत्मसत्य	निर्मल वर्मा	राजकमल प्रकाशन 2006
13. अस्तित्ववाद और नयी कहानी,	डॉ लालचन्द गुप्त 'मंगल'	शोध प्रबन्ध प्रकाशन, दिल्ली-7, 1975
14. अंधेरे में सितारे की तलाश	डॉ एम षणमुखन	जवाहर पुस्तकालय मथुरा, 2004
15. इन्सानियत की नसीहत	डॉ शमीम अलियार	सूर्य भारती प्रकाशन नई दिल्ली
16. कविता का यथार्थ	डॉ ए अरविन्दाक्षन (सं)	हिन्दी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगीकी विश्वविद्यालय 2003

अंग्रेज़ी पुस्तकें

1. The Waste Land, T.S. Iliot, Oxford University Press, New Delhi, 1996
2. The Intuitive, Rohit Mehta, Philosophy
3. The Principal of Upanishads, Dr. S.Radhakrishnan, New York, 1953
4. Merrian Websters Encyclopedia of Literature, Merriam Webster Incorporated, Springfield
5. Britannica Ready Reference Encyclopedia

पत्रिकाएँ

1. नया ज्ञानोदय नवंबर 1965
2. नया ज्ञानोदय नवंबर 1969
3. नया ज्ञानोदय अक्तूबर 2004
4. वागर्थ नवंबर 2001
5. वागर्थ अगस्त 2003
6. भाषा नवंबर 2003
7. समकालीन सृजन, जानवरी-मार्च 1988
8. भाषापोषिणी मासिक (मलयालम)
9. आउटलुक साप्ताहिक 7 अप्रैल 2003
10. मातृभूमि साप्ताहिक 2005 जून 30
11. मलयाल मनोरमा, फरवरी 16 2007 (समाचार पत्र)

मलयालम

1. अरुन्धती राय के लेख, अरुन्धती राय, डी.सी. बुक्स
2. बुद्धन्टे चिरी, एम.पी. वीरेन्द्रकुमार, मातृभूमि प्रेस, कोषिक्कोड, 1995
3. ब्रेह्तिन्टे कला, सच्चिदानन्दन, मातृभूमि बुक्स, कोषिक्कोड, 2006